वार्षिकांक 17

वर्ष २०२४-२५

कृषि किरण

भाकृअनुप ICAR

ISO : 9001-2015

भाकृअनुप-केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान

करनाल-132 001 (हरियाणा)

Paddy Straw Management towards
Achieving Mission Zero Burning

कृषि किरण

भाकृअनुप-केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान
करनाल-132 001 (हरियाणा)

संपादक मंडल

अध्यक्ष राजेन्द्र कुमार यादव (निदेशक)

संपादक कैलाश प्रजापत (वरिष्ठ वैज्ञानिक)
मनीष कुमार (वरिष्ठ वैज्ञानिक)

सदस्य युद्धवीर सिंह अहलावत
अजमत अली

आवश्यक नोट

इस अंक में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों/आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

प्रकाशक :

निदेशक, भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान करनाल–132 001

दूरभाषः 91–184229501, ई–मेलः director.cssri@icar.gov.in

मुद्रक :

एरोन मीडिया

यू.जी. 17, सुपर मॉल, सैक्टर–12, करनाल, हरियाणा, भारत

फोन. 0184–4043026, 98964–33225

ईमेल : aaronmedia1@gmail.com

प्राक्कथन

प्राकृतिक संसाधनों के गहन अविवेकपूर्ण दोहन के परिणामस्वरूप भूमि क्षरण, भूजल स्तर में गिरावट, मृदा स्वास्थ्य में ह्रास तथा जैव विविधता का नुकसान तीव्र गति से बढ़ा है, जिससे कृषि प्रणालियों की दीर्घकालिक सत्तता के समक्ष गंभीर चुनौतियाँ उत्पन्न हुई हैं। विकसित भारत 2047 के परिप्रेक्ष्य में, भारतीय कृषि को ऐसी लचीली, संसाधन–कुशल एवं जलवायु–स्मार्ट उत्पादन प्रणालियों की ओर रणनीतिक रूप से परिवर्तित करना आवश्यक है, जो अधिक उत्पादकता, बेहतर लाभप्रदता तथा पर्यावरणीय सत्तता सुनिश्चित कर सकें। लवणता, क्षारीयता, सूखा, अधिक तापमान तनाव, जलभराव तथा निम्न गुणवत्ता वाले सिंचाई जल जैसे बढ़ते अजैविक तनावों से निपटने हेतु उन्नत तकनीकी हस्तक्षेपों की आवश्यकता है। इनमें समस्याग्रस्त मृदाओं का समेकित प्रबंधन, सीमांत एवं लवणीय जल संसाधनों का सतत् उपयोग, उन्नत जल निकास समाधान तथा तनाव–सहनशील फसल किस्मों का विकास आदि है।

किसानों की आय में वृद्धि तथा ग्रामीण समृद्धि सुनिश्चित करना विकसित भारत के प्रमुख स्तंभ हैं। इसके लिए फसल विविधीकरण, मूल्य संवर्धन, सटीक कृषि तथा संरक्षित खेती आदि तकनीकों का प्रभावी समन्वय आवश्यक है। विविधीकृत फसल प्रणालियाँ जलवायु एवं बाजार जोखिमों को कम करने के साथ–साथ मृदा स्वास्थ्य में सुधार लाती हैं, जबकि प्रसंस्करण, ब्रांडिंग तथा सुदृढ़ बाजार संपर्कों के माध्यम से मूल्य संवर्धन से कृषि लाभप्रदता में वृद्धि होती है। ग्रीनहाउस खेती, मल्चिंग एवं सूक्ष्म सिंचाई जैसी संरक्षित कृषि पद्धतियाँ जलवायु परिवर्तनशीलता के दुष्प्रभावों को कम करती हैं, जल संसाधनों का संरक्षण करती हैं तथा वर्षभर उत्पादन को संभव बनाती हैं। ये सभी उपाय मिलकर संसाधनों के कुशल उपयोग, जलवायु चरम घटनाओं के प्रति लचीलापन तथा कृषि के सतत् सघनीकरण को प्रोत्साहित करते हैं।

भारतीय कृषि को वर्ष 2047 तक ज्ञान–आधारित, प्रौद्योगिकी–सक्षम एवं किसान–केंद्रित क्षेत्र के रूप में रूपांतरित करने के राष्ट्रीय लक्ष्य के अनुरूप, भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, मृदा एवं जल से संबंधित समस्याओं के समाधान हेतु विज्ञान–आधारित तकनीकों के सृजन एवं प्रसार के प्रति निरंतर प्रतिबद्ध है। कृषि किरण का यह अंक इस राष्ट्रीय मिशन में योगदान देने के उद्देश्य से देश के विभिन्न संस्थानों में कार्यरत वैज्ञानिकों एवं विषय–विशेषज्ञों द्वारा प्रस्तुत नवीनतम शोध उपलब्धियों, नवोन्मेषी प्रौद्योगिकियों तथा सफल क्षेत्रीय अनुभवों का संकलन है। इस अंक की सामग्री किसानों, प्रसार कार्यकर्ताओं एवं अन्य हितधारकों को सतत, जलवायु–सहिष्णु एवं आय–वर्धक कृषि पद्धतियों को अपनाने में सहयोग प्रदान करेगी। मैं उन सभी संस्थानों, वैज्ञानिकों एवं विशेषज्ञों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ, जिनके बहुमूल्य योगदान से कृषि किरण का यह अंक सफलता पूर्वक प्रकाशित हो रहा है।

मैं आशा करता हूँ कि यह पत्रिका सफल कृषि उत्पादन हेतु संबंधित वैज्ञानिकों द्वारा विकसित महत्त्वपूर्ण तकनीकी जानकारी को हमारी मातृभाषा हिन्दी के माध्यम से कृषि से जुड़े लोगों तक पहुँचा कर देश के खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि करने में महत्त्वपूर्ण योगदान करेगी। कृषि किरण के संपादक मण्डल को राष्ट्रभाषा में किये गए इस प्रकाशन के लिए मैं हार्दिक बधाई देता हूँ और कृषि किरण के 17 वें अंक के प्रकाशन की सफलता की कामना करता हूँ।

(राजेन्द्र कुमार यादव)

निदेशक

भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल

संपादकीय

कृषि अनुसंधान एवं विकास तथा प्रौद्योगिकीय नवाचार का मुख्य उद्देश्य उभरती हुई चुनौतियों के लिए ऐसे व्यावहारिक समाधान विकसित करना है, जो कृषि प्रणालियों में उत्पादकता, स्थिरता और लचीलापन बढ़ाएँ तथा यह सुनिश्चित करें कि ये समाधान प्रभावी रूप से किसानों तक पहुँच सकें। मृदा लवणता एवं क्षारीयता प्रबंधन, उच्च उपज एवं तनाव–सहनशील फसल किस्मों का विकास, सटीक कृषि, जलवायु–सहिष्णु खेती पद्धतियाँ, उन्नत फसल प्रबंधन तकनीकें तथा टिकाऊ सिंचाई प्रौद्योगिकियों में हुई वैज्ञानिक प्रगति कृषि उत्पादन और किसानों की आजीविका में उल्लेखनीय सुधार की क्षमता रखती हैं। पारंपरिक मोटे अनाज (मिलेट्स) तथा औषधीय एवं हर्बल पौधों को बढ़ावा देना मानव स्वास्थ्य और पोषण सुरक्षा में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है, साथ ही विविध एवं पौष्टिक चारे के माध्यम से पशुधन उत्पादन में भी सुधार ला सकता है। इसी प्रकार, गन्ने जैसी वाणिज्यिक फसलों की वैज्ञानिक खेती के साथ गुड़ निर्माण एवं उसके उप–उत्पादों में गुणवत्तापूर्ण मूल्य संवर्धन किसानों की आय बढ़ाने के साथ–साथ उत्पाद गुणवत्ता एवं मानव स्वास्थ्य के सकारात्मक प्रभावों को भी सुनिश्चित कर सकता है।

अनुसंधान संस्थानों और कृषक समुदाय के बीच की दूरी को कम करने के लिए कृषि प्रसार सेवाओं, डिजिटल मंचों तथा किसान–उन्मुख प्रशिक्षण कार्यक्रमों को सुदृढ़ करना अत्यंत आवश्यक है, ताकि वैज्ञानिक प्रगति को जमीनी स्तर पर ठोस लाभों में परिवर्तित किया जा सके। इन प्रौद्योगिकीय नवाचारों का वास्तविक प्रभाव तभी संभव है जब ये किसानों, विशेषकर छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए सुलभ, किफायती तथा उनकी सहज समझ की भाषा में उपलब्ध हों। एक प्रगतिशील समाज के लिए अपनी भाषा में उपलब्ध ज्ञान और संदर्भ सामग्री सीखने एवं अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम होती है, जिससे विचारों का आदान–प्रदान संभव होता है और व्यक्तिगत, सामाजिक तथा राष्ट्रीय विकास को गति मिलती है। भारत में कृषि क्षेत्र की स्थिरता, उत्पादकता एवं समावेशिता को बढ़ाने के लिए किसानों तक नवीनतम कृषि तकनीकी ज्ञान का हिंदी भाषा में प्रभावी प्रसार अत्यंत आवश्यक है। इस संदर्भ में हिंदी भाषा में प्रकाशित कृषि पत्रिकाएँ किसानों को सशक्त बनाने और आधुनिक, विज्ञान–आधारित कृषि पद्धतियों को अपनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

संस्थान की राजभाषा पत्रिका कृषि किरण के माध्यम से हम इन दायित्वों को निरंतर पूरा करने का प्रयास कर रहे हैं। वर्ष 2024–25 के लिए कृषि किरण का 17वाँ अंक प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यंत प्रसन्नता हो रही है। हम उन सभी संस्थानों, विश्वविद्यालयों, वैज्ञानिकों, विशेषज्ञों एवं लेखकों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं, जिनके बहुमूल्य योगदान से इस अंक में वैज्ञानिक दृष्टि से सुदृढ़ एवं किसानोपयोगी तकनीकी जानकारी को सम्मिलित किया जा सका है। हम संस्थान के निदेशक डॉ. राजेन्द्र कुमार यादव के प्रति भी अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं, जिनके कुशल मार्गदर्शन एवं नेतृत्व में कृषि किरण ज्ञान प्रसार का एक प्रभावी मंच बना हुआ है। हम आशा करतें हैं कि यह अंक किसानों, प्रसार कार्यकर्ताओं और हिन्दी से लगाव रखने वाले सभी पाठकगणों के लिए ज्ञान की बढोत्तरी के साथ कृषि आय वृद्धि में सहायक सिद्ध होगा।

संपादक

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	आलेख	पृष्ठ
1	**शुष्कभूमि लवणता प्रबंधनः मृदा सुधार तथा बेहतर फसल उत्पादन** अनिल आर. चिंचमलतपुरे एवं मोनिका शुक्ला	01–07
2	**पश्चिमी राजस्थान के गर्म मरूस्थलीय क्षेत्र में मृदा लवणता और सुधार** महेश कुमार गौड़, राजेश कुमार गोयल एवं शिरन के.	08–12
3	**जलवायु परिवर्तन का मृदा सूक्ष्मजीवों पर प्रभाव** संजय अरोड़ा, एकता चौधरी एवं अर्जुन सिंह	13–15
4	**पादप वृद्धि नियामकः लवणता तनाव के विरुद्ध फसल सहनशीलता के लिए सशक्त पदार्थ** रूही, मनीष कुशवाहा, पूजा गुप्ता सोनी, तारामणि यादव, पारस कम्बोज, कन्नौज, सुकीर्ति एवं सत्यवान आर्या	16–21
5	**शारदा सहायक नहर कमांड क्षेत्र में सेंटिनल–2 सुदूर संवेदी मानचित्रों की सहायता से क्षारीय मृदा का विश्लेषण** रजा हैदर रिजवी, संजय अरोड़ा एवं संतोष कुमार	22–24
6	**लवण सहनशील गेहूँ की किस्में: अनुसंधान एवं विकास** निताक्षी शर्मा, चारुलता, प्रमोद प्रसाद, ओम प्रकाश गंगवार, संतोष कुमार बिश्नोई, रविन्द्र कुमार, एवं अरविन्द कुमार	25–29
7	**जलवायु–स्मार्ट कृषिः बदलते मौसम में खेती का प्रौद्योगिकी समाधान** जावेद, सुमित किरन सत्पथी, सानिया नाज़, रवि किरन के. टी., अर्जुन सिंह, मनीष कुमार, अनन्या गौतम, भास्कर नरजारी एवं कैलाश प्रजापत	30–33
8	**जलवायु परिवर्तन के तहत खाद्य सुरक्षा के लिए अर्ध–शुष्क उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में बाजरा–एक महत्वपूर्ण फसल** सुनिता देवी, श्रुति कौशिक, मनीष कुमार, पूजा एवं अश्वनी कुमार	34–36
9	**सरसों की खेती के लिए मिट्टी का प्रकार और उसमें पोषक तत्वों की भूमिका** शिव शंकर शर्मा, रंजीत कुशवाहा, ज्योति शर्मा, शिखा त्रिपाठी, स्नेहा गुप्ता, अश्वनी पाण्डेय एवं महेश राव	37–41
10	**ब्रैसिका के रोग और कीटों से सुरक्षा के उपाय** ज्योति शर्मा, शिव शंकर शर्मा, शिखा त्रिपाठी, एम. जेड. अब्दिन एवं महेश राव	42–46
11	**उद्यानिकी और स्थायित्वः एक पर्यावरण–अनुकूल दृष्टिकोण** शिखा त्रिपाठी, ज्योति शर्मा, पूजा गर्ग, शिव शंकर शर्मा, रंजीत कुशवाहा, स्नेहा गुप्ता एवं महेश राव	47–51
12	**सहजन (मोरिंगा ओलीफेरा): चमत्कारी वृक्ष और गैर–पारंपरिक पशु आहार** श्रुति कौशिक, सुनिता देवी, अश्वनी कुमार, पूजा, अवनी दहिया एवं सतीश कुमार सनवाल	52–56
13	**राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के किसानों के लिए भिन्डी की फसल एक महत्वपूर्ण विकल्प** अवतार सिंह, रौदास कुमार, रितेश कुमार अवस्थी, राजकुमार, मनीष कुमार, देवेंद्र सिंह बुंदेला एवं सतीश कुमार सनवाल	57–63

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	आलेख	पृष्ठ
14	**गुड़ बनाने की कला और विज्ञानः एक समीक्षा** पूजा, रविंदर कुमार, अश्वनी कुमार, सुनिता देवी, श्रुति कौशिक एवं मिन्टु राम मीणा	64–69
15	**गन्ने के मुख्य उप–उत्पादः कृषि में उपयोग और महत्व** पूजा, अश्वनी कुमार, आरजू शर्मा, रविंदर कुमार, मनीष कुमार एवं श्रुति कौशिक	70–75
16	**किसानों की आय दोगुनी करने में बीज प्रौद्योगिकी की भूमिका** निर्मल सिंह, अक्षय भूकर, अनुराग मलिक एवं राजकुमार	76–83
17	**ड्रोन एवं कृत्रिम बुद्धिमत्ताः आधुनिक संरक्षित कृषि प्रणाली की नई उम्मीद** जावेद, सानिया नाज, सुमित किरन सत्पथी, रवि किरन के. टी., अर्जुन सिंह, मनीष कुमार, अनन्या गौतम एवं कैलाश प्रजापत	84–88
18	**कृषि में महिलाओं की भूमिका** अर्चना उदय सिंह एवं ओम प्रकाश	89–91
19	**बदलते भारत की बदलती खेतीः धान की यांत्रिक रोपाई की दिशा में एक कदम** राहुल सिंह पन्नू, प्रदीप फोगाट एवं राजकुमार जागलान	92–96
20	**कृषि में प्लास्टिक तकनीक की उपयोगिता** भास्कर नरजारी, जितेंद्र कुमार, अर्जुन सिंह एवं सत्येंद्र कुमार	97–103
21	**संस्थान के कृषि अनुसंधान एवं अन्य कार्यकलापों में राजभाषा हिन्दी** अश्वनी कुमार, राज कुमार एवं अवनी	104–106

1

अनिल आर. चिंचमलतपुरे एवं मोनिका शुक्ला
भा.कृ.अनु.प.—केंद्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय अनुसंधान केंद्र भरूच 392012 गुजरात
Email: rcanil2014@gmail.com

शुष्कभूमि लवणता प्रबंधनः मृदा सुधार तथा बेहतर फसल उत्पादन

मृदा लवणता एक विश्वव्यापी समस्या है जो भूमि उत्पादकता के लिए ख़तरा है। एक अनुमान के अनुसार वर्ष 2050 में कृषि योग्य भूमि लवणता से काफ़ी प्रभावित होगी। भविष्य में विश्व की आधी से ज्यादा कृषि योग्य भूमि विभिन्न कारकों के कारण लवणता से प्रभावित हो सकती है, और यह खाद्य सुरक्षा के लिए एक बड़ी चुनौती है। शुष्क और अर्ध—शुष्क क्षेत्रों में, जहाँ वार्षिक वर्षा वाष्पोत्सर्जन से कम होती है और सिंचाई की कोई सुविधा नहीं होती है, वहां शुष्कभूमि कृषि अपनाई जाती है। भारत में कुल कृषि योग्य भूमि में से 68 प्रतिशत भूमि क्षेत्र शुष्कभूमि कृषि के अंतर्गत है, जो देश के कुल खाद्य उत्पादन का 44 प्रतिशत उत्पादन करता है, अतः देश की खाद्य सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण है। भारत के वह क्षेत्र जिन्हें भौगोलिक रूप से शुष्कभूमि कृषि क्षेत्रों के रूप में वर्गीकृत किया गया है, वे हैं महाराष्ट्र में दक्कन, आंध्र प्रदेश के दक्कन पठार, तमिलनाडु के ऊंचे इलाके, गुजरात, महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश के बीच के ऊंचे इलाके, मध्य भारत के पठारी इलाके और गंगा यमुना नदी बेसिन के जलोढ़ मैदान। इन क्षेत्रों में सूखी ज़मीन पर शुष्कभूमि कृषि अपनाई जाती है।

बारिश की मात्रा के आधार पर, शुष्कभूमि की खेती को तीन वर्गों में बांटा गया हैः

1. सूखी खेती: उन क्षेत्रों में फसलों की खेती, जहाँ औसत बारिश 750 मिमी. प्रति वर्ष से कम होती है।
2. शुष्क खेती: उन क्षेत्रों में फसलों की खेती, जहाँ सालाना बारिश 750 से 1150 मिमी. प्रति वर्ष होती है।
3. वर्षा आधारित खेती: उन क्षेत्रों में फसलों की खेती, जहाँ सालाना बारिश 1150 मिमी. प्रति वर्ष से ज्यादा होती है।

शुष्कभूमि लवणता

भारत में लवणता से प्रभावित मृदा का क्षेत्रफल 6.73 मिलियन हेक्टेयर है, जोकि गुजरात, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र, राजस्थान, तमिलनाडु, हरियाणा, पंजाब आदि राज्यों में बड़े पैमाने पर फैला हुआ है। शुष्कभूमि लवणता मुख्य रूप से भारत के शुष्क और अर्ध—शुष्क क्षेत्रों में पायी जाती है, जो गुजरात, राजस्थान, महाराष्ट्र, हरियाणा और उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में बड़े क्षेत्र को प्रभावित करती है। शुष्कभूमि लवणता का मतलब है, मृदा की सतह पर या उसके पास घुलनशील लवणों का इतनी मात्रा में जमा होना कि फसल की पैदावार पर असर पड़े। लवणीय भूजल से भी मृदा की सतह तक लवणों का स्थानांतरण होता है। शुष्कभूमि लवणता प्राथमिक लवणता से अलग होती है, जोकि मानवीय हस्तक्षेप के कारण उत्पन्न होती है। शुष्कभूमि लवणता से मृदा में लवणो की मात्रा या पानी में लवण की मात्रा बढ़ सकती है और साथ ही मृदा की सतह के भौतिक और रासायनिक गुणधर्म खराब हो सकते है, जिससे मृदा की उत्पादकता कम हो जाती है।

शुष्कभूमि लवणता के कारण

अधिक वाष्पीकरण: शुष्क और अर्ध—शुष्क क्षेत्रों में वाष्पीकरण दर ज्यादा होती है, जिससे, लवण सतह की मृदा और नीचे की मृदा परतों में जमा हो जाते हैं।

सिंचाई पद्धतियाँ: भूजल स्तर का ठीक से विचार न करके सिंचाई का अविवेकपूर्ण और अत्यधिक उपयोग करने से भूजल स्तर बढ़ जाता है, जिससे सूखे इलाकों में जलभराव की स्थिति पैदा होती है, और नीचे की सतहों के लवण पानी के साथ घुलने तथा अधिक वाष्पीकरण के कारण पानी के साथ ऊपर की ओर आने की वजह से ऊपर की सतह में जमा होने लगते हैं।

जलवायु परिवर्तन: बारिश में उतार–चढ़ाव और कम बारिश होने से मिट्टी से लवणों का निक्षालन कम हो जाता है, जिससे यह समस्या और बढ़ जाती है।

शुष्कभूमि लवणता का प्रभाव

शुष्कभूमि लवणता पौधों की वृद्धि पर असर डालती है, जिससे पानी और पोषक तत्वों की कमी होती है। मिट्टी में मौजूद लवणों की वजह से मिट्टी की उपजाऊ शक्ति पर असर पड़ता है, जिससे पौधों की वृद्धि और विकास पर बुरा असर पड़ता है। सामान्य परिस्थितियों में, पौधे परासरण प्रक्रिया द्वारा मृदा से आसानी से पानी प्राप्त करते हैं। जैसे–जैसे मृदा में लवणता की मात्रा बढ़ जाती है, यह प्रक्रिया बाधित होने लगती है, जिससे पौधों के लिए मृदा से पानी अवशोषण मुश्किल हो जाता है। परासरणी तनाव, लवणता का तत्कालिक प्रभाव है, जो अतिपरासारी स्थितियों की वजह से हो सकता है। इसके अलावा सोडियम और क्लोराइड जैसे विषैले आयनों की उच्च मात्रा से पौधे की बढ़ोतरी पर सीधा असर पड़ सकता है। पत्तियों में ज्यादा सोडियम जमा होने से पत्तियां जल सकती हैं, और पत्तियां झड़ भी सकती हैं। क्लोराइड विषाक्तता से प्रभावित पौधों में भी पत्तियों पर ऐसे ही लक्षण दिखते हैं, जैसे कुछ प्रजातियों में पत्तियों का कांस्य जैसा रंग होना। कोशिकाओं में सोडियम और क्लोराइड आयनों के जमा होने के कारण परासरणी तनाव (ऑस्मोटिक स्ट्रेस) की तुलना में आयन विशाक्तता काफी देर से हो सकती है। पर्यावरणीय अनुकूलन और आनुवंशिक गुण पौधों में लवणीयता को सहन करने की क्षमता को नियंत्रित करते हैं। राइज़ोस्फीयर में मौजूद सूक्ष्मजीव की क्षमता का इस्तेमाल करके पौधों की तनाव सहनशीलता को बेहतर बनाया जा सकता है।

शुष्कभूमि लवणता प्रबंधन के लिए हस्तक्षेप

शुष्क भूमि की लवणता के प्रबंधन को तीन तरीकों में देखा जा सकता है।

1. **पुनःप्राप्तिः** जहाँ कारण कारकों (जल स्तर / लवणीय मिट्टी) के प्रबंधन के आधार पर समाधान लागू किया जाता है।
2. **नियंत्रणः** कारण प्रक्रियाओं को कुछ सीमा तक संशोधित करना और ऐसा करके संपूर्ण प्रभावों को सीमित करना।
3. **अनुकूलनः** लवणीय मिट्टी को स्वीकार करना और लवणीय भूमि और पानी के लाभदायक उपयोग को सक्षम करने के लिए कदम उठाना।

शुष्कभूमि लवणीयता का कई तरीकों से प्रबंधन किया जाता है, जिनका उद्देश्य मिट्टी में पानी और लवण की आवाजाही को नियंत्रित करना होता है, जैसे कि लवण सहने वाले पौधों की खेती करना, और इंजीनियरिंग उपायों जैसे जलनिकास और लवण निक्षालन, रासायनिक सुधार, भौतिक तरीके आदि का पालन करना। नीचे वर्णित जैविक, भौतिक तथा रासायनिक हस्तक्षेपों से, शुष्कभूमि लवणीयता का प्रबंधन किया जा सकता है।

जैविक हस्तक्षेप

लवणीय भूमि में लवण सहने वाली फसलें

भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान के क्षेत्रीय अनुसंन्धान संस्थान द्वारा किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि, कपास की देसी किस्म (जी कोट 23) लवण सहने वाली तथा ज्यादा लवणीय वाली भूमि में भी ज्यादा पैदावार देने वाली है। इसे लवण सहने वाली देसी कपास की किस्म के रूप में पहचाना गया है। एशियाई डिप्लॉइड कपास के देसी कपास के जीनोटाइप, सीएससी 025 और सीएससी 057 ने जी कोट 23

चित्र : देसी किस्म (जी कोट 23)

की तुलना में सबसे अच्छा प्रदर्शन किया है। देसी कपास के जीनोटाइप सीएससी 025 और सीएससी 057 और जी कोट 23 की अच्छी उपज और अन्य विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए इन्हें भारत की लवण प्रभावित काली मिट्टी (वर्टिसोल) में इस्तेमाल के लिए माना जा सकता है। इस क्षेत्र में किसान समुदाय को देसी कपास के अच्छी क्वालिटी और बेहतर बीज उपलब्ध कराने से कपास की पैदावार, किसानों की आय और जीवन स्तर को बढ़ाने में मदद मिलने की संभावना है।

गेहूँ के मामले में, गुजरात की लवण प्रभावित काली मिट्टी (वर्टिसोल) के लिए तीन बेहतर, ज्यादा पैदावार देने वाली और लवण सहने वाली गेहूँ की किस्में जैसे केआरएल 210, केआरएल 213 और केआरएल 283 को पहचाना गया है।

भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान ने विशेष रूप से लवण प्रभावित मृदा के लिए सरसों की 8 लवण सहिष्णु किस्में (सीएस 52, सीएस 56, सीएस 58, सीएस 60, सीएस 61, सीएस 62 और सीएस 64 विकसित की हैं। इन किस्मों को लवणीय काली मृदाओं वाले क्षेत्रों में मूल्यांकन कर किसानों की आजीविका में सुधार के लिए सरसों को इस क्षेत्र में एक नई फसल के रूप में पेश किया जा सकता है। लवणीय काली मृदाओं वाले क्षेत्रों में इन किस्मों का मूल्यांकन करने के साथ साथ सरसों की बुआई के लिए सही समय का पता लगाने के लिए भाकृअनुप–सीएसएसआरआई के क्षेत्रीय अनुसंन्धान संस्थान में अध्ययन किया गया। लगातार 2 वर्षों के अध्ययन से यह पता चलता है कि लवणीय काली मृदाओं में लवणीय पानी की सिंचाई के साथ लवण सहिष्णु किस्म सीएस 58 का प्रदर्शन सबसे अच्छा है। अन्य क्षेत्रों में सरसों की बुआई का समय अक्टूबर महीने में उपर्युक्त होता है परन्तु इस क्षेत्र में तापमान ज्यादा होने की वजह से अक्टूबर की बुआई से फसल के उगने तथा वृद्धि पर काफी विपरीत प्रभाव पड़ता है। छः अलग अलग बुआई के समयों के अध्ययन करने पर 12 नवम्बर के आस पास बुआई का समय सबसे अच्छी उपज देने वाला पाया गया।

भाकृअनुप–सीएसएसआरआई के क्षेत्रीय अनुसंन्धान संस्थान में कृषि वानिकी पर एक अध्ययन किया गया और पाया गया कि लवणीय काली मृदाओं में बबूल तथा यूकेलिप्टस पल्पवुड वृक्षों का प्रदर्शन सर्वोत्तम था, जिनका प्रक्षेत्र की काली मृदाओं में

जीवित रहने की दर क्रमशः 89 प्रतिशत तथा 73 प्रतिशत था। प्रक्षेत्र में वृक्षों के 1.5 वर्ष के हो जाने पर इन वृक्षों की 2 पंक्तियों के बीच के स्थान में चारा ज्वार, मार्वल घास (जिंजवा घास) तथा जोहंसन घास (जंगली ज्वार) लगाकर सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया। लगातार 2 वर्षों के अध्ययन से यह पता चला है कि पल्पवुड प्रजातियां यूकेलिप्टस और बबूल, लवणीय काली मृदाओं में उगाने के लिए उपयुक्त हैं तथा सर्वाधिक चारा उत्पादन तथा आर्थिक फायदा यूकेलिप्टस के साथ जोहंसन घास (जंगली ज्वार) लगाने पर प्राप्त हुआ। बबूल की तुलना में यूकेलिप्टस, अंतःफसल पर कम हस्तक्षेप के साथ चारा अंतःफसल की अच्छी गुंजाइश प्रदान करता है। पल्पवुड वृक्षों में यूकेलिप्टस तथा बबूल के साथ अंतःफसल से अतिरिक्त हरा चारा उपज ली जा सकती है।

चित्र : यूकेलिप्टस और बबूल + जोहंसन घास

चित्र : यूकेलिप्टस और बबूल + मार्वल घास

चित्र : यूकेलिप्टस और बबूल + चारा घास

लवणीय वर्टिसोल में न्यूनतम बजट प्राकृतिक खेती की अवधारणा का मूल्यांकन करने के लिए एक प्रयोग भाकृअनुप–सीएसएसआरआई के क्षेत्रीय अनुसंधान संस्थान में किया गया। जिसके अंतर्गत रबी के मौसम में गेहूँ फसल ली गयी तथा न्यूनतम बजट प्राकृतिक खेती के विभिन्न उपचार जैसे घनामृत, बीजामृत, जीवामृत आदि फसल में अनुशंसा अनुसार प्रदान किये गए, जिसको बनाने में केवल देशी गाय का गोबर इस्तेमाल किया गया। किसी भी प्रकार के उर्वरक तथा अन्य रसायनों का उपयोग फसल में नहीं किया गया। यह पाया गया कि प्रथम वर्ष में गेहूँ की उपज परंपरागत खेती की तुलना में आधी हो जाती है। परन्तु दूसरे बिंदु से देखा जाये तो बिना किसी उर्वरक तथा अन्य रसायनों की लागत लगाए बिना भी खेत से इतना उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। कपास तथा तुअर जैसी कम उर्वरक की मांग वाली फसलें भी प्राकृतिक खेती में लगायी गयी जिनका उत्पादन में कमी गेहूँ की तुलना में 25 प्रतिशत कम, ही पाई गयी। उपज में कमी की मुख्य वजह मृदा में पोषक तत्वों की कमी या फिर अनुपलब्धता है। जिसकी भरपाई प्रत्येक वर्ष घनामृत के रूप में जैविक खाद देकर किया जा सकता है। जीवामृत जो कि मृदा के लिए लाभदायी सूक्ष्मजीव का प्रमुख श्रोत है, मृदा में पहले से उपस्थित पोषक तत्वों को उपलब्ध कराने का कार्य करता है। न्यूनतम बजट प्राकृतिक खेती के इन स्तंभों के लाभ को दर्शित होने के लिए कुछ सालों तक यही कृषि पद्धति अपनानी होगी। एक बार मृदा में सुधार तथा मृदा में लाभकारी सूक्ष्मजीव की जनसंख्या बढ़ जाने पर उपज में वृद्धि होने की संभावना दर्शित होती है।

क्विनोआ (*चिनोपोडियम क्विनोआ*), एक हेलोफिटिक फसल है जो अत्यधिक कठोर वातावरण और सीमांत कृषि मिट्टी में उगाने के लिए अनुकूल है। इसके पौधे में लवणता के लिए उच्च प्राकृतिक सहनशीलता है। क्विनोआ एक 'छद्म अनाज' है और एक *ग्लूटेन–मुक्त*, प्रोटीन और आहार फाइबर में उच्च और कई विटामिन बी और आहार खनिजों का समृद्ध स्रोत है, जो इसे उत्तम खाद्य पदार्थों की सूची में शामिल करते है। बारा ट्रैक्ट की लवणीय काली मृदाओं में इस फसल की उपयुक्तता का अध्ययन करने के उद्देश्य से संस्थान में लवणीय सिंचाई के साथ विभिन्न क्विनोआ जर्मप्लाज्म के प्रदर्शन का मूल्यांकन किया गया। इस अध्ययन में यह पाया गया कि वर्टिसोल में 30 डेसीसीमन प्रति मीटर खारे पानी की सिंचाई तक फसल उगाई जा सकती है और उत्पादन लिया जा सकता है।

लवणीय क्षेत्रों में चारा घास

इचिनोक्लोआ क्रूसगैली

डाइकैंथियम एनूलेटम

खेती वाली ज़मीन और घास के मैदानों पर पैदा होने वाला चारा पशुओं की आबादी की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए काफी नहीं है, इसलिए *डाइकैंथियम एनुलेटम* और *लेप्टोक्लोआ फुस्का* जैसी चारे वाली घासों की खेती लवण प्रभावित काली मृदाओं (वर्टिसोल) के लिए आदर्श पाई गई। लवण प्रभावित काली मृदा पर चारा घास का उत्पादन ज्यादा से ज्यादा करने के लिए, मेड़ों पर डाइकैंथियम और नालियों में लेप्टोक्लोआ लगाना सबसे अच्छा तरीका है। मध्यम लवण प्रभावित काली मृदा में *डाइकैंथियम एनुलेटम* और *लेप्टोक्लोआ* फुस्का जैसी लवण सहनेवाली चारे घासों की खेती से क्रमशः 1.9 टन/हेक्टर और 3.2 टन/हेक्टर उपज मिलती है। चारे वाली घासों की दो और प्रजातियाँ, जैसे *इचिनोक्लोआ क्रूसगैली* और *पेनिसिटम परप्यूरियम* को लवण सहने वाला पाया गया है और ये क्रमशः 16 और 8 डेसीसीमन प्रति मीटर के खारे पानी की सिंचाई के साथ लवण प्रभावित काली मृदा में बेहतर उगती हैं। इन प्रजातियों में शर्करा, क्लोरोफिल, प्रोलिन, प्रोटीन कंटेंट जैसे बेहतर बायोकेमिकल गुण पाए गए और इसलिए यह निष्कर्ष निकाला गया कि ये दोनों घासें खारे पानी की सिंचाई के तहत लवण प्रभावित काली मिट्टी (वर्टिसोल) में खेती के लिए उपयुक्त हैं।

शुष्कभूमि लवणता को बेहतर बनाने के लिए बायोचार का इस्तेमाल

बायोचार (पायरोलाइज्ड ऑर्गेनिक मैटर) का इस्तेमाल लवणीय मृदा को आंशिक रूप से ठीक करने के लिए भी किया जा सकता है, लेकिन इसका नतीजा काफी हद तक इसके गुणधर्म पर निर्भर करता है। बायोचार एक कार्बन वाला अवशेष है जो ज्यादा तापमान (300 से 1000 डिग्री सेल्सियस) पर ऑक्सीजन रहित स्थितियों में बनता है। यह लवणीय मृदा की भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणधर्म को बेहतर बनाने में फायदेमंद है। यह शुष्कभूमि लवणीय मृदा में पानी रोकने की क्षमता और छिद्रता को भी बेहतर बनाता है।

भौतिक हस्तक्षेप

जुताई से मृदा की पारगम्यता में सुधार

यह तरीका उन मृदाओं पर लागू होता है, जिनकी पारगम्यता कम है, जिनमें चिकनी मिट्टी की मात्रा ज्यादा है, और जल निकास खराब है। यह तरीका अभेद्य परतों, हार्डपैन या सीमेंटेड उपसतही परतों को तोड़ता है। यह मृदा के अंदरूनी जल निकास को बढ़ाता है, लवण को घोलता है और उन्हें जड़ क्षेत्र से नीचे गहरी परतों तक पहुंचाता है। इस तरीके का इस्तेमाल अक्सर मिनिमम–टिल सब–सॉइलिंग के साथ किया जाता है ताकि नीचे की सख्त परत को तोड़ने के बाद लंबे समय तक पारगम्यता बनी रहे।

निक्षालन

इस तरीके में लवणीय मृदा से लवणों को हटाना शामिल है, जिसके लिए लवण को नीचे बहाने के लिए पर्याप्त मात्रा में पानी की ज़रूरत होती है। यह उन इलाकों में लागू होता है जहाँ मिट्टी इतनी पारगम्य होती है कि आवश्यक मात्रा में पानी अंदर जा सके और नीचे प्रवाहित हो सके। निक्षालन की आवश्यकता काफी हद तक मृदा की गुणवत्ता, शुरुआती लवणीयता और घुलनशील लवण की रासायनिक बनावट से तय होती है। बारिश के महीनों (जुलाई से सितंबर) के दौरान किए गए जलभराव से काफी निक्षालन और सुधार होता है।

रासायनिक हस्तक्षेप

शुष्कभूमि की क्षारीयता को ठीक करने के लिए रासायनिक सुधारक को दो मुख्य प्रकारों में बांटा गया है, जैसे (प) घुलनशील कैल्शियम स्रोत जो सीधे एक्सचेंज कॉम्प्लेक्स में कैल्शियममिलाता है और मृदा की सतहों पर जमा सोडियम को बदल देता है, और (पप) एसिड और एसिड बनाने वाले, जो मिट्टी में मौजूद कैल्शियम कार्बोनेट से कैल्शियम का विघटन करता हैं। जब मृदा में कैल्शियम कार्बोनेट होता है, तो एसिड या एसिड बनाने वाले रासायनिक सुधारक का इस्तेमाल किया जाता है। जब मृदा नॉन–कैल्केरियस होती है, तो केवल कैल्शियम का घुलनशील स्रोत ही अनुशंसित किया जाता है। क्षारीय मृदा को ज्यादातर जिप्सम, एलिमेंटल सल्फर, सल्फ्यूरिक एसिड, फॉस्फो–जिप्सम, पाइराइट्स वगैरह जैसे सुधारों को मिलाकर पीएच मान कम करके ठीक किया जाता है। सबसे ज्यादा किफ़ायती और आमतौर पर इस्तेमाल होने वाला सुधारक जिप्सम है। क्षारीय मृदाओं को सुधारने के लिए जिप्सम की ज़रूरत इस बात से तय होती है कि कितना एक्सचेंज होने वाला सोडियम बदलना है और मृदा को कितनी गहराई तक ठीक करना है। कैल्शियम का एक और सीधा स्रोत कैल्शियम क्लोराइड है। हालाँकि, यह पानी में घुलनशील और तेज़ी से काम करने वाला है, लेकिन ज्यादातर स्थितियों में यह महंगा होता है। फॉस्फो–जिप्सम में थोड़ी मात्रा में सिलिका के साथ जिप्सम होता है और यह एक असरदार मृदा सुधारक है। शुगर फैक्ट्रियों में सल्फिटेशन प्रोसेस से बनने वाले प्रेस–मड या स्पेंट–वॉश प्रेस–मड कम्पोस्ट में दूसरे पोशक तत्वों के साथ कैल्शियम सल्फेट भी होता है, जो क्षारीय मृदाओं के लिए सुधार करने वाला पदार्थ है। प्रेस मड उपयोग करने से मृदा में पोषक तत्वों की मात्रा में सुधार हुआ और यह ज्यादा किफ़ायती पाया गया। एलिमेंटल सल्फर का इस्तेमाल शुष्कभूमि की क्षारीयता को ठीक करने के लिए किया जाता है। जब एलिमेंटल सल्फर का उपयोग किया जाता है तो मृदा के सूक्ष्मजीव की गतिविधियाँ से सल्फ्यूरिक एसिड बनता है जो मृदा में मौजूद कैल्शियम कार्बोनेट/कैल्साइट के साथ प्रक्रिया करता है।

निष्कर्ष

शुष्कक्षेत्रों की मृदाओं में घुलनशील लवणों का बढ़ता संचय फसलों की उपज को कम कर देता हैए इसे ही शुष्कभूमि लवणता कहा जाता है। शुष्कभूमि लवणता प्राकृतिक बारिश की स्थिति में कैचमेंट हाइड्रोलॉजी और लवण के जमाव के बीच तालमेल का नतीजा है। शुष्कभूमि लवणता का अंतिम नतीजा लवणीय मृदा या पानी में लवणों की मात्रा बढ़ना या दोनों हो सकता है, और साथ ही मृदा की सतह की भौतिक और रासायनिक गुणधर्म खराब होना भी हो सकता है, जिससे मृदाओं की उत्पादकता कम हो जाती है और इनकी उत्पादकता को बहाल करना बहुत महंगा होता है। शुष्कभूमि लवणता भारत में मुख्य रूप से शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में, जो देश के अलग–अलग राज्यों में बड़े क्षेत्रों को प्रभावित करती है। शुष्कभूमि लवणता पानी और पोषक तत्वों की कमी करके पौधों के विकास पर विपरीत असर डालती है, और लवणों की मात्रा बढ़ाकर पानी के संसाधनों को प्रभावित करती है। सोडियम और क्लोराइड जैसे हानिकारक आयनों की अधिक मात्रा होने से पौधों का विकास सीधे प्रभावित हो सकता है। लवणीय तनाव को सहन करने की पौधों की योग्यता उनके पर्यावरणीय अनुकूलन तथा वंशानुगत गुणों का परिणाम होती है। शुष्कभूमि लवणता को कई तरीकों के संयोजन से प्रबन्धन किया जाता है, जिनका मकसद मृदा में पानी और लवणों की आवाजाही को नियंत्रण करना है। लवण सहनशील फसलें या किस्में तथा कृषि के साथ वानिकी, फल वृक्ष, चारा फसलों का संयोजन करके इन क्षेत्रों से भी टिकाऊ आय प्राप्त की जा सकती है।

समाप्त

2

महेश कुमार गौड़[1], राजेश कुमार गोयल[1] एवं डा. शिरन के.[2]
[1]आईसीएआर–केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर–342003
[2]क्षेत्रिय अनुसंधान संस्थान, आईसीएआर–केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जैसलमेर
Email: mahesh.gaur@icar.gov.in

पश्चिमी राजस्थान के गर्म मरूस्थलीय क्षेत्र में मृदा लवणता और सुधार

पश्चिमी राजस्थान का क्षेत्र, जिसे थार मरुस्थल के रूप में पहचाना जाता हैं, भारत का एक प्रमुख मरूस्थलीय क्षेत्र है। यह क्षेत्र शुष्क और अर्द्ध–शुष्क जलवायु परिस्थितियों का सामना करता है, जहां वर्षा की मात्रा अत्यधिक कम होती है। इसके बावजूद, यह क्षेत्र कृषि और पारंपरिक जीवनशैली के लिए महत्वपूर्ण है। यहां की मिट्टी में लवणता की समस्या एक प्रमुख पर्यावरणीय चुनौती बन चुकी है, जो कृषि उत्पादन और पारिस्थितिकीय संतुलन को प्रभावित करती है। मृदा में घुलनशील लवणों की मात्रा अत्यधिक बढ़ जाने के कारण पौधों की वृद्धि में रुकावट आती है, और कृषि उत्पादन में गिरावट, जल स्रोतों का अवरुद्ध होना, और पारिस्थितिकी तंत्र का असंतुलन जैसी समस्याएं उत्पन्न होती हैं। पश्चिमी राजस्थान में मृदा लवणता का प्रमुख कारण अत्यधिक वाष्पीकरण, अपर्याप्त वर्षा, और जल निकासी की कमी है। इस आलेख में पश्चिमी राजस्थान के मरूस्थलीय क्षेत्र में मृदा लवणता के कारणों, प्रभावों और सुधार के उपायों पर विश्लेषण किया गया हैं।

मरूस्थलीय क्षेत्र और मृदा लवणता का परिचय

मरूस्थलीय क्षेत्र की विशेषताएं

पश्चिमी राजस्थान का थार मरुस्थल एक महत्वपूर्ण भूभाग है। इस क्षेत्र में अत्यधिक गर्मी और अतिअल्प वर्षा होती है। यह क्षेत्र अत्यधिक जलवायु परिस्थितियों से प्रभावित है, जिसमें उच्च तापमान, कम और अनियमित वर्षा, सीमित जल संसाधन, उच्च वाष्पीकरण दर, और दैनिक व मौसमी तापमान में महत्वपूर्ण परिवर्तन शामिल हैं, और लवण की अधिकता से प्रभावित है। ये सभी कारक कृषि और पशुपालन प्रणालियों के लिए गंभीर चुनौतियाँ प्रस्तुत करते हैं। क्षेत्र में वार्षिक औसत वर्षा में उल्लेखनीय विविधता होती है, जो उत्तर–पूर्वी सीकर जिले में 456 मिमी. से लेकर पश्चिमी जैसलमेर के कुछ भागों में 100 मिमी. से भी कम होती है। वार्षिक वर्षा में परिवर्तनशीलता का गुणांक उच्च है, जो 40 प्रतिशत से 70 प्रतिशत के बीच होता है। लगभग 95 प्रतिशत वर्षा जून से सितंबर के मानसून महीनों के दौरान होती है, जबकि सूखे की संभावना 50 से 60 प्रतिशत के बीच रहती है।

मुख्य भौगोलिक आकृतियों में रेतीले समतल क्षेत्र, टीले और बालुका स्तूप शामिल हैं। इस क्षेत्र की वनस्पति विरल है, जिसमें मुख्यतः मरूद्भिद पौधे और कंटीली झाड़ियाँ पाई जाती हैं। इस क्षेत्र में बहने वाली प्रमुख नदी केवल लूनी है, जो मौसमी और अल्पकालिक है, जबकि जल निकासी प्रणाली मुख्यतः आंतरिक है। अतः यह क्षेत्र बंजर भूमि, गहरी दरारों, रेत के टीलों और अपर्याप्त जल आपूर्ति के कारण कृषि कार्य के लिए दुष्कर है। (तालिका 1, मानचित्र 1)

तालिका 1: पश्चिमी राजस्थान के विभिन्न जिलों में लवणीय क्षेत्रों का वितरण (वर्ग किमी)

जिले का नाम	2008–09	2015–16
बाड़मेर	166.6	172.95
चूरू	18.95	18.91
जैसलमेर	127.91	130.42
जालौर	77.38	76.08
जोधपुर	57.79	63.47
नागौर	114.26	119.34
पाली	87.45	92.22
सीकर	10.64	10.62
कुल क्षेत्रफल (वर्ग किमी)	660.98	684.01

स्त्रोतः वेस्टलैण्ड एटलेस ऑफ इंडिया, 2019.

भारतीय उपग्रहों से प्राप्त आंकड़ों के अध्ययन से स्पष्ट है कि पश्चिमी राजस्थान में 2008–09 और 2015–16 के मध्य में 23.03 वर्ग किमी क्षेत्र में लवणता में वृद्धि हुई है। जिसमें बाड़मेर, जैसलमेर, जोधपुर, नागौर और पाली प्रमुख है। बाड़मेर (19.79 वर्ग किमी), बीकानेर (28.53 वर्ग किमी), चुरू (1.36 वर्ग किमी), गंगानगर (16.35 वर्ग किमी), हनुमानगढ़ (11.39 वर्ग किमी), जैसलमेर (7.62 वर्ग किमी), नागौर (0. 99 वर्ग किमी) और सीकर (0.09 वर्ग किमी) जिलों में जल–प्लावनता की स्थिति है। भू–ह्रास मानचित्रण से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार, पश्चिमी राजस्थान के सभी 12 जिलों में रण भूमि है, जो बाड़मेर (28.43 वर्ग किमी), बीकानेर (8. 89 वर्ग किमी), चूरू (8.35 वर्ग किमी), हनुमानगढ़ (38.37 वर्ग किमी), जैसलमेर (96.17 वर्ग किमी), जालौर (18.03 वर्ग किमी), जोधपुर (56.27 वर्ग किमी), नागौर (25.9 वर्ग किमी), पाली (40.78 वर्ग किमी) और सीकर (3.21 वर्ग किमी) जिलों में वितरीत है।

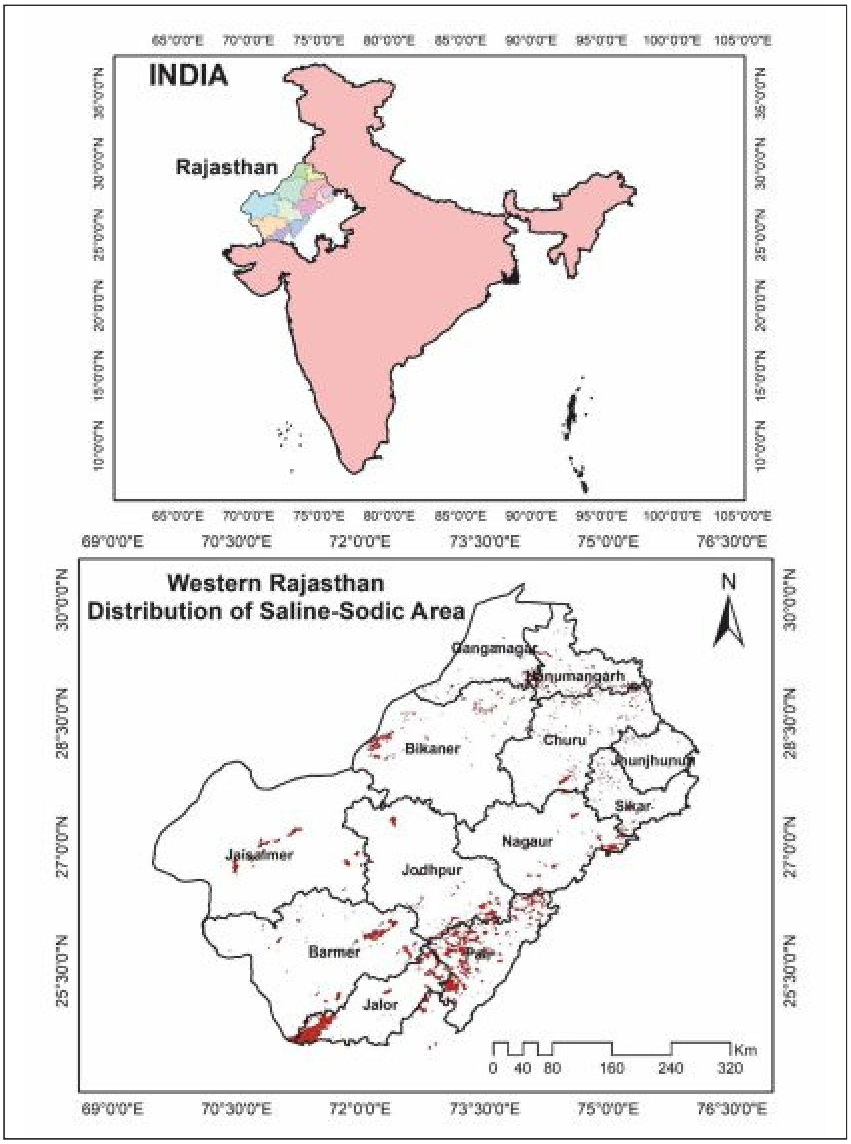

मानचित्र 1: पश्चिमी राजस्थान में लवणीय क्षेत्रों का वितरण

मृदा लवणता

मृदा लवणता एक ऐसी स्थिति है जिसमें मिट्टी में घुलनशील लवणों की सांद्रता इतनी अधिक हो जाती है कि वह पौधों के लिए हानिकारक हो जाती है। यह मुख्य रूप से उन क्षेत्रों में पाई जाती है जहां जलवायु शुष्क होती है और वर्षा की मात्रा कम होती है। मृदा लवणता तब उत्पन्न होती है जब मृदा में जलवाष्प या जल के पुनः अवशोषण के कारण लवण का संचय होता है। यह प्रक्रिया प्राकृतिक और मानवजनित कारणों से हो सकती है। मृदा लवणता के कारण मिट्टी की उत्पादकता में कमी आती है, जो कृषि उत्पादन को प्रभावित करती है और पारिस्थितिकी तंत्र को नुकसान पहुँचाती है। राजस्थान में मृदा लवणता के मुख्य कारणों में अपर्याप्त वर्षा, उच्च वाष्पीकरण दर, नहर क्षेत्र में जलप्लावता, लवणीय भूगर्भिक जल से कृषि कार्य, और जल निकासी की कमी शामिल हैं। साथ ही, कृषि गतिविधियों में जल उपयोग और सिंचाई के प्रबंधन की कमी भी लवणता की समस्या को बढ़ाती है।

पश्चिमी राजस्थान में मृदा लवणता के कारण

पश्चिमी राजस्थान में मृदा लवणता के प्रमुख कारणों में निम्नलिखित शामिल हैं:–

सिंचाई की प्रणाली और जल उपयोगः पश्चिमी राजस्थान में सिंचाई के लिए मुख्य रूप से नहरों और कुओं का पानी उपयोग में लिया जाता है। हालांकि, इन जल स्रोतों में घुले हुए लवणों की अधिकता होती है, जो सिंचाई के दौरान मिट्टी में जमा हो जाते हैं। इसके अलावा, जल की अव्यवस्थित उपयोगिता और जलप्रबंधन की कमी भी मृदा लवणता को बढ़ाने में सहायक होती है। इंदिरा गांधी नहर क्षेत्र में जलप्लावता के कारण मृदा लवणीकरण हुआ हैं। यहां जलप्लावता होने के निम्न कारण रहे हैः

- विभिन्न स्रोतों से रिसावः विभिन्न जल स्रोतों से सतह के नीचे पानी का प्रवेश।
- प्राकृतिक जल निकासी में कमीः प्रतिकूल स्थलाकृति और उप–मृदा भूविज्ञान के कारण प्राकृतिक जल निकासी की कमी।
- कम गहराई पर कठोर परत का अस्तित्वः सतह के निकट कठोर परत की उपस्थिति जो जल प्रवाह को बाधित करती है।
- अत्यधिक और निरंतर तीव्र सिंचाईः अत्यधिक मात्रा में लगातार पानी का उपयोग।
- कमांड क्षेत्र के समुचित विकास के अभाव में प्रारंभिक वर्षों में पानी का अति उपयोगः कमांड क्षेत्र के समुचित और सुव्यवस्थित विकास न होने के कारण जल का अत्यधिक उपयोग।
- खेत प्रबंधन की खराब व्यवस्था और अव्यवहारिक फसल पैटर्नः खेतों का अनुचित प्रबंधन और असंगत फसल चक्र।
- ऊपरी सिंचित क्षेत्रों से जल के हाइड्रोलिक दबावः ऊंचाई वाले सिंचित क्षेत्रों से पानी का दबाव, जिससे निम्न क्षेत्रों में रिसाव और वर्षा जल जमा होता है।

जलवायु कारकः पश्चिमी राजस्थान का क्षेत्र शुष्क और अर्द्ध–शुष्क जलवायु से प्रभावित है, जहां वर्षा की औसत वार्षिक दर 200–400 मिमी. के बीच है। यहां की जलवायु में उच्च तापमान और वाष्पीकरण की दर भी अधिक है, जिससे मिट्टी से पानी का वाष्पीकरण अधिक होता है और मिट्टी में लवणों की सांद्रता बढ़ जाती है। जब जल वाष्पित होता है, तो उसमें घुले हुए लवण भी मिट्टी में जमा हो जाते हैं।

जल निकासी की कमीः पश्चिमी राजस्थान में जल निकासी की समस्या प्रमुख है। अधिकांश इलाके जलरहित हैं, और यहां जलाशयों और नदियों की अनुपस्थिति के कारण जल का संचयन मुश्किल होता है। इसके परिणामस्वरूप, मिट्टी में लवणों का संचय होता है और वे मिट्टी की संरचना को प्रभावित करते हैं।

जलस्तर का उत्थानः भूजल स्तर का अत्यधिक उत्थान और उसके बाद घटाव लवणता को बढ़ाता है।

मृदा लवणता के प्रभाव

कृषि उत्पादन पर प्रभाव

मृदा लवणता का सबसे बड़ा प्रभाव कृषि उत्पादन पर पड़ता है। लवणयुक्त मिट्टी में पौधों की जड़ों द्वारा जल और पोषक तत्वों का अवशोषण बाधित होता जाता है, जिससे फसलों का विकास रुक जाता है। उच्च लवणता के कारण पौधों में जल के अवशोषण में कमी होती है और वे सूखने लगते हैं। इसके परिणामस्वरूप, कृषि उत्पादन में कमी आती है और किसानों को आर्थिक नुकसान होता है।

पारिस्थितिकी तंत्र पर प्रभाव

मृदा लवणता केवल कृषि को ही प्रभावित नहीं करती, बल्कि यह पारिस्थितिकी तंत्र को भी प्रभावित करती है। लवणयुक्त मृदा में जीवों और पौधों का अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है। इसके अतिरिक्त, जलवायु परिवर्तन और प्राकृतिक संसाधनों की कमी पारिस्थितिकी तंत्र के अस्तित्व को चुनौती देती है। थार मरुस्थल में जो वनस्पतियाँ और जानवर रहते हैं, वे भी लवणयुक्त मिट्टी के कारण प्रभावित होते हैं।

जलवायु परिवर्तन

मृदा लवणता के कारण जलवायु परिवर्तन भी प्रभावित हो सकता है। जब मिट्टी में लवण जमा होते हैं, तो यह मिट्टी की जल धारण क्षमता को कम कर देता है और इस प्रकार जल संसाधनों का अधिकतम उपयोग नहीं हो पाता। इससे पर्यावरणीय असंतुलन उत्पन्न हो सकता है।

सामाजिक और आर्थिक प्रभाव

मृदा लवणता का सामाजिक और आर्थिक प्रभाव भी अत्यधिक होता है। किसानों की आय में कमी आती है, जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके अलावा, जल संकट और खाद्यान्न की कमी भी समाज पर विपरीत प्रभाव डाल सकती है।

मृदा लवणता के सुधार के उपाय

जल प्रबंधनः मृदा लवणता के सुधार के लिए जल प्रबंधन सबसे महत्वपूर्ण उपाय है। वर्षा के पानी का संचयन और उसका विवेकपूर्ण उपयोग लवणता को नियंत्रित कर सकता है। वर्षा जल संचयन प्रणाली, जैसे कि तालाब, जलाशय और कुएं, मृदा लवणता को कम करने में सहायक हो सकते हैं।

जल पुनर्चक्रणः पानी के पुनर्चक्रण के उपायों से मृदा में लवणता को नियंत्रित किया जा सकता है। जल पुनर्चक्रण से सिंचाई के लिए जल की उपलब्धता में वृद्धि होती है, और इससे मृदा के जल संतुलन को बनाए रखा जा सकता है।

जैविक उपचारः जैविक उपचार मृदा लवणता को कम करने का एक प्राकृतिक तरीका है। इसके तहत, विशेष प्रकार की फसलों और वनस्पतियों का उपयोग किया जा सकता है, जो लवणयुक्त मिट्टी में उग सकती हैं। उदाहरण के लिए, कुछ किस्म की घास और वनस्पतियाँ, जैसे कि सॉलिड सैलिनिफेरस प्लांट्स, लवणयुक्त मिट्टी में बढ़ सकती हैं और मिट्टी के लवण को कम कर सकती हैं।

लवणता सहिष्णु फसलों का चयनः लवणयुक्त मिट्टी में उगने वाली फसलों की किस्मों का चयन मृदा लवणता को सुधारने में सहायक हो सकता है। लवणता सहिष्णु, जैसे कि जौ, ज्वार और कुछ विशेष किस्म की फलियाँ, लवणयुक्त मिट्टी में सफलतापूर्वक उगाई जा सकती हैं और कृषि उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है।

सिंचाई प्रणालियों में सुधारः सिंचाई प्रणाली में सुधार करके मृदा लवणता की समस्या को कम किया जा सकता है। बूंद–बूंद सिंचाई और फव्वारेदार प्रणाली जैसी तकनीकों का उपयोग मृदा में पानी के वितरण को नियंत्रित करने में मदद कर सकता है। इन प्रणालियों के माध्यम से अधिक जल संरक्षण संभव है और लवणता को नियंत्रित किया जा सकता है।

मृदा की जाँच और संरचना का सुधारः मृदा के परीक्षण के आधार पर उसकी संरचना और लवणों का पता लगाया जा सकता है। यह जानकारी सुधारात्मक उपायों की योजना बनाने में सहायक होती है। उदाहरण के लिए, जैविक सामग्री को मृदा में मिलाकर उसकी जल धारण क्षमता और पोषक तत्वों की उपलब्धता में सुधार किया जा सकता है।

मृदा उपचारः मृदा उपचार के लिए विभिन्न रासायनिक और जैविक विधियाँ अपनाई जा सकती हैं। कैल्शियम सल्फेट, जिप्सम, और चूना जैसे रासायनिक पदार्थों का प्रयोग मृदा में लवणों की सांद्रता को कम करने में मदद कर सकता है। इसके अलावा, जैविक खाद और कंपोस्ट का प्रयोग भी मृदा की संरचना और जल धारण क्षमता को सुधार सकता है।

बायो–रीमेडिएशनः बायो–रीमेडिएशन एक जैविक प्रक्रिया है, जिसमें सूक्ष्मजीवों का उपयोग करके मृदा की गुणवत्ता में सुधार किया जाता है। यह विधि विशेष रूप से लवणयुक्त मृदा के लिए प्रभावी हो सकती है, जहां सूक्ष्मजीव नमक को अवशोषित करते हैं और मिट्टी की संरचना को पुनः सुधारते हैं।

वृक्षारोपण और घास की पलवारः मृदा लवणता को कम करने के लिए वृक्षारोपण और पलवार जैसी हरित आवरण प्रौद्योगिकियां भी प्रभावी हो सकती हैं। ये तकनीकें मृदा के ऊपर से पानी के वाष्पीकरण को नियंत्रित करती हैं और मृदा के लवण के संचय को कम करती हैं। इसके अलावा, ये तकनीकें मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने में मदद करती हैं।

सामुदायिक और सरकारी पहल

सरकारी योजनाएं और नीतियाँ

भारत सरकार और राज्य सरकारों द्वारा मृदा लवणता के सुधार के लिए कई योजनाएँ शुरू की गई हैं। इनमें प्रमुख योजनाएं जैसे राष्ट्रीय सत्त कृषि मिशन, वर्षा आधारित क्षेत्रों के लिए राष्ट्रीय जलसंभर विकास परियोजना और मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन आदि शामिल हैं। इन योजनाओं का उद्देश्य मृदा की गुणवत्ता में सुधार करना, जल संरक्षण बढ़ाना, और ग्रामीण कृषि को सशक्त बनाना है।

सामुदायिक भागीदारी

मृदा लवणता के सुधार के लिए सामुदायिक भागीदारी महत्वपूर्ण है। किसानों, स्थानीय समुदायों और अन्य प्राधिकरणों के बीच सहयोग से सुधारात्मक उपायों की प्रभावशीलता में वृद्धि हो सकती है। इसके अलावा, स्थानीय ज्ञान और पारंपरिक कृषि पद्धतियाँ भी सहायक हो सकती हैं।

निष्कर्ष

पश्चिमी राजस्थान के गर्म मरूस्थलीय क्षेत्र में मृदा लवणता एक गंभीर पर्यावरणीय और कृषि समस्या बन चुकी है। मृदा लवणता के कारण कृषि उत्पादन में गिरावट, जलवायु परिवर्तन और सामाजिक–आर्थिक संकट उत्पन्न हो रहे हैं। हालांकि, विभिन्न सुधारात्मक उपायों जैसे सिंचाई प्रणाली में सुधार, बायो–रीमेडिएशन, वृक्षारोपण, जल पुनर्चक्रण और सरकारी योजनाओं से मृदा लवणता को नियंत्रित किया जा सकता है और इस क्षेत्र की कृषि और पारिस्थितिकी को स्थिर किया जा सकता है। इसके अलावा, जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को भी ध्यान में रखते हुए दीर्घकालिक समाधान की आवश्यकता है। इस दिशा में सामुदायिक भागीदारी और सरकारी प्रयासों के जरिए सकारात्मक बदलाव लाए जा सकते हैं। यह महत्वपूर्ण है कि इस क्षेत्र में मृदा लवणता के समाधान के लिए समग्र दृष्टिकोण अपनाया जाए, जिसमें वैज्ञानिक, तकनीकी, और सामाजिक उपायों का समावेश हो।

समाप्त

3

संजय अरोड़ा, एकता चौधरी एवं अर्जुन सिंह
आईसीएआर–केंद्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय अनुसंधान केंद्र, लखनऊ
Email: aroraicar@gmail.com

जलवायु परिवर्तन का मृदा सूक्ष्मजीवों पर प्रभाव

जलवायु परिवर्तन, जो मुख्य रूप से जीवाश्म ईंधन के जलने और वनों की कटाई जैसी मानवीय गतिविधियों के कारण हो रहा है, ने ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को बढ़ा दिया है। इससे वैश्विक तापमान में वृद्धि और पर्यावरणीय असंतुलन उत्पन्न हो रहा है। हालांकि जलवायु परिवर्तन के मौसम और जैव विविधता पर प्रभाव को व्यापक रूप से जाना जाता है, लेकिन इसका मृदा के सूक्ष्मजीवों पर प्रभाव अपेक्षाकृत कम अध्ययन किया गया है। मृदा में मौजूद जीवाणु और कवक पोषक तत्व चक्रण, जैविक पदार्थों के विघटन और कार्बन भंडारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण बढ़ते तापमान, वर्षा में असंतुलन और कार्बनडाईआक्साइड के उच्च स्तर के कारण इनकी जैव विविधता और कार्यप्रणाली प्रभावित होती है। इससे मृदा की उर्वरता घट सकती है और ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन बढ़ सकता है। सूक्ष्मजीव प्राकृतिक पोषक तत्व चक्र (कार्बन, नाइट्रोजन और फॉस्फोरस चक्र) को बनाए रखने में मदद करते हैं। ये ग्रीनहाउस गैसों के उत्पादक और उपभोक्ता दोनों होते हैं, साथ ही कई सूक्ष्मजीव मानव, पशु और पौधों के रोगजनक भी होते हैं।

जलवायु परिवर्तन और मृदा सूक्ष्मजीवों का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

मृदा में रहने वाले सूक्ष्मजीव जलवायु परिवर्तन के अनुकूल होने की क्षमता रखते हैं, लेकिन औद्योगिक क्रांति (18वीं–19वीं शताब्दी) के बाद से इस संतुलन में बड़ा बदलाव आया है। औद्योगिक युग से पहले वायुमंडलीय कार्बनडाईऑक्साइड का स्तर 280 पीपीएम था, जो 2019 तक बढ़कर 409.8 पीपीएम हो गया, जिससे वैश्विक तापमान में 1.09 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि हुई। तापमान और वर्षा के पैटर्न मृदा के सूक्ष्मजीव समुदायों को नियंत्रित करने वाले प्रमुख कारक हैं। जहां पहले जलवायु परिवर्तन धीमी गति से होता था, वहीं वर्तमान में यह बहुत तेजी से हो रहा है, जिससे सूक्ष्मजीवों की गतिविधियाँ और पोषक तत्व चक्रण प्रभावित हो रहे हैं। मृदा की जैविक कार्बन सामग्री गहराई के अनुसार भिन्न होती है। शीर्ष सतह की मृदा में सूक्ष्मजीवों का अध्ययन अधिक हुआ है, जबकि गहरी परतों में स्थित कार्बन भंडार और वहाँ के सूक्ष्मजीवों की प्रतिक्रिया अभी भी अस्पष्ट है। कुछ शोध बताते हैं कि गहरी मृदा के सूक्ष्मजीव अधिक सहनशील हो सकते हैं, लेकिन दीर्घकालिक गर्मी इन कार्बन भंडारों को प्रभावित कर सकती है। इसलिए, भले ही सूक्ष्मजीव ऐतिहासिक रूप से जलवायु परिवर्तनों के अनुकूल रहे हों, लेकिन आधुनिक जलवायु परिवर्तन की तीव्र गति उनके लिए नई चुनौतियाँ पैदा कर रही है।

जलवायु परिवर्तन के कारण मृदा सूक्ष्मजीव विविधता में परिवर्तन

जलवायु परिवर्तन ने मृदा की जैव विविधता, इसके कार्यों और जैव–भू–रासायनिक चक्रों में महत्वपूर्ण बदलाव किए हैं। तापमान वृद्धि, वर्षा पैटर्न में बदलाव और बढ़ते वायुमंडलीय कार्बनडाईऑक्साइड स्तर से मृदा के सूक्ष्मजीवों की गतिविधियाँ प्रभावित हो रही हैं।

- तापमान वृद्धिः तापमान बढ़ने से सूक्ष्मजीवों की श्वसन दर 20–30 प्रतिशत तक बढ़ सकती है, जिससे कार्बनडाईऑक्साइड उत्सर्जन अधिक होता है।
- सूखा और अनियमित वर्षाः लंबे समय तक सूखे के कारण मिट्टी में सूक्ष्मजीवों की संख्या 25 प्रतिशत तक कम हो सकती है, जिससे पोषक तत्व चक्रण धीमा पड़ जाता है।
- पर्माफ्रॉस्ट का पिघलनाः पिछले दशक में स्थायी तुषार भूमि के पिघलने से मीथेन उत्सर्जन 5 तक बढ़ गया है।

- कार्बनडाईऑक्साइड के उच्च स्तरः वायुमंडलीय कार्बनडाईऑक्साइड बढ़ने से कार्बन विघटन एंजाइम गतिविधि 30 प्रतिशत तक बढ़ सकती है, जिससे मिट्टी में कार्बन हानि हो सकती है।
- ओजोन प्रभावः ओजोन प्रदूषण के कारण सूक्ष्मजीव विविधता में 15–25 प्रतिशत की गिरावट आती है, जिससे नाइट्रोजन चक्र प्रभावित होता है।

जलवायु परिवर्तन का मृदा सूक्ष्मजीव समुदायों पर प्रभाव

जलवायु परिवर्तन कारक	मृदा सूक्ष्मजीव समुदायों पर प्रभाव
तापमान वृद्धि (+2 डिग्री सेल्सियस से +4 डिग्री सेल्सियस)	सूक्ष्मजीवी श्वसन में 20–30 प्रतिशत वृद्धि, जिससे कार्बनडाईऑक्साइड उत्सर्जन में वृद्धि
दीर्घकालिक सूखा	सूक्ष्मजीवी जैव भार में 25 प्रतिशत कमी, एंजाइम गतिविधि में 15–40 प्रतिशत गिरावट
पर्माफ्रॉस्ट का पिघलना	सूक्ष्मजीवी क्रियाशीलता के कारण मिथेन उत्सर्जन में 50 प्रतिशत वृद्धि
कार्बनडाईऑक्साइड स्तर में वृद्धि (550 पीपीएम)	कार्बन अपघटित करने वाले एंजाइमों की गतिविधि में 30 प्रतिशत वृद्धि
ओजोन का प्रभाव	सूक्ष्मजीवी विविधता में 15–25 प्रतिशत की कमी, नाइट्रोजन चक्र में बदलाव
सूक्ष्मजीवी समुदाय में बदलाव	कवक–से–बैक्टीरिया अनुपात में 10–20 प्रतिशत वृद्धि

जलवायु परिवर्तन से प्रभावित सूक्ष्मजीव समूह

सूक्ष्मजीव समूह	प्रतिक्रिया	कारण
एक्टिनोबैक्टीरिया	वृद्धि	उच्च तापमान और शुष्क मिट्टी में पनपने की क्षमता
फर्मीक्यूट्स	वृद्धि	सूखा–सहिष्णुता, अत्यधिक परिस्थितियों में जीवित रहने की क्षमता
बैसिडियोमाइकोटा (जैसे माइकोराइज़ल कवक, मशरूम)	कमी	सूखे के कारण पौधों और कवकों की पारस्परिकता कमजोर होती है
मीथेनोजेनिक आर्किया	वृद्धि	पर्माफ्रॉस्ट पिघलने से मीथेन उत्पादन में वृद्धि
एसिडोबैक्टीरिया	कमी	तापमान वृद्धि और सूखे के प्रति संवेदनशीलता
प्रोटियोबैक्टीरिया	कमी	शुष्क और पोषक तत्वों की कमी वाली मिट्टी में संख्या में गिरावट

जलवायु परिवर्तन का मृदा जैविक स्वास्थ्य पर प्रभाव

बढ़ते तापमान का प्रभाव

ऊंचे तापमान से मृदा में सूक्ष्मजीवों की गतिविधि तेज हो जाती है, जिससे जैविक पदार्थों का तेजी से विघटन होता है और पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ती है। हालांकि, लगातार अधिक तापमान के संपर्क में रहने से सूक्ष्मजीवों की संरचना और उनके एंजाइम की कार्यक्षमता प्रभावित हो सकती है, जिससे मृदा की उपज क्षमता घट सकती है।

बदलते वर्षा पैटर्न का प्रभाव

वर्षा के अनियमित होने से मृदा में मौजूद सूक्ष्मजीवों की सक्रियता प्रभावित होती है। सूखे की स्थिति में नमी की कमी के कारण जैविक तत्वों का अपघटन धीमा हो जाता है, जबकि अत्यधिक वर्षा पोषक तत्वों को बहाकर मृदा की उर्वरता को नुकसान पहुंचाती है, जिससे मृदा का क्षरण तेज हो जाता है।

वायुमंडलीय कार्बनडाईऑक्साइड के बढ़ते स्तर का प्रभाव

वातावरण में कार्बनडाईऑक्साइड की अधिकता से पौधों की वृद्धि दर बढ़ जाती है, जिससे मृदा में जैविक पदार्थों की मात्रा बढ़ती है। हालांकि, यह परिवर्तन मृदा के सूक्ष्मजीवों की विविधता को बदल सकता है और पोषक तत्वों के चक्र को बाधित कर सकता है, जिससे मृदा की उर्वरता प्रभावित हो सकती है।

स्थायी तुषार भूमि के पिघलने और पोषक तत्वों की मुक्ति का प्रभाव

ठंडे क्षेत्रों में बढ़ते तापमान के कारण स्थायी रूप से जमी हुई मृदा (स्थायी तुषार भूमि पिघलने लगती है, जिससे इसमें संचित कार्बन और पोषक तत्व मुक्त हो जाते हैं। इससे मिट्टी में सूक्ष्मजीवों की गतिविधियां तेज हो जाती हैं, लेकिन साथ ही यह ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को भी बढ़ाती है, जिससे जलवायु परिवर्तन की समस्या और गंभीर हो जाती है।

सतत मृदा संरक्षण की आवश्यकता

जलवायु परिवर्तन के कारण पोषक तत्वों के खनिजीकरण की प्रक्रिया बाधित हो सकती है, जिससे मृदा की उर्वरता और कृषि उत्पादन प्रभावित हो सकते हैं। इस समस्या को कम करने के लिए स्थायी मृदा संरक्षण विधियों को अपनाना जरूरी है, ताकि मिट्टी की गुणवत्ता को बनाए रखा जा सके और पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव कम किया जा सके।

मृदा सूक्ष्मजीवों पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने की रणनीतियाँ

1. **कार्बन स्थिरीकरण:** मिट्टी में जैविक कार्बन की मात्रा बढ़ाने के लिए कवर फसलों, खाद, बायोचार और संरक्षण जुताई का उपयोग करें। साथ ही, कार्बन संचित करने वाले सूक्ष्मजीवों को बढ़ावा दें।

2. **ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में कमी:** मीथेन को कम करने वाले बैक्टीरिया को प्रोत्साहित करें, नाइट्रीफिकेशन अवरोधकों का उपयोग करें, रासायनिक उर्वरकों की जगह जैविक सूक्ष्मजीव इनोकुलेंट अपनाएं और सिंचाई प्रबंधन को बेहतर बनाएं।

3. **मृदा स्वास्थ्य में सुधार:** फसल चक्र अपनाकर, लाभकारी सूक्ष्मजीवों, जैविक संशोधनों और राइजोस्पेयर इंजीनियरिंग के माध्यम से मृदा में सूक्ष्मजीवों का संतुलन बनाए रखें।

4. **जलवायु अनुकूलन:** तनाव–सहिष्णु सूक्ष्मजीवों, बायोफिल्म बनाने वाले बैक्टीरिया और जैविक रोग नियंत्रण एजेंटों (बायोकंट्रोल) का उपयोग करके मिट्टी की जलवायु सहनशीलता को बढ़ाएं।

5. **अतिरिक्त उपाय:** वनीकरण (पेड़ लगाना), मल्चिंग (मिट्टी को ढककर संरक्षित करना), चट्टानों के अपक्षय को बढ़ावा देना और फसल–पशुपालन एकीकृत प्रणाली अपनाकर मृदा की स्थिरता बनाए रखें।

मानव स्वास्थ्य पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव

जलवायु परिवर्तन मानव स्वास्थ्य के लिए एक गंभीर खतरा बनता जा रहा है। यह अत्यधिक गर्मी से जुड़ी बीमारियों, श्वसन संबंधी समस्याओं और संक्रामक रोगों में वृद्धि कर रहा है। विशेषज्ञों ने इसे 21वीं सदी की एक प्रमुख स्वास्थ्य चुनौती माना है। बढ़ते तापमान और बदलते मौसम के कारण हीटवेव और अन्य चरम घटनाएँ अधिक तीव्र और लगातार हो रही हैं, जिससे प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार के स्वास्थ्य जोखिम बढ़ रहे हैं।

प्रत्यक्ष प्रभाव: हीटवेव, जंगल की आग और तूफानों जैसी प्राकृतिक आपदाओं के कारण लोगों को गंभीर चोटें लग सकती हैं और जानलेवा घटनाएँ हो सकती हैं।

अप्रत्यक्ष प्रभाव: जलवायु परिवर्तन खाद्य संकट, वायु और जल प्रदूषण को बढ़ावा देता है, जिससे मलेरिया और डेंगू जैसी बैक्टीरिया जनित बीमारियों का प्रसार तेज हो जाता है। इसके अलावा, जलजनित रोग, सांस की बीमारियाँ, कुपोषण, मानसिक स्वास्थ्य समस्याएँ और एलर्जी जैसी परेशानियाँ भी जलवायु परिवर्तन के कारण बढ़ रही हैं।

निष्कर्ष

जलवायु परिवर्तन मृदा में मौजूद सूक्ष्मजीव समुदायों को प्रभावित करता है, जिससे पोषक तत्वों का चक्र, कार्बन भंडारण और ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन बाधित होता है। बढ़ता तापमान, वर्षा पैटर्न में बदलाव और वायुमंडलीय कार्बनडाईऑक्साइड स्तर में वृद्धि मृदा की उर्वरता और खाद्य सुरक्षा के लिए गंभीर खतरा पैदा कर रही है। मृदा में जैविक कार्बन की मात्रा बढ़ाना, सूक्ष्मजीवी इनोकुलेंट्स का उपयोग करना और ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को नियंत्रित करना जैसी टिकाऊ प्रबंधन रणनीतियाँ मृदा के सूक्ष्मजीवों के स्वास्थ्य को बनाए रखने में सहायक हो सकती हैं। इसके अलावा, इस क्षेत्र में निरंतर शोध और अनुकूलन योग्य कृषि तकनीकों को अपनाना आवश्यक है ताकि मृदा की स्थिरता बनी रहे और जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों को कम किया जा सके।

समाप्त

4

रूही[1], मनीष कुशवाहा[2], पूजा गुप्ता सोनी[1]*, तारामणि यादव[3],
पारस कम्बोज[1], कन्नौज[1], सुकीर्ति[1] एवं सत्यवान आर्या[1]
[1]चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार, हरियाणा
[2]आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उत्तर प्रदेश
[3]कार्यालय सेवद बड़ी, सहायक निदेशक कृषि (वि.) सीकर, राजस्थान
Email: poojagupta.agri@gmail.com

पादप वृद्धि नियामकः लवणता तनाव के विरूद्ध फसल सहनशीलता के लिए सशक्त पदार्थ

पौधों की वृद्धि और विकास को सीमित करने वाले प्रमुख अजैविक कारकों में से एक मिट्टी की लवणता है। दुनिया भर में जलवायु परिवर्तन और उच्च गुणवत्ता वाले पानी की घटती उपलब्धता के कारण कृषि भूमि में लवणता बढ़ रही है। मिट्टी और पानी में उच्च लवण सांद्रता पौधों की शारीरिक और चयापचय प्रक्रियाओं में बाधा डालती है, जिसके परिणामस्वरूप अंततः वृद्धि, गुणवत्ता और उपज में कमी आती है। हाल के वर्षों में, पौधों की वृद्धि नियामकों (पीजीआर) का उपयोग आयनिक और रेडॉक्स होमोस्टेसिस को संशोधित करके, एंटीऑक्सीडेंट गतिविधि को बढ़ाकर और तनाव–प्रतिक्रियाशील जीन अभिव्यक्ति को प्रभावित करके तनाव के प्रति पौधों की सहनशीलता को बढ़ा सकता है। एब्सिसिक एसिड, सैलिसिलिक एसिड, जैस्मोनिक एसिड, जिबरेलिन, साइटोकाइनिन और एथिलीन जैसे वृद्धि नियामक पौधों की वृद्धि और उपज पर लवणता के हानिकारक प्रभावों को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

भारत में लगभग 6.73 मिलियन हेक्टेयर भूमि मृदा लवणता से प्रभावित है, जो देश के सम्पूर्ण भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 2.1 प्रतिशत है। गुजरात, उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र में देश का 60 प्रतिशत से अधिक लवण प्रभावित क्षेत्र है (चित्र 1)। अध्ययनों से पता चलता है कि लगभग 10 प्रतिशत भूमि सालाना लवणीय हो जाती है, और 2050 तक, लगभग 50 प्रतिशत कृषि योग्य भूमि नमक से क्षतिग्रस्त हो जाएगी। लवणीकरण दो तरीकों से होता हैः प्राथमिक और द्वितीयक। प्राथमिक लवणीकरण हवा और बारिश से प्रेरित समुद्री नमक या चट्टान के अपक्षय के परिणामस्वरूप होता है। शुष्क क्षेत्रों में, अत्यधिक सिंचाई, अपर्याप्त जल निकासी और खराब जल प्रबंधन के कारण लवण जमा हो जाते हैं, जिससे द्वितीयक लवणीकरण की समस्या आती है, फलस्वरूप प्रभावित खेतो में फसल की उपज घट जाती हैं और किसान प्रभावित खेतों को छोड़ने के लिए मजबूर हो जाते हैं जिससे भूमि क्षरण तेज हो जाता है। यह सिंचित कृषि की प्रमुख चिंता बन रही है।

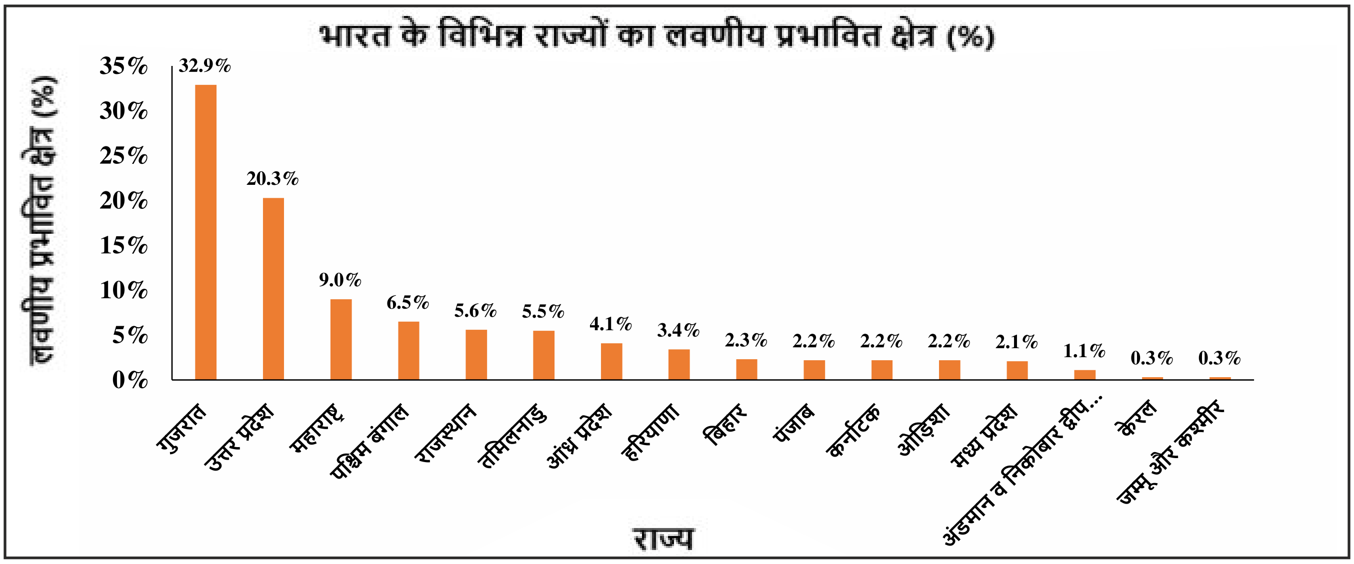

चित्र 1: भारत के विभिन्न राज्यों का लवणीय प्रभावित क्षेत्र

लवण प्रभावित कृषि योग्य भूमि के अनुमानित विस्तार को देखते हुए, विशेष रूप से शुष्क और अर्ध–शुष्क कृषि–पारिस्थितिकी तंत्रों में, लवणता तनाव के तहत फसल प्रदर्शन को बढ़ाने के लिए पीजीआर का उपयोग एक आशाजनक रणनीति का महत्वपूर्ण भाग है। हालांकि, सफल क्षेत्र–स्तरीय कार्यान्वयन के लिए खुराक, वितरण विधियों और समय–सारिणी के फसल–विशिष्ट मानकीकरण की आवश्यकता होती है। नैनो–सूत्रीकरण प्रौद्योगिकियों में प्रगति पादप वृद्धि नियामक की स्थिरता, जैव उपलब्धता और लक्षित वितरण में सुधार के लिए नए रास्ते प्रदान करती है। भविष्य के शोध को पौधों में पाए जाने वाले वृद्धि नियामक की भूमिका पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। हमें यह समझना होगा कि ये पीजीआर लवणता (खारेपन) को सहन करने की क्षमता को कैसे बढ़ाते हैं। इसके लिए आणविक स्तर पर होने वाली क्रियाओं को समझना ज़रूरी है। लवण सहनशीलता के आधार पर, पौधों को आम तौर पर दो समूहों में बाँटा गया हैः ग्लाइकोफाइट्स और हेलोफाइट्स। कुछ प्रजातियों को बेहतर विकास के लिए उच्च नमक की मात्रा वाले वातावरण की आवश्यकता होती है जैसे की हेलोफाइट्स, जो लवण की उच्च सांद्रता वाले वातावरण में जीवित रहते है। जबकि ग्लाइकोफाइट्स नमक के प्रति संवेदनशील होते हैं, खारी मिट्टी उनके बढ़ने और विकसित होने की क्षमता को गंभीर रूप से सीमित कर देती है। खेती की जाने वाली अधिकांश फसलें ग्लाइकोफाइट्स के अंतर्गत आती हैं।

पौधों पर लवणता तनाव के प्रभाव

अत्यधिक लवणता पौधों में पानी के अवशोषण को बाधित करती है, जिसके परिणामस्वरूप परासरणी तनाव, आयन विशाक्तता और ऑक्सीडेटिव नुकसान जिसमें पौधे की कोशिकाओं में हानिकारक रसायन (फ्री रेडिकल्स) उत्पन्न होते हैं और कोशिकाएं क्षतिग्रस्त हो जाती है

- आसमाटिक तनाव बाहरी जल क्षमता को कम करके और पौधों की पानी को अवशोषित करने की क्षमता को कम करके कोशिका विस्तार और विकास को प्रभावित करता है। इसके अतिरिक्त, यह रंध्रों को बंद कर देता है, जिससे पौधे की कार्बन डाइऑक्साइड अवशोषित करने की क्षमता कम हो जाती है।
- लवणता में वृद्धि के कारण सोडियम और क्लोराइड का संचय होता है, जो महत्वपूर्ण पोषक तत्वों, विशेष रूप से पोटेशियम, कैल्शियम और मैग्नीशियम के संतुलन को बिगाड़ देता है।
- प्रोटीन संश्लेषण और एंजाइम सक्रियण सहित महत्वपूर्ण कार्य इस आयनिक असंतुलन से प्रभावित होते हैं।

चित्र 2: गेहूँ की फसल पर लवणता तनाव का प्रभाव

लवणता तनाव के परिणामस्वरूप पौधों के ऊतकों में अत्यधिक मात्रा में प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन प्रजातियां उत्पन्न होती हैं। इनमें डीएनए, एंजाइम और लिपिड जैसे अवयवों के साथ–साथ पौधे की कोशिकीय संरचनाओं को गंभीर रूप से नुकसान पहुंचाने की क्षमता होती है।

लवणता तनाव को कम करने में पादप वृद्धि विनियामकों की भूमिका

पौधों की वृद्धि और उपज पर लवणता तनाव के हानिकारक प्रभावों को कम करने के लिए, दो अलग–अलग रणनीतियाँ अपनाई जा सकती हैं।

- पहली रणनीति में आणविक या पारंपरिक प्रजनन का उपयोग करके ऐसी किस्मों का निर्माण करना शामिल है जो नमक के प्रति प्रतिरोधी हों।

- दूसरी रणनीति कृषि पद्धतियों से संबंधित है जिसमे विभिन्न पादप वृद्धि नियामकों का उपयोग करके तनाव को कम करना शामिल है।

सिंथेटिक या प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले कार्बनिक रसायन जो बहुत कम सांद्रता पर उच्चतर पौधों की जैविक प्रक्रियाओं को प्रभावित करते हैं, उन्हें पादप वृद्धि नियामक कहा जाता है। पादप वृद्धि नियामक व्यापक रूप से सस्ते और फसलों पर प्रयोग करने में आसान हैं, और उन सभी का एक ही कार्य है कि विभिन्न हार्मोन संचरण मार्गों के भीतर संकेतन को संशोधित करके पौधों में आंतरिक हार्मोन स्तर को नियंत्रित करते हैं। पादप वृद्धि नियामक की प्रभावशीलता मेजबान पौधे और मृदा पर्यावरण के बीच अंतःक्रिया पर निर्भर करती है। पौधों को उनके हानिकारक लवण भार को कम करने में मदद करने के अलावा, पादप वृद्धि नियामक पानी और अन्य महत्वपूर्ण पोषक तत्वों की शारीरिक उपलब्धता को बढ़ाते हैं। पादप वृद्धि नियामक तनाव की स्थिति में प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन प्रजातियां को गैर विषैले स्तर पर बनाए रखने के लिए स्कैवेंजिंग एंजाइम की गतिविधि को बढ़ाकर नमक सहिष्णुता को बढ़ाते हैं। पीजीआर को विभिन्न वर्गों में वर्गीकृत किया जाता है, जैसे ऑक्सिन, साइटोकाइनिन, नाइट्रिक ऑक्साइड, जिबरेलिन (जीए), सैलिसिलिक एसिड, एब्सिसिक एसिड, ब्रासिनोस्टेरॉइड्स, एथिलीन आदि।

लवणता तनाव को कम करने में विशिष्ट पीजीआर की भूमिकाएँ हैं–

1. एब्सिसिक एसिड

- ये एक प्रमुख तनाव हार्मोन है जो लवणीय तनाव में पानी की हानि को कम करने के लिए रंध्र बंद करने की प्रक्रिया को नियंत्रित करता है और पौधे में पानी की सही मात्रा को बनाए रखता है।
- ये तनाव सम्बंधित जीन की अभिव्यक्ति को बढ़ाता है और आसमाटिक समायोजन में सुधार करने के लिए ऑस्मोलाइट्स के संचय को बढ़ावा देता है।
- ये सोडियम/पोटेशियम अनुपातों को विनियमित करके आयन होमियोस्टेसिस को नियंत्रित करता है।
- ये प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन प्रजातियों के कारण होने वाले ऑक्सीडेटिव तनाव का मुकाबला करने के लिए एंटीऑक्सीडेंट एंजाइम गतिविधि को बढ़ाता है।
- ये जड़ की वृद्धि को बढ़ाकर और सोडियम संचय को कम करके गेहूँ और मक्का जैसी फसलों में लवण सहिष्णुता में सुधार करता है।

2. जिबरेलिन

- ये कोशिका वृद्धि, बीज अंकुरण और समग्र वृद्धि को बढ़ावा देते है।
- उच्च लवण स्तरों के कारण होने वाले विकास अवरोध का प्रतिकार करते है।
- जिबरेलिन सोडियम विषाक्तता को कम करते हुए प्रकाश संश्लेषण दक्षता और पोषक तत्वों के अवशोषण को बढ़ाते है।
- अंकुर और जड़ की वृद्धि को बढ़ावा देकर टमाटर और जौ में लवण सहनशीलता में सुधार करते है।

3. ऑक्सिन (इंडोल–3–एसिटिक एसिड)

- ये जड़ के विकास को विनियमित करते है जो पानी और पोषक तत्वों के अवशोषण के लिए महत्वपूर्ण है।
- तनाव सहनशीलता से संबंधित जीन अभिव्यक्ति को नियंत्रित करते है और अन्य पीजीआर के साथ हार्मोनल संतुलन बनाए रखते है।

- पोषक तत्व अवशोषण को बढ़ाने के लिए पार्श्व जड़ गठन को बढ़ावा देते है।
- यह जड़ की वृद्धि में सुधार और ऑक्सीडेटिव क्षति को कम करके सोयाबीन में लवणता तनाव को कम करते है।

4. साइटोकाइनिन

- यह परिपक्वता में देरी करता है, क्लोरोफिल की मात्रा को बनाए रखता है, और कोशिका विभाजन को बढ़ावा देता है।
- यह एंटीऑक्सीडेंट को बढ़ाता है और सोडियम अवशोषण को कम करने के लिए आयन आवागमन को नियंत्रित करता है।
- काइनेटिन का प्रयोग क्लोरोफिल स्थिरता और एंटीऑक्सीडेंट गतिविधि को बढ़ाकर गेहूँ में लवण सहिष्णुता में सुधार करता है।

5. सैलिसिलिक एसिड

- यह लवणता–प्रेरित ऑक्सीडेटिव तनाव के खिलाफ पौधों की रक्षा और प्रकाश संश्लेषण दक्षता में सुधार करता है।
- यह एंटीऑक्सीडेंट एंजाइमों (जैसे, पीओडी, एपीएक्स) को बढ़ाता है और प्रोलाइन जैसे संगत विलेय के संश्लेषण को बढ़ावा देता है।
- यह सोडियम/क्लोराइड संचय को कम करके आयन होमियोस्टेसिस को नियंत्रित करता है।
- यह एंटीऑक्सीडेंट क्षमता को बढ़ाकर और झिल्ली स्थिरता बनाए रखते हुए मूंग और चावल में लवण सहिष्णुता में सुधार करता है।

6. जैस्मोनिक एसिड

- यह प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन प्रजातियों को नष्ट करने के लिए एंटीऑक्सीडेंट और द्वितीयक मेटाबोलाइट्स (जैसे, फेनोलिक्स) के संश्लेषण को बढ़ावा देता है।
- यह रंध्रों की गति और आयनों के आवागमन को नियंत्रित करता है।
- मिथाइल जैस्मोनेट के प्रयोग से प्रकाश संश्लेषण दरों में सुधार और सोडियम विषाक्तता को कम करके
- मिर्च में लवणता तनाव को कम करता है।

7. ब्रासिनोस्टेरॉइड्स

- यह प्रकाश संश्लेषण दक्षता और झिल्ली स्थिरता को बढ़ाकर पौधों की वृद्धि और तनाव सहिष्णुता में सुधार करता है।
- यह एंटीऑक्सीडेंट एंजाइम गतिविधि को बढ़ाता है, लिपिड पेरोक्सीडेशन को कम करता है, और तनाव–उत्तरदायी जीन अभिव्यक्ति को नियंत्रित करता है।
- यह सोडियम संचय को सीमित करते हुए पोटेशियम अवशोषण को बढ़ावा देता है।
- एपिब्रासिनोलाइड प्रयोग प्रकाश संश्लेषण और एंटीऑक्सीडेंट सुरक्षा में खीरे और चावल में नमक सहिष्णुता को बढ़ाता है।

8. एथिलीन

- यह तनाव प्रतिक्रियाओं को नियंत्रित करता है, सांद्रता और पौधों की प्रजातियों के आधार पर अलग–अलग प्रभाव डालता है। कम स्तर पर यह तनाव सहनशीलता को बढ़ावा दे सकता है।

- यह प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन प्रजातियों के स्केवेंजिंग सिस्टम को नियंत्रित करते हुए विकास और तनाव प्रतिक्रियाओं को संतुलित करने के लिए एब्सिसिक एसिड और ऑक्सिन जैसे अन्य हार्मोन के साथ सामंजस्य बनाये रखता है।
- एथिलीन (एथेफॉन) का प्रयोग जड़ की वृद्धि और आयन संतुलन में सुधार करके मक्का जैसी कुछ फसलों में नमक सहनशीलता को बढ़ा सकता है।

9. थायोयूरिया

- यह एंटीऑक्सिडेंट रक्षा तंत्र में सुधार करके सूखे, गर्मी और भारी धातु विषाक्तता से निपटने में मदद करता है।
- यह एंटीऑक्सिडेंट के रूप में कार्य करता है, हानिकारक आरओएस की सफाई करता है, और ऑक्सीडेटिव क्षति की रक्षा करता है।
- यह विभिन्न फसलों में गैस एक्सचेंज, पोषक तत्वों के उत्थान और कार्बोहाइड्रेट चयापचय को प्रभावित करके अनाज की उपज बढ़ाता है (चित्र 3)।

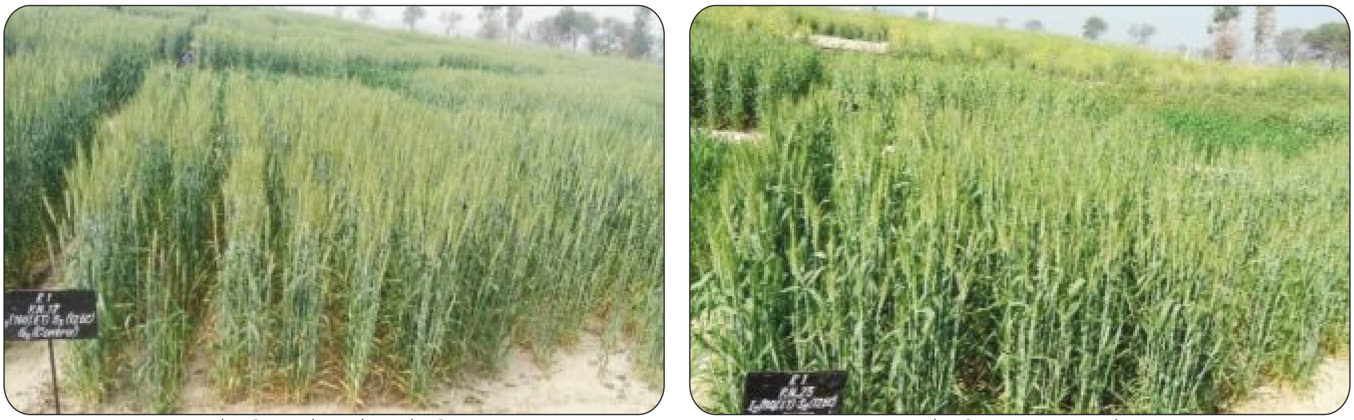

थायोयूरिया के प्रयोग के बिना | थायोयूरिया का अनुप्रयोग

चित्र 3: खारी मिट्टी और पानी में थायोयूरिया का गेहूँ की फसल पर प्रभाव

प्रयोग के तरीके

1. पत्तियों पर छिड़काव: इसमें पादप वृद्धि नियामक को पानी में घोलकर सीधे पौधों की पत्तियों पर छिड़का जाता है। इस विधि से जल्दी अवशोषण और शीघ्र प्रभाव होता है। ये पुष्पन को प्रेरित करने, फलों की संख्या को बढ़ाने या पत्तियों की वृद्धावस्था को रोकने में सहायक है (चित्र 4)।

ज्वार | गेहूँ

चित्र 4: लवणीय स्थिति में थायो–यूरिया का पत्तियों पर प्रयोग

1. बीज उपचार / बीज प्राइमिंग: बीजों को बोने से पहले पीजीआर घोल में भिगोया या लेपित किया जाता है। इससे अंकुरण, प्रारंभिक वृद्धि और तनाव सहनशीलता में सुधार होता है। ये लवणता या सूखे जैसे प्रतिकूल परिस्थितियों में अधिक उपयोगी है (चित्र 5)।

चित्र 5: बाजरा की फसल में सैलिसिलिक एसिड से बीज उपचार

3. **मृदा पर प्रयोग:** पानी या उर्वरक के साथ मिलाकर पौधों की जड़ क्षेत्र में दिया जाता है। इससे धीमा लेकिन दीर्घकालिक प्रभाव होता है। जड़ विकास और पोषक तत्व अवशोषण को बढ़ाने में सहायक है।

4. **कट्टिंग / जड़ो को डुबाना:** पौधों की कटिंग या जड़ों को पीजीआर घोल में लगाने से पहले डुबाया जाता है। इससे बेहतर जड़ जमाव और प्रारंभिक वृद्धि होती है। इस विधि का ज्यादा उपयोग बागवानी फसलों की वानस्पतिक प्रवर्धन में होता है।

5. **इंजेक्शन उपचार:** पादप वृद्धि नियामक को पौधों के ऊतकों में सीधे इंजेक्ट किया जाता है या विशेष भागों पर लगाया जाता है। इसका लक्षित और नियंत्रित प्रभाव होता है। इसका उपयोग वृक्षों या विशेष फसलों में होता है।

6. **सिंचाई प्रणाली से:** पादप वृद्धि नियामक को ड्रिप या स्प्रिंकलर सिंचाई प्रणाली के माध्यम से दिया जाता है। इसका नियंत्रित सिंचाई वाली फसलों में और बड़े क्षेत्रों में समान वितरण होता है।

निष्कर्ष

मिट्टी और पानी में उच्च लवण सांद्रता पौधों की शारीरिक और चयापचय प्रक्रियाओं में बाधा डालती है, जिसके परिणामस्वरूप अंततः विकास, गुणवत्ता और उपज में कमी आती है। लवणता तनाव के प्रति फसल की सहनशीलता बढ़ाने के लिए पौधों की वृद्धि नियामकों का उपयोग एक महत्वपूर्ण रणनीति है। ये नियामक हार्मोनल सिग्नलिंग को विनियमित करके, एंटीऑक्सीडेंट गतिविधि को बढ़ाकर और आयनिक और आसमाटिक संतुलन बनाए रखकर नमक प्रभावित परिस्थितियों में पौधों के जीवित रहने और उत्पादकता में मदद करते हैं।

समाप्त

5

रजा हैदर रिजवी, संजय अरोड़ा एवं संतोश कुमार
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, लखनऊ–226002 (उ.प्र.)
Email: razarizvi0972@gmail.com

शारदा सहायक नहर कमांड क्षेत्र में सेंटिनल–2 सुदूर संवेदी मानचित्रों की सहायता से क्षारीय मृदा का विश्लेषण

भारत में मृदा लवणता एवं क्षारीयता (सोडिकता) के कारण भूमि क्षरण एक गंभीर कृषि समस्या बन चुकी है। देश में लगभग 6.73 मिलियन हेक्टेयर भूमि सोडिक या क्षारीय मृदा से प्रभावित है। भविष्य में जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के कारण इस समस्या के और बढ़ने की संभावना है। इसके साथ, समुद्री तापमान में वृद्धि, वाष्पीकरण की तीव्रता तथा सिंचाई जल के अत्यधिक उपयोग के कारण भविष्य में यह समस्या और विकराल रूप लेने की आशंका है। विशेष रूप से नहर सिंचित क्षेत्रों में जलभराव और लवण संचय से क्षारीय मृदाओं का विस्तार तेजी से हो रहा है।

उत्तर प्रदेश का शारदा सहायक नहर कमांड क्षेत्र इस समस्या का एक प्रमुख उदाहरण है, जहाँ नहर सिंचाई के कारण मृदा की भौतिक–रासायनिक गुणवत्ता प्रभावित हुई है।

अध्ययन क्षेत्र एवं मृदा नमूना संग्रह

शारदा सहायक नहर कमांड क्षेत्र में लगभग 2.60 लाख हेक्टेयर भूमि जलमग्न है, जबकि 2.53 लाख हेक्टेयर भूमि अपेक्षाकृत लवणता–मुक्त पाई गई है (चित्र–1)। प्रतापगढ़ जिले से नहर कमांड क्षेत्र के अंतर्गत 15 चयनित स्थलों से भू–संदर्भित मृदा नमूने एकत्र किए गए। इन नमूनों का प्रयोगशाला में पी.एच., विद्युत चालकता (इ.सी.), जैविक कार्बन (ओ.सी.), सोडियम, पोटैशियम, जैसे मापदंडों के आधार पर विश्लेषण किया गया, ताकि मृदा की क्षारीयता की गंभीरता का आकलन किया जा सके (तालिका 1)।

तालिका 1: मृदा के विभिन्न मापदंडों का प्रयोगशाला में विश्लेषण

	पीएच	ईसी (dS/m)	आर्गेनिक कार्बन (%)	पीएचई	ईसीई (ds/m)	सोड़ियम (meq/l)	पौटैशियम (meq/l)
न्यूनतम	8.50	0.545	0.077	8.68	1.717	8.64	0.052
अधिकतम	10.77	8.92	0.617	10.54	26.760	341.04	2.051
औसत	9.93	2.78	0.28	9.62	8.867	100.31	0.43

मृदा विश्लेषण के प्रमुख निष्कर्ष

अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि 93 प्रतिशत मृदा नमूने क्षारीय प्रकृति के थे, जबकि केवल 7 प्रतिशत नमूने क्षारीय पाए गए। सतही मृदा का पी.एच. 8.5 से 10.77 के बीच पाया गया, जो फसल उत्पादन के लिए प्रतिकूल स्थिति को दर्शाता है। लगभग 50 प्रतिशत नमूनों में इ.सी. का मान 4 डेसीसीमेंस/मीटर से अधिक था, जो लवणीयता की गंभीरता को इंगित करता है। जैविक कार्बन की मात्रा कम (0.08–0.62 प्रतिशत) पाई गई, जो मृदा स्वास्थ्य में गिरावट का संकेत है। सोडियम की मात्रा सतह पर अधिक तथा गहराई के साथ कम होती गई, जिससे नहर जल के रिसाव द्वारा लवणों के स्थानांतरण की पुष्टि होती है।

तालिका 2: मृदा मापदंड एवं स्पेक्ट्रल सूचकांक के मध्य सह–संबंध

मृदा मापदंड	वर्णक्रमीय सूचकांक						
	एन.डी. एस.आई.	ब्राइटनेस सूचकांक	एस. आई–2	एस. आई–4	एस. आई–7	एस. आई–8	एस. आई–9
पी.एच.	0.357	0.433*	0.438*	0.453*	0.445*	0.420*	0.321
ई.सी.	0.05	0.343	0.354	0.354	0.346	0.336	0.331
जैविक कार्बन	–0.308	–0.370*	–0.379*	–0.390*	–0.391*	–0.330	.0.239
पी.एचई	0.254	0.465*	0.475**	0.482**	0.482**	0.471**	0.421*
ई.सीई (ds/m)	–0.019	0.128	0.143	0.139	0.149	0.127	0.128
सोडियम (mq/l)	–0.018	0.286	0.304	0.298	0.306	0.28	0.294
पोटेशियम (mq/l)	–0.115	–0.101	0.093	–0.093	*0.088	–0.065	.0.001

सेंटिनल–2 सुदूर संवेदी तकनीक का उपयोग

क्षारीय मृदाओं की पहचान एवं क्षेत्रीय आकलन हेतु सेंटिनल–2 उपग्रह चित्रों का उपयोग किया गया। मृदा मापदंडों एवं वर्णक्रमीय सूचकांकों के बीच सह–संबंध का विश्लेषण किया गया (तालिका 2)। क्यु.जी.आई.एस.सॉफ्टवेयर की सहायता से 10–20 मीटर स्पेशियल रेजोल्यूशन वाले बैंडों का विश्लेषण किया गया (तालिका 3)। इसके साथ, क्यु.जी.आई.स. सॉफ्टवेयर की सहायता से विभिन्न वर्णक्रमीय सूचकांक जैसे ब्राइटनेस इंडेक्स, एस.आई–2, एस.आई–4, एस.आई–7, एस.आई–8 एवं एन.डी.वी.आई विकसित किए गए। अध्ययन में यह पाया गया कि एन.डी.वी.आई. का मृदा मापदंडों से कोई महत्वपूर्ण संबंध नहीं था, जबकि ब्राइटनेस इंडेक्स एवं कुछ साल्ट इंडेक्स का पी.एच. साथ अच्छा सह–संबंध पाया गया।

तलिका 3: सेंटिनल–2 उपग्रह के स्पेक्ट्रल बैंड एवं उनका स्पेशियल रेजोल्यूशन

कम.सं.	सेंटीनल–2 स्पेक्ट्रल बैंड	रिजोल्यूशन (मी0)
1	बैंड 1 – कोस्टल एरोसोल	60
2	बैंड 2 – नीला	10
3	बैंड 3 – हरा	10
4	बैंड 4 – लाल	10
5	बैंड 5 – वेजीटेशन रेड ऐज	20
6	बैंड 6 – वेजीटेशन रेड ऐज	20
7	बैंड 7 – वेजीटेशन रेड ऐज	20
8	बैंड 8 – नियर इफ्रारेड	10
9	बैंड 8। – वेजीटेशन रेड ऐज	20
10	बैंड 9 – वाटर वेपर	60
11	बैंड 10 – शार्ट वेव इफ्रारेड–साइरस	60
12	बैंड 11 – शार्टवेव इफ्रारेड	20
13	बैंड 12 – शार्टवेव इफ्रारेड	20

भूमि उपयोग एवं सोडिक मृदा का विस्तार

सेटीनेल–2 चित्रणों द्वारा उत्पन्न विभिन्न भूमि उपयोगों के स्पेकट्रल सिग्नेचरो को चित्र–2 में दर्शाया गया है। जिससे स्पष्ट है कि लवणीय मृदा की सिग्नेचर औरों से बिल्कुल भिन्न है। मई 2022 एवं मई 2023 के सेंटिनल–2 आंकड़ों के तुलनात्मक विश्लेषण से यह स्पष्ट हुआ कि प्रतापगढ़ जिले में क्षारीय मृदा क्षेत्र 18,652 हेक्टेयर (5.2 प्रतिशत) से बढ़कर 20,125 हेक्टेयर (5.6 प्रतिशत) हो गया है (तालिका 4)। यह वृद्धि सत्त निगरानी एवं सुधारात्मक उपायों की तत्काल आवश्यकता को दर्शाती है। चित्र–3 एवं चित्र–4 प्रतापगढ़ जिले में विभिन्न भूमि उपयोग/भूमि क्षेत्र का वर्गीकरण को दर्शाता है।

तलिका 4: प्रतापगढ़ जिले में विभिन्न भूमि उपयोग/ भूमि क्षेत्र का वर्गीकरण (मई 2022 एवं मई 2023)

			मई 2022	मई 2023	
वर्ग	वर्गीकरण	क्षेत्रफल (हे0)	क्षेत्रफल (%)	क्षेत्रफल (हे0)	क्षेत्रफल (%)
1	जल क्षेत्र/जल भंडारण	17460.11	4.87	20011.29	5.58
2	निर्मित/रेतीला क्षेत्र	49381.23	13.77	65929.53	18.39
3	वनस्पतियाँ/वृक्षारोपण	175300.87	48.89	200109.64	55.81
4	परती भूमि	97787.75	27.27	52406.7	14.61
5	सोडिक मृदा	18652.36	5.20	20125.16	5.61
		358582.32		358582.32	

चित्र 1: उत्तर प्रदेश में शारदा सहायक नहर कमांड क्षेत्र का अवस्थिति मानचित्र

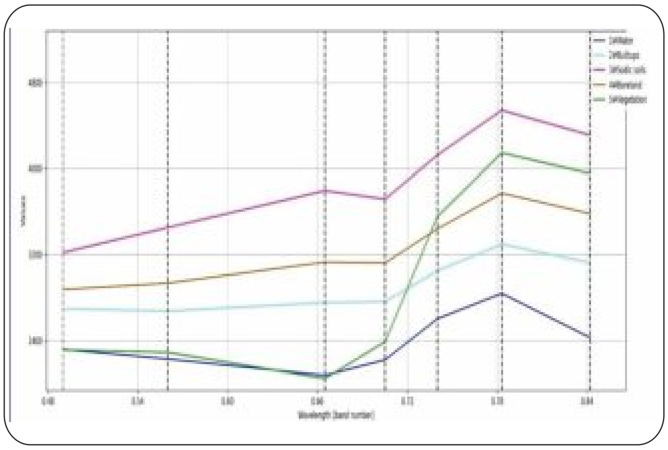

चित्र 2: प्रतापगढ़ जिले में विभिन्न भूमि उपयोग/ भूमि क्षेत्र का स्पेक्ट्रल सिग्नेचर

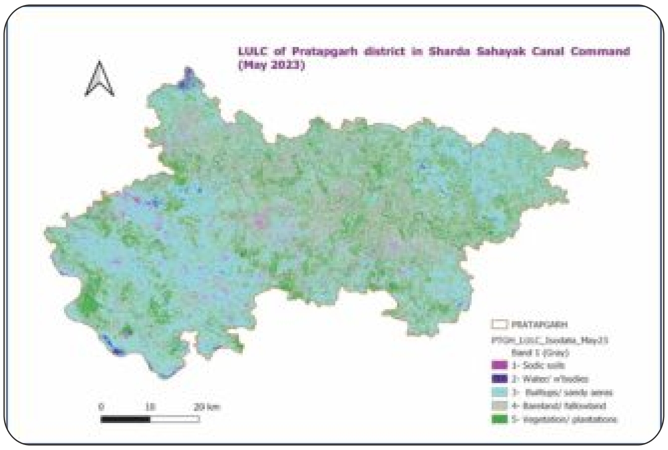

चित्र 3: प्रतापगढ़ जिले में भूमि उपयोग/ भूमि क्षेत्र के वर्गीकरण का मानचित्र (मई 2022)

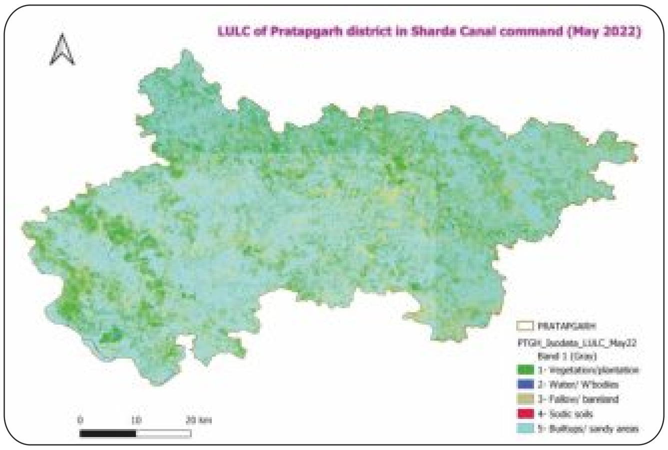

चित्र 4: प्रतापगढ़ जिले में भूमि उपयोग/ भूमि क्षेत्र के वर्गीकरण का मानचित्र (मई 2023)

निष्कर्ष

यह अध्ययन सिद्ध करता है कि सेंटिनल–2 सुदूर संवेदी आंकड़े क्षारीय मृदाओं की पहचान, मानचित्रण एवं निगरानी के लिए एक प्रभावी, त्वरित और किफायती उपकरण हैं। नहर कमांड क्षेत्रों में मृदा क्षरण की समस्या को नियंत्रित करने के लिए इस तकनीक का उपयोग नीति–निर्माताओं, वैज्ञानिकों और कृषकों के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। समय पर पहचान और उपयुक्त भूमि सुधार उपायों के माध्यम से शारदा नहर कमांड क्षेत्र में कृषि उत्पादकता को स्थायी रूप से बढ़ाया जा सकता है।

समाप्त

6

निताक्षी शर्मा[1], चारुलता[1]*, प्रमोद प्रसाद[1], ओम प्रकाश गंगवार[1],
संतोष कुमार बिश्नोई[2], रविन्द्र कुमार[2] एवं अरविन्द कुमार[3]
[1]भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय केंद्र, शिमला
[2]भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल
[3]भा.कृ.अनु.प.–केंद्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल
*Email: charusharmabiotech@gmail.com

लवण सहनशील गेहूँ की किस्में: अनुसंधान एवं विकास

चीन के बाद भारत विश्व का दूसरा सबसे बड़ा गेहूँ उत्पादक देश है। देश में वर्ष 2022 में कुल गेहूँ उत्पादन 106.84 मिलियन टन रहा। पिछले कई दशकों में भारत में गेहूँ के उत्पादन में लगातार वृद्धि हुई है। वर्ष 2050 में भारत की जनसँख्या 1.7 अरब अनुमानित की गयी है और उस समय देश की कुल खाद्यान्न आवश्यकता 333 मिलियन टन होने की उम्मीद है। कुल खाद्यान्न उत्पादन में गेहूँ की भूमिका महत्वपूर्ण है और देश के गेहूँ उत्पादन में निरंतर वृद्धि प्राप्त करके 333 मिलियन टन खाद्यान्न उत्पादन का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है। हालांकि, गेहूँ का उत्पादन, पौधे के विभिन्न जीवन चक्र चरणों में संचालित होने वाले विभिन्न प्रकार के अजैविक और जैविक तनावों से बाधित होता है। अजैविक तनावों में से कई सीधे मृदा की प्रकृति से संबंधित हैं जिसमें फसल उगाई जा रही है। पृथ्वी पर उपलब्ध सभी प्राकृतिक संसाधनों में मृदा का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। लगभग सभी प्रकार की वनस्पतियों, कृषि पद्धतियों और कृषि उत्पादन का अस्तित्व विभिन्न फसल पौधों के लिए उपयुक्त मृदा की उपलब्धता पर निर्भर करता है। चट्टानों से मृदा का उत्पादन एक लंबी और जटिल प्रक्रिया है जो कि पृथ्वी की ऊपरी सतह को बनाती है तथा विभिन्न जैविक और भौतिक घटनाओं द्वारा मातृ चट्टान के क्षरण में विभिन्न कार्बनिक और अकार्बनिक पदार्थों के मिश्रण से बनती है। विश्व भर की मृदा में अत्यधिक विविधता पाई जाती है और यह मुख्य रूप से मातृ–चट्टान के प्रकार और उसमें मौजूद कार्बनिक–अकार्बनिक तत्वों या यौगिकों की मात्रा और विविधता पर निर्भर करती है। जलवायु और पारिस्थितिक परिवर्तनशीलता के परिणामस्वरूप, भारत में मृदा की विविधता का व्यापक विस्तार है। इन मृदाओं को आठ मुख्य श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है जो की जलोढ़ मृदा, काली मृदा, लाल और पीली मृदा, लैटेराइट मृदा, शुष्क मृदा, लवणीय मृदा, पीट मृदा और वन मृदा हैं (चित्र1)। सिंचित परिस्थितियों वाली दोमट मृदा गेहूँ की फसल के लिए उतम है। भारत में गेहूँ लगभग सभी प्रकार की मृदाओं में उगाया जाता है। कृषि फसलों के लिए प्रत्येक प्रकार की मृदा की उपयुक्तता अलग होती है और कुछ मृदाएँ कृषि उत्पादन के लिए एक गंभीर चुनौती भी होती है। हालाँकि, भारत में गेहूँ लगभग सभी प्रकार की मृदाओं में उगाया जाता है। इनमें से लवणीय मृदा एक ऐसी मृदा है जो कृषि उत्पादन बढ़ाने की दृष्टि से एक गंभीर चुनौती प्रस्तुत करती है।

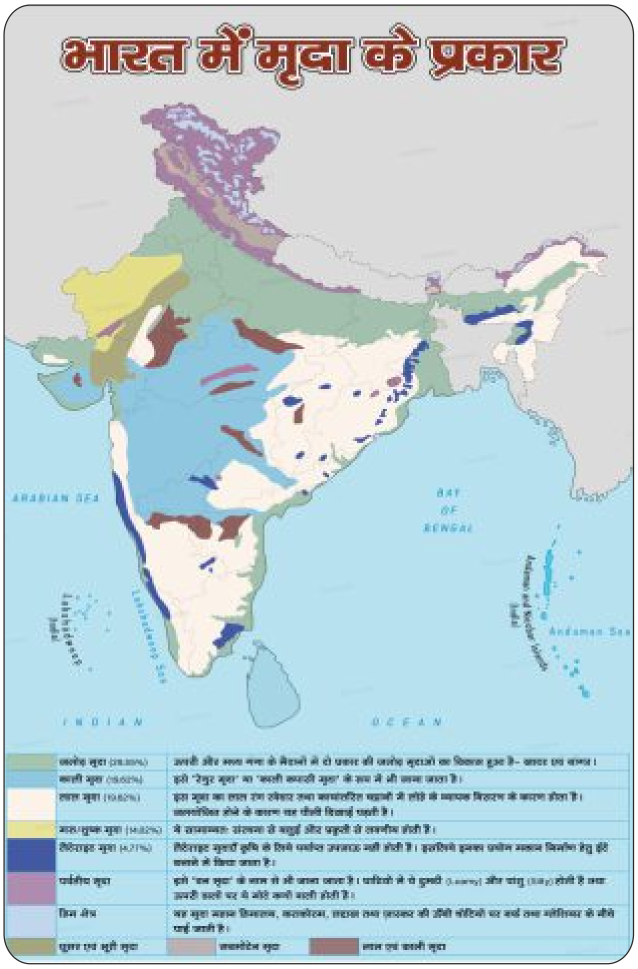

चित्र 1: भारत में मृदा के प्रकार
Source: Drishti IAS

वह मृदा जिसकी संतृप्त पेस्ट की विद्युत चालकता 4 डेसीसीमेंस/मीटर से अधिक होती है और पी.एच. 8.5 से कम होता है, लवणीय मृदा की श्रेणी में आती है। मृदा लवणता दो प्रकार की होती है। प्राकृतिक कारणों से उत्पन्न होने वाली लवणता को प्राथमिक मृदा लवणता कहते हैं। यह मुख्य रूप से मातृ चट्टान में मौजूद नमक के क्षरण और भूजल के माध्यम से प्राकृतिक लवणों की मात्र के बढ़ जाने के कारण उत्पन्न होती है। दूसरी ओर, द्वितीयक मृदा लवणता मानवीय गतिविधियों के माध्यम से अस्तित्व में आती है। इसका मुख्य कारण खारे पानी से भूमि की सिंचाई है। कम वर्षा वाले क्षेत्रों में अधिक सिंचाई के कारण पानी की सतह ऊपर उठती है और मृदा के लवण पानी के माध्यम से सतह पर आ जाते हैं। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में उचित जल निकासी की कमी के कारण, सतह के लवण पानी में घुल जाते हैं और पानी के वाष्पित होने पर नमक की परत सतह पर जमा हो जाती है। मृदा का परीक्षण करके इसकी लवणता का पता लगाया जाता है (चित्र2)। ऐसी भूमि में सोडियम, मैग्नीशियम, कैल्शियम, पोटेशियम और क्लोराइड तत्व और उनके यौगिक प्रमुख रूप से उपस्थित रहते हैं। यदि केवल सोडियम की प्रधानता के कारण मृदा का पीएच अधिक होता है, तो ऐसी भूमि को क्षारीय भूमि के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। लवणीय/क्षारीय मृदा की उत्पादकता प्रायः बहुत कम होती है। भारत में विशेषकर हरित क्रांति के क्षेत्रों में प्राथमिक और द्वितीयक मृदा की लवणता गेहूँ के सतत उत्पादन में एक गंभीर चुनौती है। सामान्यतः उच्च उपज वाली किस्मों के लिए गहन सिंचाई की आवश्यकता होती है, और इसलिए उत्तर–पश्चिमी राज्यों विशेष रूप से पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और उत्तरी राजस्थान में अक्सर सिंचाई जल जनित लवणता वाले क्षेत्र पाए जाते हैं। कृषि फसलों को उनके लवणता प्रतिरोध के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है और गेहूँ मध्यम प्रकार की लवणता वाली फसल पाई गई है। यह 8.0 डेसीसीमेंस/मीटर तक विद्युत चालकता वाली मृदा में सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है। मृदा लवणता मुख्य रूप से फसल पौधों पर अपना नकारात्मक प्रभाव दो प्रकार से छोड़ती है। यह पौधे के जड़ क्षेत्र में नमक की मात्रा को बढ़ाकर पौधे को पानी की उपलब्धता को कम करती है और नमक–विषाक्तता उत्पन्न करती है। ऐसी मृदा में सुधार के लिए यांत्रिक (उपसतह जल निकासी, लीचिंग विधि) रासायनिक (जिप्सम आदि) और जैविक विधियों (फसल चक्र, फसल चयन, हरी खाद आदि) सहित कई तरीके विकसित किए गए हैं। इसके बावजूद, नमक से प्रभावित मृदा में अच्छा उत्पादन लेने के लिए नमक सहिष्णु गेहूँ की किस्मों का विकास अपेक्षाकृत आर्थिक तथा पर्यावण की दृष्टि से एक टिकाऊ तरीका है। लवणता सहिष्णु गेहूँ किस्म विकसित करने की तीन प्रमुख रणनीतियाँ अपनाई जा सकती हैं:

चित्र 2: परीक्षण हेतु मृदा के नमूने
(Source: Evergreen Economy Testing & Research Laboratory (ETRL) site)

1. आनुवाँशिक जननद्रव्यों का मूल्यांकन और चयन: जहां तक प्रमुख अजैविक तनावों के प्रतिरोध का संबंध है, गेहूँ के जीन पूल में अद्वितीय आनुवंशिक विविधता पायी जाती है। इस विधि में सभी उपलब्ध आनुवाँशिक संसाधनों का परीक्षण स्थानीय लवणता की परिस्थितियों में किया जाता है और स्थानीय जलवायु के लिए उपयुक्त उच्च उपज और लवणता सहिष्णु किस्मों की पहचान की जाती है। लवणता सहिष्णु किस्म विकसित करने के लिए यह रणनीति सरल और त्वरित विधि है। हालांकि, यह इस बात से ग्रस्त है कि चयनित किस्म पहले से जारी गेहूँ की किस्मों से बेहतर नहीं हो सकती है। इसलिए प्रजनन प्रक्रिया के लिए लवणता सहिष्णु आनुवाँशिक संसाधन की पहचान के लिए इसे पूर्व–प्रजनन के एक भाग के रूप में उपयोग किए जाने पर यह रणनीति अधिक लाभकारी सिद्ध होती है।

2. किस्म प्रजनन और विकास: जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, उच्च उपज और लवणता सहनशीलता एक ही किस्म में मौजूद हो ऐसा आवश्यक नहीं है। इसलिए, उन्हें दो या दो से अधिक गेहूँ जननद्रव्यों के क्रॉस से एक किस्म में लाने की आवश्यकता रहती है। यह विधि वर्षों से गठित एक सुनियोजित प्रजनन कार्यक्रम के निष्पादन की मांग करती है। इन दिनों गेहूँ की अधिकांश किस्में इस विधि से विकसित की जा रही हैं जिसमें मुख्य रूप से प्रजनन की वंशावली पद्धति का

उपयोग किया जाता है। इस विधि से किस्म विकास के लिए 10 से 12 वर्ष का समय लगता है जिसे कम करने के लिए शटल ब्रीडिंग यानी एक वर्ष में गेहूँ की दो पीढ़ियों को भिन्न भौगोलिक परिस्थितियों में उगा कर 5–6 वर्षों में ही नई किस्मों को विकसित किया जा सकता है।

3. जैव प्रौद्योगिकी के माध्यम से आनुवंशिक संशोधनः ट्रांसजेनिक जीन ट्रान्सफर वाली यह विधि छोटी और अधिक प्रभावी है, लेकिन इस तरह की विधि द्वारा विकसित किस्मों की रिलीज की प्रक्रिया बेहद जटिल और लंबी होती है (चित्र3)। इस विधि में पुनः संयोजक डीएनए तकनीक का उपयोग लवणता सहिष्णु जीन को दूसरी किस्म या प्रजाति से स्थानांतरित करने के लिए किया जाता है और वहां से कटे हुए जीन को वांछनीय लक्षण वाली गेहूँ किस्म में स्थानांतरित कर दिया जाता है। इस तकनीक में वांछित जीन ट्रान्सफर इवेंट न केवल कठिन है बल्कि दुर्लभ भी है। एक अनुसन्धान में AtNHXI नामक एक जीन को अरबीडॉप्सिस प्रजाति से गेहूँ में सफलतापूर्वक स्थानांतरित किया गया था और इस किस्म ने लवणता की परिस्थितियों में इस जीन की कमी वाली किस्मों से बेहतर प्रदर्शन किया। इसी तरह, विभिन्न प्रकार के गेहूँ में P5CS नामक जीन के स्थानांतरण से भी उच्च सोडियम वाली परिस्थितियों में बेहतर प्रदर्शन हुआ है।

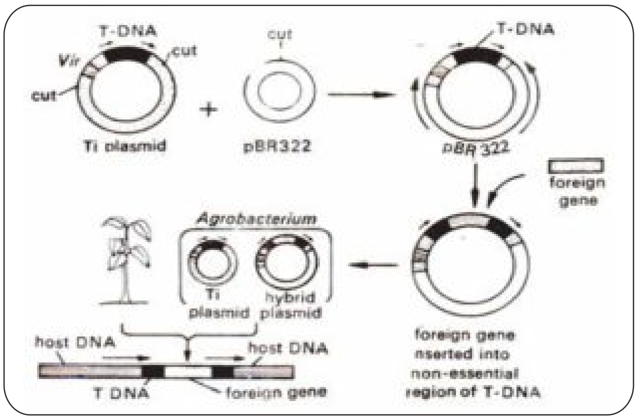

चित्र 3: ट्रांसजेनिक जीन ट्रान्सफर विधि के माध्यम से अनुवांशिक संशोधन
(Source: https://biocyclopedia.com)

लवणता सहिष्णु गेहूँ की किस्मों के प्रजनन और विकास की उपर्युक्त विधियों के संयोजन से लवणता सहनशीलता वाली किस्मों का विकास किया गया है और प्रमुख सफल किस्मों का वर्णन नीचे किया गया हैः

खारचिया–65: लवणता प्रतिरोध के लिए विकसित यह अपनी तरह की पहली किस्म है। इसे राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर के द्वारा सन 1978 में विश्व प्रसिद्ध लवणता सहिष्णु देशी किस्म खारचिया से विकसित किया गया था जो राजस्थान में पाली जिले के मारवाड़ जंक्शन उपखंड के खारची ग्राम से संग्रहित की गयी थी। इस किस्म के संरक्षण के लिए खारची ग्राम पंचायत को पौध किस्मों और किसान अधिकार प्राधिकरण (पीपीवी और एफआरए) के द्वारा प्लांट जीनोम सेवियर कम्युनिटी अवार्ड से भी सम्मानित किया जा चुका है। खारचिया–65 अपेक्षाकृत देर से पकने वाली (149 दिन) और लंबी (110.5 सेमी) किस्म है। 6.0 डेसीसीमेंस/मीटर और 9.5 पी.एच. वाली मृदा में यह किस्म प्रति हेक्टेयर 40 क्विंटल तक उपज देने की क्षमता रखती है। यह किस्म स्वाद में बेहतर है और करनाल बंट आदि जैसे कई रोगों के लिए प्रतिरोधी है और लवणता/{ारीयता के कारण अकाल ग्रसित क्षेत्रों के लिए अत्यधिक उपयुक्त है।

केआरएल–1–4: इस किस्म को केंद्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल द्वारा 1990 में खारचिया–65 और डब्ल्यू एल–11 किस्मों के प्रजनन द्वारा विकसित किया गया था और भारत के उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्र के साथ–साथ उत्तर–पूर्वी मैदानी क्षेत्र के लिए अनुशंसित किया गया है। सामान्य बुवाई की स्थिति (5 से 20 नवंबर) यह औसतन 132 दिनों में पकती है और इसके पौधों की औसत लम्बाई 89 से.मी. होती है। इसके मध्यम आकार और हल्के भूरे–पीले रंग के दानों में 12 प्रतिशत तक प्रोटीन होता है। यह गेहूँ के तीनों रतुओं के लिए प्रतिरोधी है और पसारने (लोजिंग) के लिए भी सहिष्णु है। सामान्य उत्पादन के लिए इसकी लवणता सहिष्णुता सीमा 7.0 डेसीसीमेंस/मीटर और क्षारीयता सहिष्णुता 9.3 पी.एच. है। केआरएल–1–4 सामान्य मृदा में प्रति हेक्टेयर 50 क्विंटल तक और लवणीय मृदा में 30 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक उपज दे सकती है।

तलिका 4: लवण प्रभावित क्षेत्रों के लिए अनुशंसित गेहूं किस्में एवं उनकी प्रमुख विशेषताएँ।

क्र.सं.	किस्म का नाम	वंशावली	लवणता सहनशीलता	पौधे की लंबाई	परिपक्वता अवधि	औसतन पैदावार
1.	खारचिया–65	KHARCHIA-65	ईसीई 6.0 डेसीसीमेंस / मीटर तक	110.5 से.मी	149 दिन	40 क्विंटल
2.	केआरएल.1–4	KHARCHIA -65/WL-711	ईसीई 7.0 डेसीसीमेंस / मीटर तक	89 से.मी	132 दिन	30.50 क्विंटल
3.	केआरएल–19	PBW-255/KRL 1-4	ईसीई 7.3 डेसीसीमेंस / मीटर तक	85 से.मी	132 दिन	35.55 क्विंटल
4.	केआरएल–210	PBW-65/2*PASTOR	ईसीई 6.6 डेसीसीमेंस / मीटर तक	99 (97–100) से.मी	143 दिन	43.55 क्विंटल
5.	केआरएल–213	CNDO/R143//ENTE/MEXI_2/3/AegilopssquarrosaTAUS)/4/WEAVER/5/2*KAU	ईसीई 6.4 डेसीसीमेंस / मीटर तक	97 (95–99) से.मी	155 दिन	40.65 क्विंटल
6.	केआरएल–283	CPAN-3004/ Kharchia-65/ PBW-343	ईसीई 6.7 डेसीसीमेंस / मीटर तक	66–70 से.मी	133 दिन	21.41 क्विंटल

केआरएल–19: इस किस्म को भी वर्ष 2000 में केंद्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल द्वारा लवण सहिष्णु केआरएल–1–4 और अधिक उपज क्षमता वाली किस्म पीबीडी–255 के प्रजनन द्वारा विकसित किया गया है। यह 85 से.मी. की औसत ऊंचाई के साथ एक अपेक्षाकृत बौनी किस्म है और यह औसत 132 दिनों में परिपक्व होती है। सामान्य बुवाई की स्थिति (5 से 20 नवंबर) के तहत उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्र और उत्तर–पूर्वी मैदानी क्षेत्र में खेती के लिए भी इस किस्म की सिफारिश की गई है। इसके दाने मध्यम आकार के होते हैं और प्रोटीन की मात्रा 12 प्रतिशत होती है। केआरएल–19 की उपज क्षमता 7.0 डेसीसीमेंस / मीटर की लवणता की स्थिति और 9.3 पी.एच. के साथ 35 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक है। जबकि सामान्य मृदा में प्रति हेक्टेयर 55 क्विंटल तक उपज देने की इस किस्म की क्षमता है।

केआरएल–210: इस किस्म को W65 और पास्टर नाम की दो किस्म को प्रजनन करके विकसित किया गया है। यद्यपि, इसका लवणता सहिष्णुता स्तर 6.6 डेसीसीमेंस / मीटर है जो ऊपर वर्णित अन्य किस्मों की तुलना में कम है, फिर भी लवणता की स्थिति में इसकी संभावित उपज उच्चतम है। यह किस्म वर्ष 2010 में केंद्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल द्वारा विकसित की गई है और यह 143 दिनों की औसत अवधि में परिपक्व होती है। यह 9.3 तक के पीएच को सहन कर सकती है और सामान्य परिस्थितियों में 52 क्विंटल प्रति हेक्टेयर और लवणीय / क्षारीय भूमि में 35 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक की संभावित उपज देने की क्षमता रखती है। इसके दाने मोटे होते हैं और इसे उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों और उत्तर–पूर्वी मैदानी क्षेत्रों में सामान्य बुवाई के समय के लिए अनुशंसित किया गया है।

केआरएल–213 : यह लवणता सहिष्णु किस्म मध्यम आकार के दानों की है और इसे वर्ष 2010 में केंद्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित किया गया था, जिसमें कुछ स्वदेशी और विदेशी लाइनों और गेहूँ की वन्य प्रजातियों को शामिल करते हुए एक जटिल वंशावली का उपयोग किया गया था। उत्तर–पश्चिमी और उत्तर–पूर्वी मैदानी क्षेत्रों में सामान्य बुवाई के समय के लिए इस किस्म की सिफारिश की गई है। यह औसतन 155 दिनों में परिपक्व होती है और 6.4 डेसीसीमेंस / मीटर के लवणता स्तर और 9.2 पी.एच. को सहन कर सकती है। इसकी औसत लंबाई 97 से.मी. है और सामान्य परिस्थितियों में इसकी संभावित उपज 65 क्विंटल प्रति हेक्टेयर और लवणीय / क्षारीय परिस्थितियों में 40 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक है।

केआरएल–283: गेहूँ की यह लवणता सहनशील किस्म केंद्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान,करनाल के द्वारा वर्ष 2018 में उत्तर प्रदेश की लवणता प्रभावित मृदा में समय से बुआई, सिंचित परिस्थितियों में कृषि के लिए विकसित की गई है। केआरएल–283 ने उत्तर प्रदेश की लवणता प्रभावित मृदा में समय पर बुआई, सिंचित परिस्थितियों में किए गए उपज

मूल्यांकन परीक्षणों में औसत अनाज उपज 20.87 क्विंटल/हेक्टेयर और उपज क्षमता 40.96 क्विंटल/हेक्टेयर दर्ज की। इसके अतिरिक्त केआरएल 283 ने जल जमाव की स्थिति में भी अधिक अनाज उपज दी। यह पत्ती झुलसा, करनाल बंट और हिल बंट रोगों के प्रति मध्यम प्रतिरोधी है।

उपरोक्त छह किस्मों के अतिरिक्त लवणता और क्षारीय सहनशीलता वाले तीन आनुवंशिक स्टॉक केआरएल–35, केआरएल–99 और केआरएल–3–4 भी भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रिय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, नई दिल्ली में पंजीकृत किया गया है। ये संरक्षित आनुवंशिक स्टॉक लवणता की स्थिति के लिए गेहूँ की किस्मों के विकास के लिए प्रजनन में उपयोग हेतु उपलब्ध हैं। वैश्विक जलवायु परिवर्तन के साथ सूखे की घटनाओं और फसलों की जल–आवश्यकता में वृद्धि हो सकती है जिससे अधिक सिंचाई चक्रों की आवश्यकता होगी तथा जिसके फलस्वरूप मृदा की लवणता में वृद्धि संभावित है। यह सम्भावित परिस्थिति विभिन्न कृषि–पारिस्थितिक क्षेत्रों के लिए लवणता सहिष्णु किस्मों के विकास के प्रजनन कार्यक्रमों को न केवल जारी रखने बल्कि इन्हें और अधिक मजबूती प्रदान करने की ओर इंगित करती है। यह तथ्य तब और महत्वपूर्ण हो जाता है जब खाद्य और पोषण सुरक्षा के खतरे से झुझते एवं जनसांख्यिकीय रूप से बढ़ते विश्व में गेहूँ मानव आहार का अभिन्न अंग बन रहा है।

समाप्त

7

जावेद[1,3], सुमित किरन सत्पथी[2,3], सानिया नाज़[1], रवि किरन के. टी.[3], अर्जुन सिंह[3]*, मनीष कुमार[4], अनन्या गौतम[3], भास्कर नरजारी[4] एवं कैलाश प्रजापत[4]
[1]आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)
[2]भाकृअनुप–आई.ए.आर.आई., लखनऊ हब, लखनऊ (उ.प्र.)
[3]भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय अनुसंधान केंद्र, लखनऊ (उ.प्र.)
[4]भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)
*Email: arjun.iari@gmail.com

जलवायु–स्मार्ट कृषिः बदलते मौसम में खेती का प्रौद्योगिकी समाधान

जलवायु परिवर्तन वर्तमान समय की सबसे गंभीर वैश्विक चुनौती बन चुका है, जिसका कृषि, खाद्य सुरक्षा और किसानों की आजीविका पर गहरा प्रभाव पड़ रहा है। बढ़ता तापमान, अनियमित वर्षा, सूखा, बाढ़, चक्रवात तथा मृदा–जल संतुलन में बदलाव के कारण फसल उत्पादन, उत्पादकता और कृषि स्थिरता लगातार प्रभावित हो रही है। विशेष रूप से गेहूँ, धान, बागवानी एवं सब्जी फसलें जलवायु परिवर्तन के प्रति अधिक संवेदनशील पाई गई हैं। इसके साथ ही कीट–रोगों की बढ़ती घटनाएँ और प्राकृतिक संसाधनों का क्षरण कृषि जोखिम को और बढ़ा रहे हैं। इन चुनौतियों से निपटने हेतु जलवायु–स्मार्ट कृषि, सूखा–सहिष्णु किस्मों का विकास, फसल बीमा, शून्य जुताई, लेजर भूमि समतलीकरण तथा संसाधन–संरक्षण तकनीकों को अपनाना अत्यंत आवश्यक है। नीति–स्तरीय सुधार, अनुसंधान–विकास में निवेश और किसानों की क्षमता निर्माण के माध्यम से जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों को कम कर सतत एवं सुरक्षित कृषि प्रणाली विकसित की जा सकती है।

संयुक्त राष्ट्र की जलवायु रिपोर्ट में स्पष्ट किया गया है कि जलवायु परिवर्तन पर्यावरण के हर पहलू के साथ–साथ वैश्विक आबादी के स्वास्थ्य और कल्याण को भी गंभीर रूप से प्रभावित कर रहा है। बढ़ते वैश्विक तापमान के कारण हिमखंडों के पिघलने की प्रक्रिया तेज हो गई है, जिससे समुद्र–स्तर में वृद्धि हो रही है और बाढ़ व कटाव जैसी आपदाएँ लगातार बढ़ रही हैं। विश्व मौसम विज्ञान संगठन द्वारा तैयार रिपोर्ट में जलवायु परिवर्तन के प्रमुख भौतिक संकेतकों – भूमि और समुद्र के तापमान में वृद्धि, समुद्र–स्तर का बढ़ना तथा बर्फ का तेजी से पिघलना को रेखांकित किया गया है। इसके साथ ही सामाजिक–आर्थिक विकास, मानव स्वास्थ्य, प्रवास एवं विस्थापन, खाद्य सुरक्षा तथा स्थलीय और समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र पर पड़ने वाले प्रभावों का भी उल्लेख किया गया है। जीवाश्म ईंधनों के दहन से उत्सर्जित ग्रीनहाउस गैसें पृथ्वी के चारों ओर एक आवरण का निर्माण करती हैं, जो सूर्य की ऊष्मा को बाहर जाने से रोकती हैं। परिणामस्वरूप पृथ्वी का औसत तापमान बढ़ता जा रहा है और जलवायु परिवर्तन की समस्या और अधिक गंभीर होती जा रही है।

जलवायु परिवर्तन से कृषि पर प्रभाव

जलवायु परिवर्तन का प्रभाव कृषि पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में पड़ता है। बदलती जलवायु के कारण भू–जल पुनर्भरण, जल–चक्र, मिट्टी की नमी, पशुधन तथा जलीय जीवों पर प्रतिकूल असर पड़ रहा है। इसके परिणामस्वरूप कीटों और रोगों की घटनाओं में वृद्धि होती है, जिसससे फसल उत्पादन को भारी नुकसान पहुँचता है।

मुख्य प्रभाव इस प्रकार हैं –

- मिट्टी–जल संतुलन में असंतुलन के कारण मिट्टी शुष्क होती जा रही है, जिससे सिंचाई की आवश्यकता बढ़ रही है।
- अनियमित वर्षा के कारण कहीं सूखा तो कहीं बाढ़ की स्थिति बन रही है, जिससे फसलों को व्यापक क्षति होती है।
- वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा 450 पीपीएम तक पहुँच चुकी है। इससे कुछ सी–3 फसलों (जैसे गेहूँ व धान) में प्रकाश संश्लेषण तो बढ़ता है, परंतु बढ़ा हुआ तापमान उनकी उपज को कम कर देता है।

- अधिक तापमान फसलों की वृद्धि अवधि को घटाता है, श्वसन दर बढ़ाता है तथा वर्षा की अनिश्चितता को बढ़ाता है।
- चक्रवात, सूखा, बाढ़, हीट–वेव जैसी चरम घटनाओं की बढ़ती आवृत्ति कृषि जैव–विविधता के लिए गंभीर खतरा बन रही है।
- बागवानी फसलें जलवायु परिवर्तन के प्रति अधिक संवेदनशील पाई गई हैं।
- जलवायु परिवर्तन अप्रत्यक्ष रूप से खरपतवार, कीट–पतंगों और रोगजनकों की प्रतिस्पर्धा को भी बढ़ाता है।
- अधिक तापमान फसलों की वृद्धि अवधि को घटाता है, श्वसन दर बढ़ाता है तथा वर्षा की अनिश्चितता को बढ़ाता है।
- चक्रवात, सूखा, बाढ़, हीट–वेव जैसी चरम घटनाओं की बढ़ती आवृत्ति कृषि जैव–विविधता के लिए गंभीर खतरा बन रही है।
- बागवानी फसलें जलवायु परिवर्तन के प्रति अधिक संवेदनशील पाई गई हैं।
- जलवायु परिवर्तन अप्रत्यक्ष रूप से खरपतवार, कीट–पतंगों और रोगजनकों की प्रतिस्पर्धा को भी बढ़ाता है।

चित्र 1: सूखा प्रभावित परिस्थितियों में उगाई गई फसल का क्षेत्रीय दृश्य, जिसमें मृदा में दरारें, नमी की कमी तथा जल अभाव के कारण पौधों की वृद्धि एवं पर्ण विकास पर प्रतिकूल प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो रहा है।

यूरोपीय आयोग के संयुक्त अनुसंधान केंद्र की रिपोर्ट का सार

यूरोपीय आयोग के संयुक्त अनुसंधान केंद्र की रिपोर्ट के अनुसार, विश्व की तेजी से बढ़ती जनसंख्या के अनुपात में खाद्यान्न उत्पादन में अपेक्षित वृद्धि नहीं हो पा रही है। इसके साथ–साथ कृषि भूमि की उर्वरता में भी लगातार गिरावट दर्ज की जा रही है। वर्ल्ड एटलस ऑफ डेज़र्टिफिकेशन रिपोर्ट बताती है कि अगले दो–तीन दशकों में वैश्विक खाद्य संकट का खतरा और गहरा सकता है, जिसमें भारत, चीन तथा उप–सहारा अफ्रीका के देशों की स्थिति सबसे अधिक चिंताजनक हो सकती है। रिपोर्ट में यह भी स्पष्ट किया गया है कि जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण, मृदा अपरदन और सूखे के कारण पृथ्वी की लगभग तीन–चौथाई भूमि की गुणवत्ता प्रभावित हो चुकी है। यदि भूमि क्षरण की यह प्रवृत्ति जारी रही, तो वर्ष 2050 तक वैश्विक अनाज उत्पादन में भारी कमी आ सकती है। अनुमान है कि 2050 तक विश्व की जनसंख्या लगभग 9 अरब हो जाएगी, जिसके लिए वर्तमान उत्पादन की तुलना में लगभग दोगुना खाद्यान्न उत्पादन आवश्यक होगा। ऐसे में भारत जैसे कृषि–प्रधान देश के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि वह इस चुनौती से निपटने के लिए अभी से ठोस और दूरदर्शी कदम उठाए।

जलवायु स्मार्ट कृषि

जलवायु–स्मार्ट कृषि एक एकीकृत दृष्टिकोण है, जिसमें फसल, पशुधन, वन और मत्स्य पालन को साथ लेकर चला जाता है। इसका उद्देश्य खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना, किसानों की आय बढ़ाना और जलवायु परिवर्तन के प्रति कृषि को अनुकूल बनाना है।

इसके तीन प्रमुख लक्ष्य हैं

1. उत्पादकता में वृद्धि
2. लचीलापन और अनुकूलन क्षमता में सुधार
3. ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में कमी

इस पद्धति के अंतर्गत फसल विविधीकरण, सूखा एवं लवणता—सहिष्णु किस्मों का उपयोग, जल—संरक्षण तकनीकें, शून्य जुताई, जैविक एवं प्राकृतिक संसाधनों का कुशल प्रबंधन तथा सूचना—प्रौद्योगिकी आधारित कृषि पर विशेष बल दिया जाता है। जलवायु—स्मार्ट कृषि न केवल प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में सहायक है, बल्कि यह किसानों की आय को स्थिर और सुरक्षित बनाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। बदलते जलवायु परिदृश्य में टिकाऊ खेती और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए जलवायु—स्मार्ट कृषि को अपनाना आज की आवश्यकता बन चुका है। शून्य जुताई, लेजर भूमि समतलीकरण और कृषि वानिकी (एग्रोफॉरेस्ट्री) जैसी तकनीकें पारंपरिक खेती की तुलना में अधिक प्रभावी और टिकाऊ सिद्ध हुई हैं। इन तकनीकों से न केवल लागत घटती है, बल्कि जल और ऊर्जा की बचत के साथ—साथ किसानों की आय में भी वृद्धि होती है।

1. कृषि वानिकी (एग्रोफॉरेस्ट्री)

कृषि वानिकी (एग्रोफॉरेस्ट्री) एक ऐसी बहुउपयोगी खेती प्रणाली है, जो पर्यावरण संरक्षण के साथ—साथ किसानों की आजीविका को भी मजबूत बनाती है। इस प्रणाली के माध्यम से मिट्टी की सेहत में सुधार होता है, फसलों की विविधता और उत्पादकता बढ़ती है तथा सूखा, बाढ़ और तापमान के उतार—चढ़ाव जैसी चरम मौसम घटनाओं के प्रति खेती की सहनशीलता बढ़ती है। साथ ही, कृषि वानिकी ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करने में सहायक होती है और जैव विविधता के लिए अनुकूल आवास प्रदान करती है। किसानों के लिए यह केवल पर्यावरण—हितैषी विकल्प ही नहीं, बल्कि एक लाभकारी व्यवसायिक मॉडल भी है। फसल विविधीकरण से आय के अनेक स्रोत उपलब्ध होते हैं, पर्यावरणीय सेवाओं के बदले भुगतान के अवसर मिलते हैं और खाद्य सुरक्षा सुदृढ़ होती है। अनुमान है कि कृषि वानिकी अपनाने से केवल अधिक उपज के कारण किसानों की वार्षिक आय में लगभग रूपये 9000—रूपये 25000 प्रति हेक्टेयर की वृद्धि हो सकती है। इसके अतिरिक्त, लकड़ी, फल और अन्य वन उत्पादों से होने वाली विविध आय समय के साथ रूपये18,000 से रूपये1,75,000 प्रति हेक्टेयर तक बढ़ सकती है, जिससे किसानों की आर्थिक स्थिरता और जोखिम वहन क्षमता में उल्लेखनीय सुधार होता है।

2. लेज़र भूमि समतलीकरण

लेज़र भूमि समतलीकरण एक आधुनिक, लेज़र—निर्देशित तकनीक है, जिसमें खेत के ऊँचे हिस्सों से मिट्टी हटाकर निचले हिस्सों में समान रूप से बिछाई जाती है, जिससे पूरा खेत समतल हो जाता है। समतल खेत में फसलों का अंकुरण बेहतर होता है और पौधों की वृद्धि एकसमान रहती है, जिससे फसल पकने में भी समानता आती है। भारत के इंडो—गंगेटिक मैदानी क्षेत्रों में इस तकनीक के उपयोग से धान और गेहूँ की उपज में लगभग 8 प्रतिशत तक वृद्धि दर्ज की गई है। लेज़र भूमि समतलीकरण ऊर्जा की बचत, खेती के समय में कमी और आदानों के अधिक कुशल उपयोग के माध्यम से ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को भी कम करता है। समतल खेत में सिंचाई का पानी समान रूप से फैलता है, जिससे कम समय में और कम मात्रा में पानी से सिंचाई संभव हो पाती है। इसके अलावा, उर्वरकों का उपयोग भी अधिक प्रभावी होता है क्योंकि पोषक तत्वों का ऊँचे स्थानों से निचले स्थानों की ओर बहाव कम हो जाता है। वैकल्पिक गीला—सूखा पद्धति को अपनाने से पहले लेज़र भूमि समतलीकरण खेत के ऊँचे हिस्सों के अत्यधिक सूखने को रोकता है, जिससे गीला—सूखा प्रक्रिया के दौरान होने वाली उपज हानि से बचा जा सकता है।

ये तकनीकें मिलकर जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न अनिश्चितताओं के प्रति कृषि प्रणाली की सहनशीलता को बढ़ाती हैं। इसके बावजूद जागरूकता और प्रारंभिक लागत जैसी चुनौतियों के कारण इनका व्यापक उपयोग अभी सीमित है।

3. शून्य जुताई

शून्य जुताई कृषि की एक प्रभावी तकनीक है, जो मृदा स्वास्थ्य को सुधारने, मृदा अपरदन को कम करने और ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन घटाकर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में सहायक है। इस पद्धति में जुताई न करने से ईंधन की बचत होती है और खेती की लागत कम होती है।

शून्य जुताई के पर्यावरणीय लाभों में मृदा संरचना का संरक्षण प्रमुख है, जिससे मृदा अपरदन कम होता है और कार्बनिक पदार्थ सुरक्षित रहता है। यह तकनीक मृदा में कार्बन के संचयन को बढ़ावा देती है, जिससे ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में कमी आती है। बेहतर मृदा संरचना के कारण जल धारण क्षमता बढ़ती है, जिससे फसलें सूखे जैसी परिस्थितियों का बेहतर सामना कर पाती हैं। आर्थिक दृष्टि से, शून्य जुताई किसानों के लिए लाभकारी है क्योंकि जुताई की आवश्यकता न होने से ईंधन और श्रम लागत में भारी कमी आती है। अनुमान के अनुसार, इससे ईंधन खर्च में 50—80 प्रतिशत तथा श्रम लागत में 30—50 प्रतिशत तक की बचत संभव है। इसके अलावा, आवरण फसलों (कवर क्रॉप्स) के साथ अपनाने पर शून्य जुताई खरपतवार नियंत्रण में भी सहायक होती है, जिससे खरपतवारनाशकों पर होने वाला खर्च कम हो जाता है।

समाधान

- वन्यजीव विरासत शहरों और राष्ट्रीय उद्यानों के आसपास स्थित नगरों को ग्रीन—स्मार्ट शहरों के रूप में विकसित किया जाना चाहिए।
- शुष्क भूमि कृषि अनुसंधान पर विशेष ध्यान देकर सूखा—सहिष्णु किस्मों को बढ़ावा देना आवश्यक है।
- गेहूँ की बुवाई के समय में बदलाव से जलवायु—जनित क्षति को 60—75 प्रतिशत तक कम किया जा सकता है।
- किसानों के लिए फसल बीमा कवरेज और ऋण सहायता का विस्तार आवश्यक है।
- राजस्थान की तर्ज पर वन—धन योजना को गैर—संरक्षित वनों तक विस्तारित किया जा सकता है।
- सार्वजनिक—निजी भागीदारी के माध्यम से इको—टूरिज्म को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

निष्कर्ष

जलवायु परिवर्तन आज कृषि क्षेत्र के सामने सबसे बड़ी और जटिल चुनौती बनकर उभरा है, जिसका सीधा असर फसल उत्पादन, किसानों की आजीविका, खाद्य सुरक्षा तथा प्राकृतिक संसाधनों की स्थिरता पर पड़ रहा है। बदलते मौसम, बढ़ता तापमान, अनियमित वर्षा, बार—बार आने वाली सूखा—बाढ़ की घटनाएँ और भूमि क्षरण ने पारंपरिक कृषि प्रणालियों को अस्थिर बना दिया है। यह समस्या केवल पर्यावरणीय संकट नहीं, बल्कि एक गंभीर सामाजिक और आर्थिक चुनौती भी है। ऐसे परिदृश्य में जलवायु—स्मार्ट कृषि, संरक्षित खेती, कृषि—वानिकी, शून्य जुताई, लेज़र भूमि समतलीकरण तथा फसल बीमा जैसी टिकाऊ और वैज्ञानिक तकनीकों को अपनाना अत्यंत आवश्यक है। इसके साथ—साथ अनुसंधान एवं विकास में निवेश, प्रभावी नीतिगत सुधार, किसानों में जागरूकता और सार्वजनिक—निजी भागीदारी को सशक्त बनाकर ही कृषि को जलवायु परिवर्तन के प्रति अधिक सक्षम और लचीला बनाया जा सकता है। यदि समय रहते ठोस, समन्वित और व्यावहारिक कदम उठाए जाएँ, तो भारत न केवल अपनी कृषि उत्पादकता और किसानों की आय को सुरक्षित रख सकेगा, बल्कि भविष्य की राष्ट्रीय एवं वैश्विक खाद्य सुरक्षा में भी महत्वपूर्ण योगदान दे सकेगा।

समाप्त

8

सुनिता देवी[1], श्रुति कौशिक[1], मनीष कुमार[1], पूजा[2] एवं अश्वनी कुमार[1]
[1]भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
[2]भा.कृ.अनु.प.–गन्ना प्रजनन संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्र, करनाल–132001 (हरियाणा)
Email: khatkersunita@gmail.com

जलवायु परिवर्तन के तहत खाद्य सुरक्षा के लिए अर्ध–शुष्क उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में बाजरा–एक महत्वपूर्ण फसल

बाजरा दुनिया भर में गेहूँ, चावल, मक्का और जौ के बाद छठी सबसे महत्वपूर्ण अनाज फसल के रूप में माना जाता है। कम निवेश, कम अवधि में पकने और भोजन, दाना एवं चारे के रूप में बहुउपयोगी होने के कारण इसका महत्व लगातार बढ़ रहा है। छोटे दाने वाला यह पौष्टिक अनाज जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न होने वाले सूखा, गर्मी और लवणता जैसे अनेक अजैविक तनावों के प्रति स्वाभाविक रूप से सहनशील है। मोती बाजरा, जो भारत में प्रचलित प्रमुख प्रजाति है, मानव जाति द्वारा उगाई जाने वाली सबसे पुरानी फसलों में से एक है और ग्रामीण भारत के भोजन का प्रमुख हिस्सा रहा है। बाजरा ऊर्जा, प्रोटीन, खनिज तत्वों तथा स्वास्थ्यवर्धक फेनोलिक यौगिकों का समृद्ध स्रोत है। इसके दानों में उपस्थित फाइटोकेमिकल्स कोलेस्ट्रॉल घटाने, मधुमेह नियंत्रण, पाचन सुधार तथा हृदय स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में सहायक माने जाते हैं। कम उपजाऊ मिट्टी एवं कम वर्षा वाले अर्ध–शुष्क और शुष्क क्षेत्रों में भी इसकी अच्छी पैदावार इसे खाद्य और पोषण सुरक्षा के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण बनाती है।

बाजरा अर्ध–शुष्क और शुष्क क्षेत्रों में उगाया जाता है। बाजरा का भारत में सर्वाधिक उत्पादन राजस्थान में होता है जोकि 42.81 लाख टन (कृषि और प्रसंस्कृत खाद्य उत्पाद निर्यात विकास प्राधिकरण 2023–2024) है। यह लाखों छोटे एवं सीमांत किसानों की आजीविका और भोजन का आधार है। बदलते जलवायु परिदृश्य में बाजरा न केवल भविष्य की फसल के रूप में उभर रहा है, बल्कि ग्लूटेन–मुक्त और पोषक तत्वों से भरपूर होने के कारण स्वास्थ्य के प्रति सजग लोगों के लिए भी उपयुक्त विकल्प है। इसके महत्व को देखते हुए राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बाजरा अनुसंधान, बाजरा–आधारित उत्पादों के प्रचार तथा खेती में वृद्धि पर जोर दिया जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य एवं कृषि संगठन द्वारा वर्ष 2023 को "अंतर्राष्ट्रीय बाजरा वर्ष" घोषित किया जाना भी इसके वैश्विक महत्व का प्रमाण है। हाल ही में विशेष रूप से जलवायु परिवर्तन और खाद्य असुरक्षा के प्रतिकूल प्रभाव का सामना करने वाले क्षेत्रों में सतत और समावेशी कृषि विकास में योगदान देने के लिए बाजरे की खेती में रुचि बढ़ गई है।

बाजरे की फसल का महत्व

बाजरे की खेती के फायदे–नुकसान, सुधार की संभावनाएँ तथा इससे जुड़ी विभिन्न रणनीतियाँ वर्तमान परिस्थितियों में गंभीरता से विचार करने योग्य हैं। बाजरा उत्पादन बढ़ाने के लिए अनुसंधान एवं विस्तार सेवाओं में सार्वजनिक और निजी निवेश को प्रोत्साहित करना, किसान संगठनों और बाजार संबंधों को मजबूत बनाना, बाजरा–आधारित मूल्य श्रृंखलाओं और प्रसंस्कृत उत्पादों का विकास करना तथा बाजरे को राष्ट्रीय खाद्य नीति में उचित स्थान देना अत्यंत आवश्यक है। अपने उच्च पोषण मूल्य के कारण बाजरे को सही अर्थों में "पोषक अनाज" कहा जाता है। यह ऊर्जा, कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, आहार–रेशा, लोहा और जस्ता का उत्कृष्ट स्रोत है। ऊर्जा की दृष्टि से बाजरा ज्वार, गेहूँ, चावल और मक्का के बराबर है तथा लगभग 361 किलो कैलोरी / 100 ग्राम ऊर्जा प्रदान करता है। इसमें 67.5 ग्राम / 100 ग्राम कार्बोहाइड्रेट की मात्रा होती हैं; स्टार्च का उच्च अंश (56–65 प्रतिशत) जिनमें 20 से 22 प्रतिशत एमाइलेज और 2.6 से 2.8 प्रतिशत शुगर – मुख्य रूप से सुक्रोज शामिल है। बाजरे में प्रोटीन की मात्रा लगभग 11.6 / 100 ग्राम होती है, जो गेहूँ के बराबर और चावल से अधिक है। इसमें मेथिओनिन प्रचुर मात्रा में पाया जाता है, जबकि सल्फर–युक्त अमीनो अम्ल अपेक्षाकृत कम होते हैं। कम प्रोलामाइन अंश के कारण बाजरा पूर्णतः ग्लूटेन–मुक्त अनाज है और पकाने के बाद भी अपने क्षारीय गुण बनाए रखता है, इसलिए

ग्लूटेन–एलर्जी से पीड़ित लोगों के लिए यह आदर्श भोजन है। बाजरे में वसा की पाचन क्षमता अधिक होती है और इसमें एन–3 फैटी एसिड तथा असंतृप्त वसीय अम्लों की मात्रा भी पर्याप्त पाई जाती है। बाजरा पोटेशियम, फॉस्फोरस, मैग्नीशियम, लौह, जस्ता, तांबा और मैंगनीज जैसे खनिजों तथा थायमिन, राइबोफ्लेविन और नियासिन जैसे बी–विटामिनों का भी समृद्ध स्रोत है। भा.कृ.अनु.प.–अखिल भारतीय समन्वित बाजरा अनुसंधान परियोजना के अंतर्गत अब तक 167 संकर किस्में और 61 उन्नत किस्में विकसित की गई हैं, जिन्हें देश के विभिन्न कृषि–पारिस्थितिक क्षेत्रों में खेती के लिए अनुशंसित किया गया है।

तालिका 1: बाजरे के प्रमुख पोषक तत्वों का विवरण दर्शाया गया है।

बाजरे की पोषण सामग्री		पोषक तत्व	प्रति (100 ग्राम)
पोषक तत्व	**प्रति (100 ग्राम)**	कैल्शियम (मिलीग्राम)	43
प्रोटीन (ग्राम)	12	फास्फोरस (मिलीग्राम)	238
कार्बोहाइड्रेट(ग्राम)	68	लौह (मिलीग्राम)	11.5
वसा (ग्राम)	4	ऊर्जा (किलो कैलोरी)	365
खनिज पदार्थ (ग्राम)	1.9	थायमिन (मिलीग्राम)	0.37
फाइबर (ग्राम)	2.5	नियासिन (मिलीग्राम)	2.5

बाजरा टिकाऊ कृषि विकास का सशक्त आधार बन सकता है, जो वैश्विक खाद्य एवं पोषण सुरक्षा में महत्वपूर्ण योगदान देते हुए सतत विकास लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक है। अंतर्राष्ट्रीय अर्ध–शुष्क उष्णकटिबंधीय फसल अनुसंधान संस्थान के अनुसार विश्वभर में लगभग 31 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में बाजरे की खेती होती है और लगभग 90 मिलियन लोग भोजन एवं आय के लिए इस पर निर्भर हैं। यह मनुष्यों और पशुधन दोनों के लिए ऊर्जा का सस्ता और पौष्टिक स्रोत है। साथ ही, यह विभिन्न अजैविक चुनौतियों विशेष रूप से लवणता तनाव के प्रति अपनी सहनशीलता इसे भविष्य की जलवायु–स्मार्ट फसल बनाती है तथा अनुसंधान के लिए एक आवश्यक फसल।

2050 तक बढ़ती वैश्विक आबादी की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए फसल उत्पादन को दोगुना करने की आवश्यकता अनुमानित की गई है। इस बीच, जलवायु परिवर्तन और अनुपयुक्त कृषि प्रथाओं के कारण उत्पन्न मिट्टी की लवणता फसल उत्पादन के लिए गंभीर चुनौती बनकर उभरी है। लवणता सहनशीलता एक बहु–आनुवंशिक गुण है, जो सूखा, उच्च तापमान, पोषक तत्वों की कमी जैसे अन्य तनावों के साथ मिलकर और जटिल हो जाता है। लवणीय मिट्टियाँ सामान्यतः 25 डिग्री सेल्सियस, पर संतृप्त मिट्टी के अर्क की विद्युत चालकता 4 डेसीसीमेंस प्रति मीटर से अधिक होने पर परिभाषित की जाती हैं। इनमें सोडियम, क्लोराइड, सल्फेट तथा कैल्शियम एवं मैग्नीशियम के लवण प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं, जो पौधों की वृद्धि को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करते हैं। लवणता तनाव के कारण बीज अंकुरण, पौधों की वृद्धि, पत्तियों का क्षेत्रफल, क्लोरोफिल सामग्री, प्रकाश संश्लेषण दक्षता तथा जल अवशोषण में कमी आती है। सोडियम और क्लोराइड आयनों के अत्यधिक संचय से पोषक तत्वों का असंतुलन और ऑस्मोटिक तनाव उत्पन्न होता है। नमक के प्रभाव से प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन प्रजातियों का निर्माण होता है, जो कोशिकीय झिल्लियों, प्रोटीन तथा न्यूक्लिक अम्लों को क्षति पहुँचाती हैं। फिर भी, कई पौधों में ऑस्मोटिक समायोजन जैसे अनुकूली तंत्र विकसित हो जाते हैं, जिससे वे रिक्तिकाओं में सोडियम का संचय कर तनाव को सहन कर पाते हैं।

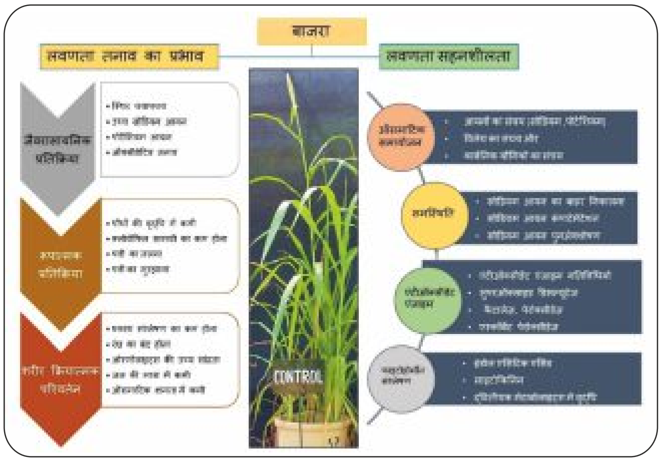

चित्र 1: में बाजरा फसल पर लवणता तनाव के प्रभाव और उसके अनुकूलन तंत्र को दर्शाया गया है।

बाजरा अपनी अनूठी विशेषता जैसे की उच्च प्रकाश संश्लेषक दक्षता, अधिक शुष्क पदार्थ उत्पादन क्षमता तथा कठोर पर्यावरणीय परिस्थितियों में जीवित रहने एवं उत्पादन की क्षमता के कारण अन्य अनाज फसलों की तुलना में श्रेष्ठ सिद्ध हुआ है।

यह उन क्षेत्रों में भी सफलतापूर्वक उगाया जाता है जहाँ ज्वार और मक्का जैसी फसलें आर्थिक उपज देने में असफल रहती हैं। इस प्रकार, लवणता प्रभावित क्षेत्रों में भी बाजरा एक आशाजनक विकल्प के रूप में उभर रहा है।

खाद्य सुरक्षा के लिए लक्षित अनुसंधान

इस समीक्षा से स्पष्ट होता है कि लवणता तनाव के कारण बाजरे का उत्पादन प्रतिकूल रूप से प्रभावित होता है, जिससे इसके शारीरिक, जैव–रासायनिक एवं आणविक तंत्र में परिवर्तन होते हैं। इसलिए बाजरे में लवणता सहनशीलता के पीछे कार्य करने वाले जीन, मेटाबोलाइट्स तथा मार्गों की पहचान करना आवश्यक है, ताकि पूरे जीनोम अनुक्रम की उपलब्धता का बेहतर उपयोग किया जा सके। वर्तमान में जैव–प्रौद्योगिकी उपकरणों की तीव्र प्रगति के साथ नमक–सहिष्णु बाजरा किस्मों के विकास के लिए बहु–विषयक दृष्टिकोण की आवश्यकता है। जीनोमिक चयन, फेनोटाइपिंग, क्रिस्पर कास का उपयोग करके जीनोम संपादन, स्पीड–ब्रीडिंग तथा सिंथेटिक जीव–विज्ञान जैसी आधुनिक तकनीकों ने वैश्विक स्तर पर वैज्ञानिकों और पादप प्रजनकों का ध्यान आकर्षित किया है। ये तकनीकें नमक तनाव की परिस्थितियों में बाजरे की उपज और पोषण गुणवत्ता में स्थायी सुधार के लिए प्रभावी साधन सिद्ध हो सकती हैं। पारंपरिक प्रजनन तथा आधुनिक जैव–प्रौद्योगिकी का समन्वित उपयोग लवणता प्रबंधन के लिए नई संभावनाएँ प्रस्तुत करता है।

भारत में बाजरा उत्पादन के प्रमुख राज्य राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात, उत्तर प्रदेश और हरियाणा हैं, जो कुल क्षेत्रफल के 90 प्रतिशत से अधिक हिस्से का प्रतिनिधित्व करते हैं। बाजरा मुख्य रूप से खरीफ मौसम (जून/जुलाई) में बोया जाता है, जबकि कुछ क्षेत्रों में ग्रीष्म तथा रबी मौसम में भी इसकी खेती होती है। रबी सीज़न (नवंबर–फरवरी) के दौरान महाराष्ट्र और गुजरात में छोटे पैमाने पर की जाती है। देश में लगभग 8.16 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में बाजरे की खेती होती है, जिसमें अकेले राजस्थान का योगदान सर्वाधिक (56 प्रतिशत) है। 4.62 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र राजस्थान में है। यद्यपि शुष्क क्षेत्रों में उत्पादकता (6.88 क्विंटल हेक्टेयर) अपेक्षाकृत कम है, फिर भी गुणवत्तापूर्ण बीज, उपयुक्त किस्मों का चयन और उन्नत कृषि प्रौद्योगिकियों के अपनाने से उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि की जा सकती है। हाइब्रिड बाजरे की बेहतर पैदावार के लिए बीज का नियमित प्रतिस्थापन भी आवश्यक है।

अखिल भारतीय समन्वित बाजरा अनुसंधान परियोजना के माध्यम से अब तक 167 हाइब्रिड और 61 किस्मों की पहचान कर विभिन्न कृषि–परिस्थितिकीय क्षेत्रों में खेती के लिए जारी किया गया है। सामान्यतः बाजरे की बुवाई 45 सेंटीमीटर कतार से कतार तथा 10–15 सेंटीमीटर पौधे से पौधे की दूरी पर की जाती है, जिसके लिए प्रति हेक्टेयर 3.5–4.0 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होती है। पोषक तत्व प्रबंधन के अंतर्गत 40–80 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर लाभकारी पाया गया है। फास्फोरस घुलनशील बैक्टीरिया, एज़ोस्पिरिलम तथा गोबर की खाद के साथ समन्वित उपयोग से शुष्क क्षेत्रों की रेतीली एवं बलुई–दोमट मिट्टियों में उपज में अच्छा सुधार होता है। बाजरा अल्पावधि एवं वर्षा–आधारित फसल है, इसलिए बुवाई के 30 दिनों के भीतर प्रभावी खरपतवार नियंत्रण अत्यंत आवश्यक है और 25–30 दिन बाद हाथ से निराई–गुड़ाई करना सबसे सरल और प्रभावी उपाय है। उपलब्ध बीज–श्रृंखला की अधिकांश किस्में डाउनी मिल्ड्यू के प्रति प्रतिरोधी और ब्लास्ट रोग के प्रति सहनशील हैं।

निष्कर्ष

अर्ध–शुष्क उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न चुनौतियों के बीच बाजरा एक सशक्त, लचीली और पोषक फसल के रूप में उभर रहा है। इसकी सूखा, ऊष्मा और कम उर्वरता वाली मिट्टियों में उगने की क्षमता इसे छोटे और सीमांत किसानों के लिए सुरक्षित विकल्प बनाती है। बाजरा न केवल उच्च पोषण मूल्य तथा स्वास्थ्यवर्धक गुणों से भरपूर है, बल्कि कम जल की आवश्यकता और अल्प अवधि में उत्पादन के कारण यह सतत कृषि और पर्यावरण संरक्षण, दोनों का समर्थन करता है। बदलती जलवायु परिस्थितियों में खाद्य एवं पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने, किसानों की आय बढ़ाने और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती देने में बाजरा की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। अतः आवश्यकता है कि अनुसंधान, प्रसंस्करण, मूल्य संवर्धन और नीति–निर्माण के माध्यम से बाजरे को आधुनिक कृषि प्रणाली में उचित स्थान दिया जाए, ताकि यह "भविष्य का अन्न" बनकर आने वाली पीढ़ियों के लिए स्वास्थ्य और समृद्धि का आधार बन सके।

समाप्त

9

शिव शंकर शर्मा[1,2]*, रंजीत कुशवाहा[1], ज्योति शर्मा[1,3],
शिखा त्रिपाठी[1,4], स्नेहा गुप्ता[5], अश्वनी पाण्डेय[1] एवं महेश राव[1*]
[1]भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय पादप जैव प्रौद्योगिकी संस्थान, पूसा कैंपस, नई दिल्ली–110012
[2]स्कूल ऑफ़ बायोटेक्नोलॉजी, इंस्टिट्यूट ऑफ़ साइंस, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश–221005
[3]डिपार्टमेंट ऑफ़ बायोटेक्नोलॉजी, स्कूल ऑफ़ केमिकल एंड लाइफ साइंस, जामिया हमदर्द, नई दिल्ली– 110062
[4]वनस्पति विज्ञान विभाग, इंस्टिट्यूट ऑफ़ साइंस, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश–221005
[5]स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर, राजस्थान–334006
*Email: mraoicar@gmail.com; shankar97688@gmail.com

सरसों की खेती के लिए मिट्टी का प्रकार और उसमें पोषक तत्वों की भूमिका

पृथ्वी पर मिट्टी एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है, जो पर्यावरण की सुरक्षा में अहम भूमिका निभाती है। हमारा जीवन मिट्टी से गहराई से जुड़ा हुआ है, क्योंकि यही हमें भोजन, वस्त्र और जीवन के लिए आवश्यक संसाधन प्रदान करती है। साथ ही, मिट्टी जल एवं वायु को शुद्ध करने में भी सहायता करती है। स्वस्थ फसलों के उत्पादन के लिए मिट्टी का स्वास्थ्य एक प्रमुख कारक होता है। जब हम मिट्टी के महत्व को समझने लगते हैं, तो हम इसको संरक्षित करने में भी अधिक सक्षम हो जाते हैं। वर्तमान समय में मिट्टी स्वास्थ्य एक वैश्विक चिंता का विषय बन गया है, और खाद्य एवं पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए मिट्टी प्रबंधन अत्यंत आवश्यक हो गया है।

सरसों भारतीय रसोई मे एक महत्वपूर्ण खाद्य पदार्थ उपयोग का हिस्सा है, और यह भारत के विभिन्न राज्यों मे उगाई जाती है। भारत में सरसों की खेती के बाद सोयाबीन और मक्का महत्वपूर्ण फसल है। सरसों की खेती में मिट्टी का महत्वपूर्ण योगदान होता है, क्योंकि यह पौधों के विकास और उत्पादन को प्रभावित करती है। सरसों के पौधे उर्वरक, जल और पोषक तत्वों को मिट्टी से प्राप्त करते हैं, इसलिए मिट्टी की गुणवत्ता सीधे तौर पर फसल की उर्वरक क्षमता और उत्पादन पर प्रभाव डालती है। उचित मिट्टी में अच्छे जल निकासी और हवा का संचार होना चाहिए, जिससे जड़ें स्वस्थ रहें और पौधे को आवश्यक पोषक तत्व आसानी से मिल सकें।

सरसों की खेती के लिए उपयुक्त मिट्टी के प्रकार

सरसों की खेती के लिए कुछ मिट्टी के प्रकार एवं उनकी विशेषताए निम्न है:

दोमट मिट्टी

यह सबसे उपयुक्त मानी जाती है क्योंकि इसमें जलधारण क्षमता अच्छी होती है और हवा का प्रवाह भी बना रहता है।

बलुई दोमट मिट्टी

इस मिट्टी में जल निकासी अच्छी होती है, जिससे सरसों की जड़ें सड़ती नहीं हैं। यह जल्दी गर्म भी होती है, जो अंकुरण के लिए फायदेमंद है।

मध्यम काली मिट्टी

जहाँ जल निकासी की सुविधा हो, वहाँ सरसों की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है।

कोकोपीट आधारित मिट्टी

कोकोपीट मिट्टी का इस्तेमाल शोधकर्ता अपने शोध के लिए करते है। असल में यह "मिट्टी" नहीं होती, बल्कि यह नारियल की बाहरी भूसी से बना एक जैविक माध्यम होता है। हालांकि कोकोपीट में खुद कोई पोषक तत्व नहीं होते, इसलिए इसे उपयोग करते समय खाद या उर्वरकों का प्रयोग जरूरी होता है। शोधकर्ता अक्सर गमलों, नर्सरी, और हाइड्रोपोनिक खेती में मिट्टी के विकल्प के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

सरसों की खेती के लिए मिट्टी की विशेषताएँ

सरसों की खेती के लिए बलुई दोमट, रेतीली और हल्की मिट्टी आदर्श मानी जाती है। मिट्टी का पीएच स्तर भी महत्वपूर्ण है। सरसों की खेती के लिए मिट्टी का पीएच स्तर हल्का अम्लीय से लेकर हल्का क्षारीय (6–8) तक सबसे उपयुक्त होता है। ज्यादा क्षारीय या अम्लीय मिट्टी में सरसों की पैदावार प्रभावित हो सकती है। इसके अलावा, मिट्टी में आवश्यक पोषक तत्व जैसे नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश का संतुलन होना आवश्यक है। उपयुक्त मिट्टी का चयन और उसकी सही देखभाल से सरसों की फसल में उच्च उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

जल निकासी की आवश्यकता

मिट्टी अच्छी जल निकासी वाली होनी चाहिए ताकि जलभराव से बचा जा सके। व्यवस्थित मिट्टी प्रबंधन तकनीकों में शामिल हैं– ढलान पर समकोण पर गड्ढे खोदना, जिससे स्थानीयकृत जल धारण क्षेत्र और नमी संरक्षण का निर्माण होता है। शुष्क मौसम में अधिक नमी बनाए रखने के लिए गड्ढों के साथ–साथ एक छोटी खाई भी बनाई जा सकती है जिसे 'बोना नाली' के नाम से जाना जाता है। आमतौर पर, क्रमबद्ध खाइयों में, पंक्तियों के बीच उपयुक्त ऊर्ध्वाधर अंतराल प्रतिबंधित होते हैं ताकि ऊपर से अनुमानित अपवाह अतिप्रवाह न हो। पहले, 0.3 मीटर × 0.3 मीटर आकार की समोच्च खाइयाँ और उनके बीच अंतराल के साथ 15 मीटर तक लंबी खाई खोदी जाती थी, जो मिट्टी के बड़े पैमाने पर कटाव और अपवाह के वेग को कम करती थी। इसके अलावा, सीढ़ीदार बीहड़ भूमि में, निरंतर ढलान की तुलना में ट्रेंचिंग से मिट्टी के नुकसान में काफी कमी आती है, जो एक लागत प्रभावी उपाय है, इसके अलावा ढलान के साथ एक त्रिकोण लेआउट में कंपित समोच्च ट्रेंचिंग अपवाह को सीमित करने में सहायक थी।

जैविक और अकार्बनिक पदार्थों का संतुलन

अगला दृष्टिकोण कार्बनिक सुधार और इसका अपघटन है जो कि कार्बन डाईऑक्साइड और कुछ कार्बनिक अम्लों के विकास को जन्म देता है। यह मिट्टी के पीएच को कम करता है, और कैल्सियम कार्बोनेट की घुलनशीलता के माध्यम से धनायन जारी रखता है।

मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने के उपाय

सरसों की खेती में मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने के लिए कुछ महत्वपूर्ण उपाय हैं:

- जैविक खाद और हरी खाद का उचित प्रयोग करना।
- संतुलित उर्वरकों का उचित उपयोग।
- फसल चक्र अपनाना।
- जल प्रबंधन और उचित सिंचाई करना।

इन उपायों को अपनाकर सरसों की खेती में मिट्टी की उर्वरता को बनाए रखा जा सकता है, जिससे उच्च गुणवत्ता और उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

मिट्टी परीक्षण का महत्व और उसका विश्लेषण

विभिन्न प्रकार की मिट्टियों, फसल चक्र, सिंचाई विधियों और खादों के प्रयोग के आधार पर मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्वों की

मात्रा भी भिन्न होती है। इस उपलब्धता का आंकलन मिट्टी परीक्षण के माध्यम से किया जाता है। मिट्टी परीक्षण एक संतुलित, आर्थिक रूप से लाभदायक और फसल की आवश्यकताओं के अनुरूप उर्वरक एवं खाद की मात्रा तय करने के लिए अत्यंत उपयोगी प्रक्रिया है।

मिट्टी परीक्षण मुख्यता निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए किया जाता है

- मिट्टी में उत्पन्न दोष जैसे अम्लीयता, क्षारीयता, लवणीयता आदि का पता लगाना और उनके उचित उपचार की सलाह देना ।
- मिट्टी की उर्वरता शक्ति का पता लगाना और मिट्टी में पोषक तत्वों की उपलब्धता के अनुसार विभिन्न फसलों के लिए उर्वरकों की आवश्यकता और उनकी संतुलित मात्रा में प्रयोग की आपूर्ति करना ।
- उर्वरकों के प्रयोग से फसलों की अतिरिक्त उपज का आंकलन करना ।
- मिट्टी परीक्षण के आधार पर मिट्टी के मानचित्र तैयार करना और उनमें होने वाले परिवर्तनों का समय–समय पर अध्ययन करना ।

वैज्ञानिक परीक्षणों के आधार पर मिट्टी परीक्षण और पौध विश्लेषण की नई–नई तकनीकी विकसित की जा रही हैं। इनके द्वारा प्राप्त मिट्टी और पौधों में आवश्यक तत्वों की मात्रा और उनके अनुपात के विषय में जानकारी प्राप्त करने से पौधों के स्वास्थ्य और संभावित उपज का आंकलन किया जा सकता है। मिट्टी परीक्षण के आधार पर उर्वरकों के प्रयोग से अधिक लाभ की संभावना बढ़ जाती है।

सरसों की उपज बढ़ाने के लिए आवश्यक पोषक तत्व

फसलों की नवीन किस्मों के अनुसार मिट्टी में पोषक तत्वों की उपलब्धता एवं संतुलन बनाए रखना अत्यंत आवश्यक है। मिट्टी में पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्व पाए जाते हैं, जिनमें से नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश सबसे अधिक मात्रा में पौधों द्वारा ग्रहण किए जाते हैं। इसलिए इन मुख्य पोषक तत्वों की पूर्ति के लिए उर्वरकों का उपयोग आवश्यक हो जाता है। उचित पोषक तत्व संतुलन (विशेषकर नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश), सल्फर और जैविक खाद, सरसों की अच्छी उपज और गुणवत्ता बढ़ाने में मदद करता है।

सरसों के लिए महत्वपूर्ण पोषक तत्वों की उपयुक्त समय, खुराक एवं उपयोग

नाइट्रोजन

सरसों की फसल में नाइट्रोजन सबसे महत्वपूर्ण पोषक तत्वों में से एक है, क्योंकि यह पौधे की वृद्धि, हरेपन, शाखाओं की संख्या और बीज उत्पादन में मुख्य भूमिका निभाता है। इसकी सही मात्रा और समय पर उपयोग, फसल की गुणवत्ता और उत्पादन दोनों को बढ़ाता है। नाइट्रोजन की कमी के कारण सरसों के पौधों में पुरानी पत्तियाँ पीली पड़ने लगती हैं, तनों का रंग बैंगनी होने लगता है और उनकी वृद्धि धीमी हो जाती है जिससे बीज की गुणवत्ता मे कम हो जाती है। इससे पौधों की विकास प्रक्रिया बाधित होती है और उत्पादन में गिरावट आती है। सरसा में कुल नाइट्रोजन 70–80 किग्रा/हेक्टेयर के हिसाब से देनी चाहिये। सरसों की खेती में नाइट्रोजन की पहली खुराक (बेसल ड्रेसिंग) बुवाई के समय, कुल नाइट्रोजन की 1/2 (आधी) मात्रा देनी चाहिये। दूसरी खुराक (टॉप ड्रेसिंग) जो की 30–35 दिन बाद (जब फूल आने लगें) या पहली सिंचाई के साथ, शेष 1/2 मात्रा देनी चाहिये ।

फॉस्फोरस

सरसों की फसल में फॉस्फोरस एक अत्यंत आवश्यक पोषक तत्व है, जो जड़ विकास, फूल और बीज के निर्माण में मदद करता है। फास्फोरस को बुवाई के समय ही देना चाहिए। बेसल ड्रेसिंग (मिट्टी में मिलाकर) के रूप में उपयोग करना सर्वोत्तम होता है। इसकी खुराक के लिए डीएपी का उपयोग आमतौर पर किया जाता है, जिसमें 46 प्रतिशत फॉस्फोरस होता है। सामान्य रूप से सरसों मे 30–40 किलो फॉस्फोरस प्रति हेक्टेयर की खुराक दी जाती है। यह ध्यान रखना चाहिए की

फॉस्फोरस को बुवाई से पहले खेत की अंतिम जुताई के समय मिट्टी में मिला देना चाहिए और बीज के सीधे संपर्क में न आने दें चाहिये, नहीं तो अंकुरण पर असर पड़ सकता है।

पोटाश

सरसों में पोटाश के सही अनुपात के उपयोग से फूल और फली की गुणवत्ता बेहतर होती है। रोगों के प्रति पौधों की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है, तने मजबूत बनते हैं और पौधे गिरते नहीं हैं। साथ मे तेल की मात्रा में भी सुधार हो जाती है। सरसों की बुवाई के समय, पोटाश का पूरा भाग बुवाई के समय ही मिट्टी में मिला दिया जाता है, ताकि यह पौधे की शुरुआती वृद्धि में मदद करे। इसकी मात्रा 20–30 किग्रा पोटाश प्रति हेक्टेयर् है और यह मात्रा मृदा परीक्षण के अनुसार समायोजित की जानी चाहिए। फसल मे फूल आने से पहले, यदि पत्तियाँ किनारों से जलने लगें या पीली पड़ने लगें, तो पोटाश की कमी हो सकती है ऐसे में पत्तियों पर पोटाश का छिड़काव किया जा सकता है। बुवाई से पहले पोटाश को अन्य खादों (जैसे नाइट्रोजन और फॉस्फोरस) के साथ अंतिम जुताई में मिट्टी में मिला देना चाहिये।

सल्फर

सरसों की फसल में सल्फर भी एक बहुत जरूरी पोषक तत्व है क्योंकि यह तेल संश्लेषण को बढ़ावा देता है और तेल उत्पादन के लिए आवश्यक है। यह बीज प्रोटीन, अमीनो एसिड, एंजाइम, ग्लूकोसाइनोलेट का एक महत्वपूर्ण घटक है और क्लोरोफिल निर्माण के लिए आवश्यक है। इसकी कमी से सरसों में पत्तियां मुड़ जाती हैं और तने के नीचे का भाग लाल हो जाता है। युवा पत्तियों का पीला होना शुरु हो जाता है जिससे क्लोरोसिस कहते है साथ ही इसकी कमी से पौधों की वृद्धि और विकास कम हो जाता है। सरसों में 30–40 किलो सल्फर प्रति हेक्टेयर् की सिफारिश की जाती है। मिट्टी परीक्षण के आधार पर मात्रा थोड़ी कम–ज्यादा हो सकती है। इसके प्रयोग मुख्य रूप से बुवाई के समय ही करना चाहिए। यदि मिट्टी में सल्फर की कमी हो तो 1 टॉप ड्रेसिंग (बुवाई के 30–35 दिन बाद) भी की जा सकती है।

जैविक विकल्प

जैविक खाद

सरसों की खेती में जैविक खाद का उपयुक्त समय, खुराक और पौधों की सेहत, मिट्टी की उर्वरता और लंबे समय तक टिकाऊ उत्पादन के लिए बेहद जरूरी होता है। जैविक खाद बुवाई से 2–3 हफ्ते पहले खेत में अच्छी तरह मिला देना चाहिए ताकि वह मिट्टी में अच्छी तरह मिल जाए और सूक्ष्मजीव सक्रिय हो सकें। फसल की वृद्धि के दौरान कुछ जैविक खादों (जैसे जीवामृत या वर्मी कम्पोस्ट की थोडी मात्रा) को फसल की 15–30 दिन की अवस्था पर भी दिया जा सकता है।

क.सं.	खाद का प्रकार	मात्रा (प्रति हेक्टेयर्)
1.	वर्मी कम्पोस्ट	1–2 टन (2500–5000 किग्रा)
2.	गोबर की सड़ी खाद	8–10 टन (2000–25000 किग्रा)
3.	जीवामृत (छिड़काव हेतु)	500 लीटर घोल प्रति एकड़

सरसों में एकीकृत पोषक प्रबंधन

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन एक आधुनिक कृषि पद्धति है जो खेती की उत्पादकता बढ़ाने एवं पर्यावरण संरक्षण सुनिश्चित करने और लागत को घटाने में सहायक है। यह प्रणाली पोषक तत्वों के संतुलित और कुशल उपयोग पर आधारित है, जिससे मिट्टी की उर्वरता बनी रहती है और फसल की पैदावार स्थायी रूप से बेहतर होती है।

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन का महत्व

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन के माध्यम से सरसों की उपज में वृद्धि के साथ–साथ मिट्टी की स्थायी उर्वरता और पर्यावरणीय संतुलन को बनाए रखा जा सकता है। यह पद्धति केवल रासायनिक उर्वरकों पर निर्भर न रहकर जैविक तत्वों और उपयोगी

सूक्ष्मजीवों के समन्वित उपयोग को बढ़ावा देती है, जिससे मिट्टी की संरचना, नमी रखने की क्षमता और सूक्ष्मजीवी गतिविधि में सुधार होता है।

एकीकृत पोषक प्रबंधन की प्रभावी कार्यप्रणालियाँ

- जैव उर्वरकों का उपयोगः एजोटोबैक्टर, राइजोबियम और फॉस्फेट घोलक बैक्टीरिया जैसे सूक्ष्मजीव पोषक तत्वों को उपलब्ध कराने में मदद करते हैं तथा ये आज के दृष्टिकोण से बहुत उपयोगी होते हैं।
- जैविक खादों का उचित प्रयोगः हरी खाद, गोबर खाद, फसल अपशिष्ट एवं कम्पोस्ट का उपयोग मिट्टी की भौतिक गुणवत्ता और कार्बनिक तत्व बढ़ाता है, जिससे उत्पादकता में वृद्धि होती है।
- रासायनिक उर्वरकों का संतुलित प्रयोगः वैज्ञानिक सिफारिशों के अनुसार एन.पी.के. का अनुपात तय कर के फसल को आवश्यकता अनुसार पोषण दिया जाना चाहिए।
- मिट्टी परीक्षण आधारित उर्वरक उपयोगः खेत की मिट्टी जांचकर आवश्यक पोषक तत्वों की सही मात्रा का पता लगाना और उसी अनुसार उर्वरकों का प्रयोग करना।

चित्र 1: एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन के घटक (स्रोतः अली एट अल, 2024)

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन की उपयोगिता

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन के माध्यम से सरसों की उपज में वृद्धि और गुणवत्ता में सुधार किया जा सकता है। साथ ही यह मिट्टी की उर्वरता एवं जैविक गतिविधि को बनाए रखने मे काफी अहम भूमिका निभाता है। इसके उपयोग से किसान भाई रासायनिक उर्वरकों की खपत में कमी और लागत में बचत कर सकते है तथा यह पर्यावरणीय प्रदूषण को कम करके और टिकाऊ खेती को बढ़ावा देने मे बहुउपयोगी है ।

निष्कर्ष

मिट्टी की समय–समय पर जांच करके उसमें रिक्त पोषक तत्वों की पूर्ति करके फसल की उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है। जल संचय, निकास एवं प्रवाह की उचित व्यवस्था करके मिट्टी उपजाऊ बनाई जा सकती है। किसान एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन जैसी उन्नत कृषि प्रणाली को अपनाकर फसल की उत्पादकता बढ़ाने, खेती की लागत घटाने और पर्यावरण संरक्षण का प्रभावी तरीका अपना सकते हैं। यह कृषि प्रणाली पोषक तत्वों के संतुलन और उपयोग को बढ़ावा देती है, जिससे मिट्टी की उर्वरता बनी रहती है और फसल की उपज में स्थायी रूप से सुधार होता है।

समाप्त

10

ज्योति शर्मा[1,2], शिव शंकर शर्मा[4,3], शिखा त्रिपाठी[1,4], एम. जेड. अब्दिन[2] एवं महेश राव[1]
[1]आईसीएआर– राष्ट्रीय पादप जैव प्रौद्योगिकी संस्थान, पूसा कैंपस, नई दिल्ली–110012
[2]डिपार्टमेंट ऑफ़ बायोटेक्नोलॉजी, स्कूल ऑफ़ केमिकल एंड लाइफ साइंस, जामिया हमदर्द, नई दिल्ली–110012
[3]स्कूल ऑफ़ बायोटेक्नोलॉजी, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश–221005
[4]वनस्पति विज्ञान विभाग विज्ञान संस्थान, इंस्टिटयूट ऑफ़ साइंस, काशी हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी, उत्तर प्रदेश–221005
Email: jyoti6335@gmail.com, mraoicar@gmail.com

ब्रैसिका के रोग और कीटों से सुरक्षा के उपाय

ब्रैसिका एक महत्वपूर्ण पौधों का समूह है, जो ब्रैसिका परिवार में आता है। इस समूह के अंतर्गत विभिन्न प्रकार की सब्जियाँ और तिलहन की फसलें आती हैं, जैसे गोभी, सरसों, ब्रोकोली, केल, शलरी और मूली। ब्रैसिका फसलें दुनियाभर में व्यापक रूप से उगाई जाती हैं, और इनकी विविधता और पोषक तत्वों से भरपूर होने के कारण इनका कृषि और आहार में महत्वपूर्ण स्थान है। भारत में ब्रैसिका परिवार की फसलों की खेती एक प्राचीन परंपरा है और यह भारतीय कृषि का महत्वपूर्ण हिस्सा मानी जाती है। विशेष रूप से सरसों और गोभी की खेती भारतीय किसानों के लिए एक महत्वपूर्ण आर्थिक स्रोत है। भारत में सरसों का तेल एक प्रमुख खाद्य तेल है, जिसका उपयोग रसोई में व्यापक रूप से किया जाता है। इसके अलावा, गोभी और मूली जैसी सब्जियाँ भी भारतीय उपभोक्ताओं के आहार का हिस्सा हैं। भारत में ब्रैसिका फसलों का उत्पादन मुख्य रूप से उत्तर भारत, मध्य भारत और पश्चिमी भारत के विभिन्न क्षेत्रों में होता है। इनकी खेती ठंडे और हल्के ठंडे क्षेत्रों में अधिक होती है, क्योंकि ये फसलें ऐसे मौसम में अच्छी वृद्धि करती हैं। ब्रैसिका फसलें, कृषि के लिए महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं, हालांकि, ये फसलें विभिन्न प्रकार के रोगों और कीटों से प्रभावित हो सकती हैं, जो इनके उत्पादन और गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं (चित्र 1)। इन रोगों और कीटों से बचाव के लिए उचित उपायों की जानकारी रखना जरूरी है, ताकि किसानों को अच्छे परिणाम मिल सकें। इस लेख में, हम ब्रैसिका फसलों के प्रभावित किए जाने वाले प्रमुख रोगों और कीटों की पहचान करेंगे और उनके प्रभावी नियंत्रण उपायों पर चर्चा करेंगे।

ब्रैसिका के प्रमुख रोग

अल्टरनेरिया पत्ती धब्बा रोग

एक कवकजनित रोग है जो ब्रैसिका की फसलों में आमतौर पर पाया जाता है। अल्टरनेरिया *ब्रासिकी* और *अल्टरनेरिया ब्रासिकोला* फफूंद द्वारा होता है। यह रोग खासकर गोभी, सरसों और ब्रोकली में अधिक प्रभावी होता है। अल्टरनेरिया के कारण पौधों की पत्तियाँ जलने लगती हैं, और धीरे–धीरे पूरी फसल सूखने लगती है। इस रोग के कारण पत्तियों पर भूरे रंग के धब्बे बन जाते हैं, जो समय के साथ फैलकर पूरे पत्ते को नष्ट कर देते हैं।

रोकथाम और नियंत्रण उपायः रासायनिक नियंत्रणः मैनकोजेब 75 प्रतिशत का 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। कैप्टान 50 प्रतिशत 2 ग्राम प्रति लीटर या कार्बेन्डाजिम 50 प्रतिशत 1 ग्राम प्रति लीटर का छिड़काव करें। हेक्साकोनाज़ोल 5 प्रतिशत 1 ग्राम प्रति लीटर या प्रोपिकोनाज़ोल 25 प्रतिशत 1 ग्राम प्रति लीटर का छिड़काव रोग के लक्षण दिखने पर करें।

अधीकृत सड़न

यह एक गंभीर रोग है, जो ब्रैसिका के पौधों की जड़ों पर हमला करता है, जिससे पौधे कमजोर हो जाते हैं और विकास में रुकावट आती है। यह रोग मिट्टी में पाए जाने वाले *प्लास्मोडियोफोरा ब्रासिका* द्वारा फैलता है।

रोकथाम के उपाय: बीज बोने से पहले कैप्टान 50 प्रतिशत 2 ग्राम/किग्रा. बीज से बीज उपचार करें। ब्रासिका फसलों की जड़ों को बुवाई से पहले 0.5 प्रतिशत बोरिक एसिड या 0.2 प्रतिशत कैल्शियम हाइड्रॉक्साइड में डुबोकर उपचारित करें।

व्हाइट रस्ट

व्हाइट रस्ट एक फंगल रोग है जो ब्रैसिका की फसलों में खासकर सरसों, गोभी, फूलगोभी, ब्रोकली में पाया जाता है। इस रोग में पौधों की पत्तियों और तनों पर सफेद द्रव्यमान और फफूंद के धब्बे दिखाई देते हैं। यह रोग *अल्बुगो कैंडिडा* नामक फफूंद के कारण होता है। रोग के कारण पौधों की वृद्धि रुक जाती है और पैदावार में भारी कमी आती है। पत्तियों के ऊपरी भाग पर पीले से भूरे धब्बे बनते हैं। पत्तियों के निचले हिस्से पर सफेद, फफूंदनुमा उभार दिखाई देते हैं। संक्रमण बढ़ने पर तनों और फूलों में विकृति हो सकती है, जिससे बीज उत्पादन प्रभावित होता है।

रोकथाम और नियंत्रण उपाय: कैप्टान 50 प्रतिशत 2 ग्राम/किग्रा. बीज, मैंकोजेब 75 प्रतिशत 2.5 ग्राम/किग्रा. बीज से उपचारीत करें।

पाउडरी मिल्ड्यू

यह एक फफूंद रोग है जो पत्तियों पर सफेद धूल के समान परत के रूप में दिखाई देता है। यह रोग *एरीसिफे क्रूसिफेरम* नामक फफूंद के कारण होता है। मुख्य रूप से ब्रासिका फसलों (सरसों, गोभी, फूलगोभी, ब्रोकली) की पत्तियों, तनों और फली को प्रभावित करता है। पत्तियों की सतह पर सफेद, चूर्णनुमा फफूंद दिखाई देती है। संक्रमित पत्तियां पीली पड़कर सूखने लगती हैं। यह रोग विशेष रूप से शुष्क एवं गर्म मौसम में अधिक फैलता है।

रोकथाम और नियंत्रण उपाय: बीज उपचार, कैप्टान 50 प्रतिशत 2 ग्राम/किग्रा. बीज, थिरम 75 प्रतिशत 2.5 ग्राम/किग्रा. बीज। फसल पर छिड़कावः सल्फर 80 प्रतिशत 2.5 ग्राम/लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। हेक्साकोनाज़ोल 5 प्रतिशत 1 मिली./लीटर का छिड़काव करें। प्रोपिकोनाज़ोल 25 प्रतिशत 1 मिली./लीटर का छिड़काव करें। कार्बेन्डाजिम 50 प्रतिशत 1 ग्राम/लीटर का छिड़काव करें।

स्क्लेरोटिनिया स्क्लेरोटियोरम एक पौधों के लिए हानिकारक फंगस है, जो विभिन्न प्रकार के पौधों में सफेद मोल्ड रोग का कारण बनता है। स्क्लेरोटिनिया स्क्लेरोटियोरम नामक कवक (फंगस) के कारण होता है। यह सरसों, तोरिया, गोभी सरसों, राई और अन्य ब्रासिका फसलों को प्रभावित करता है। यह रोग विशेष रूप से गीले और ठंडे वातावरण (15–25°C तापमान और अधिक आर्द्रता) में अधिक फैलता है। इस फंगस को कॉटनी रोट, वाटरी सॉफ्ट रोट, स्टेम रोट, ड्रॉप, क्राउन रोट, और ब्लॉसम ब्लाइट के नाम से भी जाना जाता है।

रोकथाम और नियंत्रण उपाय: बीज उपचारः थायरम 75 प्रतिशत 3 ग्राम/किग्रा. बीज, कैप्टान 50 प्रतिशत 2 ग्राम/किग्रा. बीज, कार्बेन्डाजिम 50 प्रतिशत 2 ग्राम/किग्रा. बीज। फसल पर छिड़कावः कार्बेन्डाजिम 50 प्रतिशत 1 ग्राम/लीटर पानी, प्रोपिकोनाज़ोल 25 प्रतिशत 1 मिली./लीटर पानी, हेक्साकोनाज़ोल 5 प्रतिशत 1 मिली./लीटर पानी, बोसकालिड + फ्लुकोक्सास्ट्रोबिन 26.7 प्रतिशत 0.6 ग्राम/लीटर पानी, पहला छिड़काव फूल आने से पहले करें। 10–15 दिन के अंतराल पर 2–3 बार छिड़काव क रें। स्प्रे सुबह या शाम को करें ताकि प्रभाव अधिक हो और पौधों को कोई हानि न पहुंचे।

तालिका 1: विभिन्न रोगों का जैविक नियंत्रण

रोग का नाम	रोग के लक्षण	जैविक नियंत्रण उपाय	कृषि नियंत्रण (किसान के लिए सुझाव)
अल्टरनेरिया पत्ती धब्बा	पत्तियों पर भूरे धब्बे, पत्तियों का सूखना	ट्राइकोडर्मा विरिडी 5 ग्राम/किग्रा. बीज, *स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस* 2.5 ग्राम/लीटर, नीम तेल 5 प्रतिशत	रोगमुक्त बीज, फसल चक्र, वायुसंचार, संक्रमित अवशेष हटाना, जल निकासी
क्लब रूट (अधीकृत सड़न)	जड़ों में गाँठ, पौधे कमजोर, वृद्धि रुकना	*ट्राइकोडर्मा विरिडी* 5 ग्राम/किग्रा. बीज	फसल चक्र, चूना/डोलोमाइट मिलाना, जल निकासी, संक्रमित जड़ें हटाना
व्हाइट रस्ट	पत्तियों पर सफेद उभार, पीले–भूरे धब्बे, फूलों में विकृति	*ट्राइकोडर्मा विरिडी* 5 ग्राम/किग्रा., नीम तेल 5 प्रतिशत	रोगरोधी किस्में (श्रक–6, च्नें ठवसक), फसल चक्र, बीज उपचार, अवशेष हटाना, जल निकासी
पाउडरी मिल्ड्यू	पत्तियों पर सफेद पाउडर, पत्तियां पीली और सूखी	*ट्राइकोडर्मा*/5 ग्राम/किग्रा., नीम तेल 5 प्रतिशत, दूध का घोल (10 प्रतिशत)	संतुलित नाइट्रोजन, पौध दूरी, फसल चक्र, अवशेष हटाना, प्रतिरोधी किस्में
स्क्लेरोटिनिया स्क्लेरोटियोरम (सफेद मोल्ड)	तनों में सफेद फफूंदी, गलन, पौधे का गिरना	ट्राइकोडर्मा 5 ग्राम/किग्रा., *स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस* 10 ग्राम/किग्रा., नीम तेल 5 प्रतिशत	अवशेष हटाना, जल निकासी, फसल चक्र, संतुलित उर्वरक, रोगमुक्त बीज

ब्रैसिका के प्रमुख कीट

सफेद मक्खी

सफेद मक्खी छोटे सफेद कीट होते हैं जो ब्रैसिका के पौधों के निचले हिस्से पर रहते हैं और पौधों से रस चूसते हैं। इन कीटों के कारण पौधे पीले पड़ जाते हैं और उनकी वृद्धि रुक जाती है। ये कीट पत्तियों से रस चूसते हैं, जिससे पौधे कमजोर हो जाते हैं और वृद्धि प्रभावित होती है। यह हनीड्यू (चिपचिपा पदार्थ) स्रावित करता है, जिससे फसल पर काली फफूंद विकसित हो जाती है।

रोकथाम और नियंत्रण उपाय: नीम का तेल या इमिडाक्लोप्रिड जैसे कीटनाशक का छिड़काव करें। पौधों के चारों ओर की झाड़ियों और खरपतवार को साफ रखें, क्योंकि ये कीटों के आवास होते हैं। थायामेथोक्साम 25 प्रतिशत 0.3 ग्राम/लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। इमिडाक्लोप्रिड 17.8 प्रतिशत 0.5 मिली./लीटर पानी का छिड़काव करें। एसिटामिप्रिड 20 प्रतिशत 0.2 ग्राम/लीटर पानी का छिड़काव करें। डाइनोटेफ्यूरान 20 प्रतिशत 0.3 ग्राम/लीटर पानी का छिड़काव करें। जैविक नियंत्रण को प्राथमिकता दें और रासायनिक नियंत्रण का उपयोग तभी करें जब संक्रमण गंभीर हो। कीटनाशकों को बदल–बदलकर उपयोग करें ताकि कीटों में प्रतिरोधक क्षमता विकसित न हो। रसायनों का छिड़काव सुबह या शाम को करें जब मधुमक्खियों और परागण करने वाले अन्य लाभदायक कीटों की गतिविधि कम हो।

लट

यह कीट विशेष रूप से गोभी, ब्रोकोली और सरसों में पाया जाता है। कैटरपिलर पत्तियों को खा जाते हैं और पौधे को नष्ट कर देते हैं। यह कीट पौधों के अंदर घुसकर उनकी जड़ों को भी नुकसान पहुंचा सकता है। छोटे हरे रंग के कैटरपिलर पत्तियों पर दिखाई देते हैं। पत्तियों में अनियमित छिद्र होते हैं, जो बढ़ते–बढ़ते केवल शिराएं छोड़ देते हैं। गंभीर संक्रमण में पौधों की पूरी पत्तियां खत्म हो सकती हैं। फली बनने के समय यह नुकसान बहुत अधिक हो सकता है।

रोकथाम और नियंत्रण उपाय: पौधों की नियमित जांच करें और कैटरपिलर को पकडकर हटा लें। थायामेथोक्साम 25 प्रतिशत 0.3 ग्राम/लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। इमामेक्टिन बेंजोएट 5 प्रतिशत 0.5 ग्राम/लीटर पानी का

छिड़काव करें। स्पिनोसैड 45 प्रतिशत 0.3 मिली./लीटर पानी में मिलाकर स्प्रे करें। क्लोरोपाइरीफॉस 50 प्रतिशत 2 मिली./लीटर पानी का छिड़काव करें। छोटे कैटरपिलर पर जैविक नियंत्रण (Bt स्प्रे, नीम तेल, प्राकृतिक परजीवी) अधिक प्रभावी होते हैं। रसायनों का छिड़काव तभी करें जब संक्रमण बहुत अधिक हो और जैविक विधियां कारगर न हों।

एफिड (चेपा)

यह ब्रैसिका फसलों जैसे सरसों, तोरिया, गोभी आदि में बहुत सामान्य और हानिकारक रस चूसक कीट है। एफिड छोटे, मुलायम शरीर वाले, हरे, पीले या काले रंग के कीट होते हैं, जो पौधे की कोमल पत्तियों, कलियों, फूलों, और तनों पर झुंड में पाए जाते हैं। ये पौधे का रस चूसते हैं, जिससे पौधे की वृद्धि रुक जाती है, पत्तियाँ कुरकुरी और पीली हो जाती हैं। संक्रमण के कारण पत्तियाँ मरोड़ खा जाती हैं और पौधा कमजोर हो जाता है। एफिड द्वारा छोड़ा गया चिपचिपा द्रव्य (हनीड्यू) पत्तियों पर जम जाता है, जिससे सोती मोल्ड (काली फफूंदी) का विकास होता है। ये कीट मोज़ेक वायरस जैसे रोगों के वाहक भी होते हैं, जो पौधे को और भी अधिक नुकसान पहुंचाते हैं।

रोकथाम और नियंत्रण उपाय: नीम आधारित कीटनाशक (नीम तेल 5 प्रतिशत), ब्यूवेरिया बेसिआना, वर्टिसिलियम लेकानी, लेडीबर्ड बीटल्स जैसे जैव नियंत्रक, इमिडाक्लोप्रिड 17.8 प्रतिशत 0.3 मिली./लीटर का पानी में मिलाकर छिड़काव करें। थायामेथोक्साम 0.3 ग्राम/लीटर लीटर पानी में मिलाकर स्प्रे करें। एसिटामिप्रिड 20 प्रतिशत 0.2 ग्राम/लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

स्लग और घोंघे

स्लग और घोंघे मुख्य रूप से ब्रासिका फसलों (सरसों, गोभी, फूलगोभी, ब्रोकली) की कोमल पत्तियों, तनों और अंकुरित पौधों को खाकर नुकसान पहुंचाते हैं। ये पत्तियों पर अनियमित छिद्र बनाते हैं और पौधों की वृद्धि रोक देते हैं। इनके द्वारा छोड़ी गई चमकदार बलगम खेत में इनके संक्रमण की पहचान होती है। अत्यधिक आर्द्रता और गीली मिट्टी में इनका प्रकोप बढ़ जाता है।

रोकथाम और नियंत्रण उपाय: मेटाल्डिहाइड 5 प्रतिशत 2.5–5 किग्रा./हेक्टेयर का खेत में छिड़काव करें। फेरस फॉस्फेट 3 प्रतिशत 5 किग्रा./हेक्टेयर जैविक नियंत्रण के लिए प्रभावी है। कैल्शियम आर्सेनेट का छिड़काव मिट्टी में करें, जिससे स्लग मर जाते हैं। नोट: मेटाल्डिहाइड का छिड़काव बारिश से पहले न करें, क्योंकि यह नमी में निष्क्रिय हो सकता है। रसायनों का उपयोग अत्यधिक आवश्यक होने पर ही करें और जैविक नियंत्रण को प्राथमिकता दें।

तालिका 2: विभिन्न किटों का जैविक नियंत्रण

कीट का नाम	कृषि नियंत्रण	जैविक नियंत्रण	विशेष नोट्स
कैबेज व्हाइटफ्लाई	• संक्रमित पत्तियां तोड़ें • उचित दूरी रखें • फसल चक्र • पीले चिपचिपे जाल (30–40/है.) • उच्च दबाव पानी का स्प्रे	नीम तेल 5 प्रतिशत/5 मिली./लीटर ब्यूवेरिया बैसियाना 2.5 ग्राम/लीटर वर्टिसिलियम लेकानी 2 ग्राम/लीटर प्राकृतिक किट: कोकिनेल्ला सेप्टेमपंक्टाटा, एनकार्सिया फॉर्मोसा	जैविक उपाय प्राथमिक; रसायन गंभीर स्थिति में कीटनाशक बदल–बदल कर उपयोग करें स्प्रे सुबह/शाम करें
ब्रैसिका कैटरपिलर	• अंडे/लार्वा नष्ट करें • फसल चक्र अपनाएं • खरपतवार हटाएं • लाल/पीले जाल (30–40/है.) • लाइट ट्रैप /1/एकड़	• नीम तेल 5 प्रतिशत/5 मिली./लीटर • Bt 2 ग्राम/लीटर • NPV / 250 LE/है. • ट्राइकोग्रामा ब्रासिका	छोटे कैटरपिलर पर जैविक उपाय अधिक प्रभावी कीटनाशक का उपयोग गंभीर संक्रमण में करें
स्लग और घोंघे	शारीरिक कीट,	बतख, मुर्गी, मेंढक, राख, अंडे के छिलके, नीम तेल, लहसुन अर्क	अत्यधिक नमी से बचे छिड़काव सुबह/शाम करें
मस्टर्ड एंथ्रेक्नोज	• स्वस्थ बीज प्रयोग करें • बीज उपचार करें	ट्राइकोग्रामा वीरीडी 5 ग्राम/किग्रा. बीज • नीम तेल 5 प्रतिशत 5 मिली./लीटर	पहला स्प्रे लक्षण दिखते ही करें 10–12 दिन के

कीट का नाम	कृषि नियंत्रण	जैविक नियंत्रण	विशेष नोट्स
	• जल निकासी बनाए रखें • फसल चक्र अपनाएं • संक्रमित पौधे नष्ट करें		अंतराल पर 2–3 बार स्प्रे सुबह/शाम स्प्रे करें
एफिड (चेपा)	कीटनाशकों को बदल–बदलकर उपयोग करें ताकि एफिड में प्रतिरोधक क्षमता विकसित न हो। छिड़काव करते समय पत्तियों की निचली सतह पर विशेष ध्यान दें क्योंकि एफिड वहीं छिपे रहते हैं	• नीम आधारित कीटनाशक (नीम तेल 5 प्रतिशत) • ब्यूवेरिया बैसियाना वर्टिसिलियम लेकानी • लेडीबर्ड बीटल्स जैसे जैव नियंत्रक	प्रारंभिक अवस्था में नियंत्रण, सह फसलों का उपयोग, समय पर बुवाई, संतुलित खाद प्रबंधन

अल्टरनेरिया पत्ती धब्बा व्हाइट रस्ट एफिड (चेपा) पाउडरी मिल्ड्यू

चित्र 1: ब्रैसिका के रोग और कीटों का प्रदर्शन

निष्कर्ष

ब्रैसिका फसलें भारतीय कृषि के लिए न केवल एक आर्थिक धारा हैं, बल्कि ये पौष्टिक तत्वों से भरपूर होती हैं, जो स्वस्थ आहार के लिए आवश्यक हैं। इन फसलों की कृषि विविधता और फसल चक्रीकरण में महत्वपूर्ण योगदान है। हालांकि, इन फसलों को विभिन्न रोगों और कीटों का सामना करना पड़ता है, जो उत्पादकता और गुणवत्ता को प्रभावित कर सकते हैं। इस लेख में चर्चा किए गए प्रमुख रोग जैसे अल्टरनेरिया, व्हाइट रस्ट, और कीट जैसे कैबेज व्हाइटफ्लाई और कैटरपिलर की पहचान और नियंत्रण उपायों से किसानों को इन समस्याओं से निपटने में मदद मिल सकती है। सही कृषि पद्धतियाँ, जैसे फसल चक्रीकरण, उच्च गुणवत्ता वाले बीजों का उपयोग, और समय पर कीटनाशकों और फंगीसाइड्स का छिड़काव, इन रोगों और कीटों से बचाव करने के लिए अत्यधिक प्रभावी साबित हो सकते हैं। इस प्रकार, ब्रैसिका फसलों की उचित देखभाल, उचित रोकथाम उपायों के साथ, किसानों की आय बढ़ाने के साथ–साथ खाद्य सुरक्षा और कृषि विविधता में भी सुधार कर सकती है। विशेष रूप से, सरसों और गोभी जैसी फसलें भारत की खाद्य प्रणाली में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं, और उनकी पैदावार में वृद्धि से न केवल किसानों की आर्थिक स्थिति बेहतर होगी, बल्कि राष्ट्रीय स्तर पर खाद्य सुरक्षा में भी योगदान मिलेगा।

समाप्त

11

शिखा त्रिपाठी[1,2], ज्योति शर्मा[1,3], पूजा गर्ग[1], शिव शंकर शर्मा[1,4], रंजीत कुशवाहा[1], स्नेहा गुप्ता[5] एवं महेश राव[1]*
[1]भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय पादप जैव प्रौद्योगिकी संस्थान, एलबीएस केंद्र, पूसा परिसर, नई दिल्ली– 110012
[2]वनस्पति विज्ञान विभाग, इंस्टिट्यूट ऑफ़ साइंस, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश–221005
[3]डिपार्टमेंट ऑफ़ बायोटेक्नोलॉजी, जामिया हमदर्द, हमदर्दनगर, नई दिल्ली–110062
[4]स्कूल ऑफ़ बायोटेक्नोलॉजी, इंस्टिट्यूट ऑफ़ साइंस, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश–221005
[5]स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर, राजस्थान–334006
Email: mraoicar@gmail.com; shikhaa.tripathii0101@gmail.com

उद्यानिकी और स्थायित्वः एक पर्यावरण–अनुकूल दृष्टिकोण

सतत् बागवानी पद्धतियाँ पारंपरिक बागवानी विधियों के पर्यावरणीय प्रभाव को कम करने में उपयोगी होने के साथ–साथ, पारिस्थितिक संतुलन और दीर्घकालिक कृषि उत्पादकता बनाए रखने में भी अनिवार्य हैं। जैसे–जैसे सतत् विकास के प्रति वैश्विक जागरूकता बढ़ रही है, पर्यावरण–अनुकूल बागवानी दृष्टिकोण अपनाना अत्यधिक महत्वपूर्ण होता जा रहा है। पारंपरिक विधियाँ कीटनाशकों, सिंथेटिक उर्वरकों और अत्यधिक सिंचाई उपयोग पर अत्यंत निर्भर करती हैं, जिससे मिट्टी का क्षरण, जल प्रदूषण और जैव विविधता की हानि होती है। इसके विपरीत, सतत् बागवानी संसाधन संरक्षण, पारिस्थितिकी तंत्र के स्वास्थ्य और पर्यावरणीय क्षति को कम करने को प्राथमिकता देती है। जलवायु परिवर्तन, जनसंख्या वृद्धि और संसाधनों की कमी के बढ़ते दबाव के साथ, सतत् खाद्य उत्पादन की आवश्यकता पहले से कहीं अधिक अनिवार्य हो गई है। सतत् बागवानी एक व्यवहार्य समाधान प्रदान करती है जो पारिस्थितिक सिद्धांतों को नवीन कृषि पद्धतियों के साथ एकीकृत करती है। ये विधियाँ मिट्टी के स्वास्थ्य को बढ़ाती हैं, जल उपयोग का अनुकूलन करती हैं और रासायनिक निविष्ट पर निर्भरता को कम करती हैं, जिससे लचीली खाद्य प्रणालियों में योगदान मिलता है। इसके अलावा, सतत् बागवानी स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं का समर्थन करती है, जैविक खेती को बढ़ावा देती है, कार्बन फुटप्रिंट को कम करती है और नवीकरणीय संसाधनों के उपयोग को प्रोत्साहित करती है। इन प्रथाओं को अपनाकर, किसान और बागवानी विशेषज्ञ औद्योगिक कृषि के नकारात्मक प्रभावों को कम करने में मदद कर सकते हैं और भविष्य की पीढ़ियों के लिए खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित कर सकते हैं।

सतत् बागवानी पद्धतियाँ

बागवानी में स्थिरता को बढ़ावा देने के लिए कई रणनीतियाँ उभरी हैं। जैविक खेती एक मुख्य सिद्धांत है, जो सिंथेटिक निविष्टों से बचती है और मिट्टी के स्वास्थ्य, जैव विविधता और कीटनाशकों के अवशेषों को कम करने पर जोर देती है। समेकित नाशीजीव प्रबंधन (आईपीएम) जैविक नियंत्रण, फसल चक्रण और निगरानी को संयुक्त कर रासायनिक कीटनाशकों की निर्भरता को कम करता है और गैर–लक्षित जीवों की रक्षा करता है। जल संरक्षण तकनीकें, जैसे कि ड्रिप सिंचाई, सटीक सिंचाई, वर्षा जल संचयन और जल पुनः उपयोग, दक्षता बढ़ाती हैं और अपव्यय को कम करती हैं। मिट्टी के स्वास्थ्य प्रबंधन में कवर फसलें, हरी खाद, मल्चिंग, खाद और वर्मीकम्पोस्टिंग (केंचुआ खाद) शामिल हैं, जो दीर्घकालिक उत्पादकता का समर्थन करती हैं और कटाव को कम करती हैं। जैव विविधता को बढ़ावा देना, जैसे कि कृषि वानिकी, आवास संरक्षण और कीटनाशकों के उपयोग को कम करना, पारिस्थितिकी तंत्र की स्थिरता को मजबूत करता है और प्राकृतिक कीट नियंत्रण और परागण में सुधार करता है।

बागवानी में जैविक खेती

जैविक खेती जैव विविधता और मिट्टी की उर्वरता को बढ़ावा देती है, जबकि सिंथेटिक कीटनाशकों और उर्वरकों के प्रयोग पर निर्भरता को समाप्त करती है। फसल चक्रण, खाद और जैविक कीट नियंत्रण जैसी विधियाँ सूक्ष्मजीव गतिविधि, जल धारण और पोषक तत्वों की उपलब्धता को बढ़ाती हैं।

उदाहरणः

फसल चक्रणः एक सब्जी फार्म में नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाली फसलें जैसे मटर और बीन्स को टमाटर या शिमला मिर्च जैसी भारी पोषक तत्वों की मांग वाली फसलों के साथ चक्रण कर मिट्टी की उर्वरता बनाए रख सकता है।

खादः जैविक फलों के बागान में अक्सर पौधों के अवशेषों और गोबर से बनी खाद का उपयोग मिट्टी के पोषक तत्वों को प्राकृतिक रूप से समृद्ध करने के लिए करते हैं।

जैविक कीट नियंत्रणः ग्रीनहाउस खेती में लेडीबग्स को एफिड आबादी को नियंत्रित करने के लिए छोड़ा जाता है, जिससे रासायनिक कीटनाशकों की आवश्यकता नहीं पड़ती।

अनुसंधान से संकेत मिलता है कि जैविक खेती कीटनाशक अवशेषों को काफी कम कर देती है और परागणकर्ताओं और प्राकृतिक परजीवभक्षियों को बढ़ावा देकर वन्यजीव संरक्षण का समर्थन करती है। इसके अतिरिक्त, जैविक रूप से उगाई गई फसलें पारंपरिक रूप से उगाई गई फसलों की तुलना में अधिक पोषक तत्व और प्रतिऑक्सीकारक (एंटीऑक्सिडेंट) स्तर रखती हैं।

समेकित नाशीजीव प्रबंधन (आईपीएम)

आईपीएम जैविक, सांस्कृतिक, भौतिक और चयनित रासायनिक नियंत्रण विधियों को एकीकृत करके कीटों का प्रबंधन करता है, जिससे पारिस्थितिक संतुलन बना रहता है। जैविक नियंत्रण प्राकृतिक परजीवभक्षियों जैसे परजीवी कीटों और वायरस को बढ़ावा देता है, जबकि फसल चक्रण और स्वच्छता जैसी सांस्कृतिक तकनीकें कीटों के जीवन चक्र को बाधित करती हैं। भौतिक अवरोध, जाल और लक्षित कीटनाशक अनुप्रयोग कीटनाशकों पर निर्भरता और पर्यावरणीय जोखिम को और कम करते हैं।

उदाहरणः

जैविक नियंत्रणः ग्रीनहाउस में ट्राइकोडर्मा ततैया छोड़ी जाती हैं, जो कैटरपिलर के अंडों को परजीवी बनाकर संक्रमण को कम करती हैं।

सांस्कृतिक तकनीकेंः किसान सब्जी बागानों के चारों ओर गेंदा (मैरीगोल्ड) लगाते हैं, जो अपनी प्राकृतिक कीट–प्रतिरोधी विशेषताओं से सूत्रकृमियों (नेमाटोड्स) को दूर रखते हैं।

भौतिक अवरोधः महीन–जालीदार जाल (फाइन–मेश नेटिंग) बेरीज़ को फल मक्खियों से बचाता है और रासायनिक स्प्रे की आवश्यकता को कम करता है।

समेकित नाशीजीव प्रबंधन

आईपीएम जैव विविधता में सुधार करता है, कीटनाशकों के प्रति प्रतिरोध को कम करता है और अनपेक्षित पारिस्थितिक क्षति को कम करते हुए फसल उत्पादन को बढ़ाता है।

बागवानी में जल संरक्षण

कुशल जल उपयोग स्थिरता के लिए महत्वपूर्ण है। ड्रिप सिंचाई पानी को सीधे पौधों की जड़ों तक पहुँचाती है, जिससे वाष्पीकरण और अपवाह कम होता है और पानी की खपत 50 प्रतिशत तक कम हो सकती है। सटीक सिंचाई मिट्टी के नमी सेंसर जैसी तकनीकों का उपयोग करके जल अनुप्रयोग का अनुकूलन करती है। पुनर्नवीनीकरण जल, जिसमें उपचारित

अपशिष्ट जल और वर्षा जल संचयन शामिल है, एक सतत् सिंचाई स्रोत प्रदान करता है। मल्चिंग और कवर फसलों का उपयोग जल वाष्पीकरण को कम करने और नमी धारण क्षमता में सुधार करने के लिए किया जाता है ।

वर्मीकम्पोस्टिंग

उदाहरणः

ड्रिप सिंचाईः कैलिफ़ोर्निया के अंगूर के बाग ड्रिप सिंचाई का उपयोग करके कुशलता से जल वितरण सुनिश्चित करते हैं और अत्यधिक अपवाह को रोकते हैं।

वर्षा जल संचयनः ग्रीनहाउस वर्षा जल को जलाशय में इकट्ठा करके इसे सिंचाई में पुनः उपयोग करते हैं, जिससे भूजल पर निर्भरता कम होती है।

मल्चिंगः स्ट्रॉबेरी खेतों में भूसे की मल्चिंग वाष्पीकरण को कम करने और गर्मी के मौसम में मिट्टी की नमी बनाए रखने में मदद करती है।

बागवानी में मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन

स्वस्थ मृदा दीर्घकालिक उत्पादकता के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। आवरण फसलें (कवर क्रॉप्स) मृदा संरचना, जल धारण क्षमता और जैविक पदार्थ की मात्रा को सुधारती हैं, जिससे पोषक तत्वों का लीचिंग और कटाव कम होता है। मल्चिंग तापमान को नियंत्रित करता है, खरपतवारों को दबाता है, और सूक्ष्मजीवीय गतिविधि को बढ़ाता है। कम्पोस्टिंग और वर्मीकम्पोस्टिंग जैविक कचरे को पोषक तत्वों से भरपूर मृदा संशोधनों में पुनर्चक्रित करते हैं, जिससे उर्वरता और सूक्ष्मजीव विविधता को बढ़ावा मिलता है। फसल चक्र (क्रॉप रोटेशन) कीट चक्रों को बाधित करता है, मृदा जैव विविधता को बनाए रखता है, और पोषक तत्वों के अवशोषण को अनुकूलित करता है, जबकि नियमित मृदा परीक्षण संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन सुनिश्चित करता है।

ड्रिप सिंचाई

उदाहरणः

आवरण फसलें: बागानों में सरसों की आवरण फसलें मृदाजनित रोगों से बचाने और जैविक पदार्थ को बढ़ाने में सहायक होती हैं।

वर्मीकम्पोस्टिंगः शहरी खेतों में केंचुए की खाद बनाने की प्रणाली रसोई के कचरे को उच्च गुणवत्ता वाले उर्वरक में बदलती है।

मृदा परीक्षणः जैविक सब्जी फार्म वार्षिक मृदा परीक्षण करके पोषक संतुलन बनाए रखते हैं और स्थायी पैदावार सुनिश्चित करते हैं।

जंगली फूलों की पट्टियाँ

बागवानी में जैव विविधता संवर्धन

जैव विविधता बढ़ाने से बागवानी पारिस्थितिक तंत्र मजबूत होते हैं। विभिन्न पौधों की प्रजातियाँ परागणकर्ताओं, लाभकारी कीटों और वन्यजीवों के लिए निवास स्थान प्रदान करती हैं, जिससे पारिस्थितिक संतुलन बना रहता है और कीट प्रकोप कम होते हैं। देशीय पौधों का संरक्षण परागणकर्ताओं को सहयोग देता है और पारिस्थितिक संपर्क में सुधार करता है। हेज़रो और जंगली फूलों की पट्टियाँ जैसी आवासीय परिचालन तकनीक लाभकारी जीवों को आकर्षित करती हैं, जिससे कीट नियंत्रण और परागण में सुधार होता है। कीटनाशकों के उपयोग में कमी और समेकित कीट प्रबंधन (आईपीएम) अपनाने से प्राकृतिक परजीवभक्षियों और परागणकर्ताओं की रक्षा होती है।

उदाहरण:

देशीय पौधों का संरक्षण: मिल्कवीड लगाने से मोनार्क तितलियों को महत्वपूर्ण प्रजनन आवास मिलता है।

हेज़रो और जंगली फूलों की पट्टियाँ: बागानों में मधुमक्खियों को आकर्षित करने और परागण दर बढ़ाने के लिए जंगली फूलों की पट्टियाँ लगाई जाती हैं।

कीटनाशकों के उपयोग में कमी: अंगूर के बागों में फेरोमोन ट्रैप्स का उपयोग कीटों के संभोग चक्र को बाधित करने के लिए किया जाता है, जिससे कीटनाशकों की आवश्यकता कम होती है।

अभिग्रहण में चुनौतियाँ और बाधाएँ

ज्ञान, तकनीकी और बाजार सीमाएँ: सतत् बागवानी तकनीकों के बारे में जागरूकता की कमी और तकनीकी जटिलताओं के कारण इन्हें अपनाने में बाधा आती है। कई किसान लाभ, विधियाँ और आर्थिक व्यवहार्यता के बारे में अपर्याप्त जानकारी रखते हैं। समेकित कीट प्रबंधन (आईपीएम) जैसी तकनीकों को लागू करने के लिए कीट गतिशीलता और नियंत्रण विधियों का विशेष ज्ञान आवश्यक होता है। इसके अलावा, कम बाजार मांग और स्थायी बाजारों तक सीमित पहुँच पर्यावरण–अनुकूल प्रथाओं में निवेश को हतोत्साहित करती है। इन चुनौतियों का समाधान करने के लिए शैक्षिक कार्यक्रमों, सहकर्मी प्रशिक्षण, प्रमाणन पहलों और बाजार प्रोत्साहनों की आवश्यकता है।

आर्थिक और नियामक बाधाएँ: सतत् बागवानी की ओर अग्रसर होने के लिए जैविक प्रमाणन, नई प्रौद्योगिकियों और बुनियादी ढांचे में महत्वपूर्ण निवेश की आवश्यकता होती है, जो अक्सर किसानों के लिए वित्तीय बोझ बन जाता है। सीमित ऋण पहुँच और अपर्याप्त सरकारी समर्थन इस समस्या को और बढ़ाते हैं। इसके अलावा, असंगत नियम और कमजोर प्रवर्तन स्थायी प्रथाओं को बाधित करते हैं। इन बाधाओं को दूर करने के लिए सहायक नीतियाँ, वित्तीय प्रोत्साहन और नियामक सुधार आवश्यक हैं ।

भविष्य के अनुसंधान के लिए सिफारिशें

दीर्घकालिक स्थिरता और नीति विकास: भविष्य के शोध को सतत् बागवानी के मृदा स्वास्थ्य, जैव विविधता, जल संरक्षण और पारिस्थितिक तंत्र की लचीलापन पर दीर्घकालिक प्रभावों का मूल्यांकन करना चाहिए।

आर्थिक व्यवहार्यता और बाजार विस्तार: वित्तीय बाधाओं को कम करने, ऋण पहुँच में सुधार करने और बाजार प्रोत्साहनों को मजबूत करने के तरीकों की जाँच करना महत्वपूर्ण है।

ज्ञान हस्तांतरण और तकनीकी नवाचार: उन्नत प्रशिक्षण कार्यक्रमों, विस्तार सेवाओं और डिजिटल शिक्षण उपकरणों को विकसित करना आवश्यक है, ताकि किसान सतत् प्रथाओं को अपनाने में सक्षम हों।

स्तत् बागवानी को बढ़ावा देने के लिए व्यावहारिक रणनीतियाँ

वित्तीय, नीति और बाजार समर्थनः सरकारों और वित्तीय संस्थानों को अनुदान, सब्सिडी और प्रोत्साहन प्रदान करने चाहिए, जिससे सतत बागवानी को अपनाने में मदद मिल सके।

हितधारक सहयोग और क्षमता निर्माणः किसानों, शोधकर्ताओं, नीति निर्माताओं और उद्योग हितधारकों के बीच सहयोग नवाचार और ज्ञान आदान–प्रदान को बढ़ावा देता है।

प्रौद्योगिकी अपनाने और सतत् प्रथाएँः डिजिटल कृषि, सटीक खेती (प्रिसिजन फार्मिंग), और सेंसर–आधारित सिंचाई को अपनाना संसाधनों की दक्षता को अनुकूलित कर सकता है।

निष्कर्ष

सतत् बागवानी पर्यावरणीय गिरावट को कम करने, संसाधन दक्षता में सुधार करने और कृषि लचीलापन सुनिश्चित करने के लिए अत्यंत आवश्यक है। जैविक खेती, समेकित कीट प्रबंधन, मृदा संरक्षण और जैव विविधता संवर्धन जैसी प्रमुख रणनीतियाँ महत्वपूर्ण लाभ प्रदान करती हैं, जिनमें बेहतर मृदा स्वास्थ्य, रासायनिक निविष्टों की कमी, जल संरक्षण और पारिस्थितिक सेवाओं की मजबूती शामिल है। हालाँकि, वित्तीय बाधाएँ, बाजार सीमाएँ, ज्ञान अंतराल और नियामक चुनौतियाँ, सतत् बागवानी को अपनाने में बाधा डालती हैं। इन मुद्दों को हल करने के लिए लक्षित वित्तीय प्रोत्साहन, नीति सुधार, हितधारक जुड़ाव और दीर्घकालिक स्थिरता और तकनीकी प्रगति पर चल रहे अनुसंधान की आवश्यकता है। इन उपायों को लागू करके, हम सतत् बागवानी की ओर संक्रमण को तेज कर सकते हैं, जिससे वैश्विक खाद्य प्रणालियों के लिए एक लचीला और पर्यावरणीय रूप से जिम्मेदार भविष्य सुरक्षित किया जा सकता है।

समाप्त

12

श्रुति कौशिक, सुनिता देवी[1]*, अश्वनी कुमार[1], पूजा[2], अवनी दहिया[1] एवं सतीश कुमार सनवाल[1]
[1]भा.कृ.अनु.स.–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
[2]भा.कृ.अनु.प.–गन्ना प्रजनन संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्र, करनाल–132001 (हरियाणा)
*Email: Khatkersunita@gmail.com

सहजन (*मोरिंगा ओलीफेरा*)ः चमत्कारी वृक्ष और गैर–पारंपरिक पशु आहार

सहजन (मोरिंगा ओलिफेरा) एक बहु उपयोगी पेड़ है। अंग्रेजी में इसे "ड्रमस्टिक" भी कहते हैं। मोरिंगा ओलीफेरा, मोरिंगेसी परिवार का एक सदस्य है, जिसमें पोषक तत्वों और जैव सक्रिय पदार्थों की प्रचुरता पाई जाती है, जो स्वास्थ्य को सकारात्मक रूप से प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं। मोरिंगा एक बहुमुखी पौधा साबित हुआ है, जिसके हर हिस्से का उपयोग भोजन या चिकित्सा के रूप में किया जाता है। इसका उपयोग जैव ईंधन, जल शोधक और कॉस्मेटिक उद्योग के रूप में भी किया जाता है। मानव पोषण में मोरिंगा के उपयोग के अलावा पारंपरिक पशु आहार के विकल्प के रूप में भी इसके संभावित अनुप्रयोग को प्रेरित किया है। पोषक तत्वों, विशेष रूप से प्रोटीन का एक उत्कृष्ट स्रोत होने के कारण, मोरिंगा का उपयोग पशु आहार में प्रोटीन के स्रोत के रूप में या पारंपरिक पशुधन आहार और चारे के विकल्प के रूप में किया जा सकता है। हाल ही में कई शोध लेख प्रकाशित हुए हैं, जो सुझाव देते हैं कि मोरिंगा का उपयोग पशु आहार में ऐसे समावेशन स्तरों पर किया जा सकता है, जिनका स्वास्थ्य, उत्तरजीविता, मृत्यु दर, विकास दर या प्रजनन पर कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ता है। परिपक्व बीजों से 38–40 प्रतिशत खाद्य तेल मिलता है जिसे बेन ऑयल कहा जाता है। एंटी–एजिंग क्रीम, हेयर केयर उत्पाद, फेस क्रीम, अरोमाथेरेपी तेल और मसाज ऑयल जैसे सौंदर्य प्रसाधनों में मोरिंगा तेल का उपयोग किया जाता है इसके अलावा, यह पाया गया है कि मोरिंगा ओलीफेरा कुछ पशु बीमारियों, विशेष रूप से एवियन कोक्सीडियोसिस के प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, क्योंकि इसमें एंटी–ऑक्सीडियल गुण होते हैं।

मोरिंगा ओलीफ़ेरा, उत्तरी भारत और उत्तरी यूरोप में मुख्य रूप से पाया जाता है, लेकिन इसे लाल सागर क्षेत्र और संयुक्त राज्य अमेरिका सहित एशिया और अफ्रीका के अन्य भागों में भी उगाया जाता है। यह मुख्य रूप से अर्ध–शुष्क, उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में उगता है, हालाँकि पौधे के सूखा प्रतिरोधी गुण इसे शुष्क क्षेत्रों के लिए अधिक उपयुक्त बनाते हैं। जड़ें जल–जमाव के प्रति संवेदनशील होती हैं और ऐसी परिस्थितियों में सड़ने लगती हैं। मोरिंगा ओलीफ़ेरा बहु उपयोगी है, जिसमें पोषण और चिकित्सीय विशेषताओं के साथ–साथ पर्यावरणीय लाभ भी हैं। इस पेड़ के विभिन्न भाग अनेक पोषक तत्वों से भरपूर पाये गये हैं, इसलिये इसके विभिन्न भागों का विविध प्रकार से उपयोग किया जाता है। इसका उपयोग दवा, ईंधन की लकड़ी, रंगाई, संरक्षण, मवेशियों का चारा और हरी खाद के रूप में भी किया जाता है। इसकी हरी फलियाँ तथा पत्तियाँ सब्जी एवं पारम्परिक औषधि के रूप में प्रयुक्त होतीं हैं। इस पौधे को नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ हेल्थ द्वारा वर्ष 2007 का वनस्पति विज्ञान के रूप में सम्मानित किया गया है। 300 से अधिक बीमारियों का इलाज करने की क्षमता के कारण अफ्रीकी इसे कभी न मरने वाला या चमत्कारी वृक्ष कहते थे।

इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए यह बिल्कुल स्पष्ट है कि पारंपरिक आहार प्रणाली में सतत् वृद्धि नहीं है और यह गंभीर पर्यावरणीय चुनौतियाँ को प्रस्तुत कर रही है। इसके अलावा पारंपरिक चारों में विटामिन, खनिज और प्रोटीन के प्रबलीकरण करने का प्रयास किया जा रहा है जोकि पशुधन उद्योग में जानवरों को विभिन्न प्रकार के आहार संबंधी कमियों को पूरा करेगा परंतु इस प्रकिर्या में उच्च लागत की वजह से, अविकसित और विकासशील देशो को चुनौती और भारी नुकसान का सामना करना पड़ रहा है।

पारंपरिक प्रोटीन आहार बहुत महँगे हैं जोकि संतुलित आहार बनाने की विधि को सीमित कर देते है इसलिए संतुलित पशुधन आहार तैयार करने के लिए वैकल्पिक, गैर–पारंपरिक, अपेक्षाकृत सस्ते स्रोत की खोज का मार्ग प्रशस्त किया गया हैं इस से संबंधित पर्यावरण अनुकूल पशुधन चारा उत्पादन प्रणाली, अनेक पौधों और कृषि उत्पादों की खोज करके पशु चारे के रूप में या चारे के एक भाग के रूप में इस्तेमाल किया गया हैं।

चित्र 1: मोरिंगा के पौधे और उसके विभिन्न भाग

इस सन्दर्भ में अनेक पौधों का विश्लेषण किया गया है जिनकी पोषक सामग्री अधिक हैं और जिनका आशाजनक प्रदर्शन है। मोरिंगा ओलीफ़ेरा जोकि अपनी उत्कृष्टता के लिए जाना जाता है एक चमत्कारी वृक्ष हैं और मूल रूप से हिमालय क्षेत्र में पाया जाता है। इसके पोषण तत्वो पर बड़े पैमाने पर अध्ययन किया गया है और ये पाया गया की इसमें पशुधन आहार के लिये सभी महत्वपूर्ण पोषक तत्व हैं। पोषक तत्वों से भरपूर होने के कारण मोरिंगा की पती, ताजी फलियां, बीज और जड़ें व्यापक से मानव भोजन और पशु चारा के रूप में उपयोग की जाती हैं।

उत्पति एवं प्रकृति

मोरिंगा जोकि मोरिंगेसी परिवार में शामिल है, जिसमें 13 पौधों की प्रजातियाँ शामिल हैं। इसमें विभिन्न प्रजातियाँ जैसे की *मोरिंगा आर्बोरिया, मोरिंगा रिवे, मोरिंगा बोरज़ियाना, मोरिंगा पाइग्मिया, मोरिंगा लोंगिटुबा, मोरिंगा स्टेनोपेटाला, मोरिंगा रसपोलियाना, मोरिंगा ओवलिफ़ोलिया, मोरिंगा ड्रोहार्डी, मोरिंगा हिल्डेब्रांडी, मोरिंगा पेरेग्रीन, मोरिंगा कॉन्केनेसिस* और *मोरिंगा ओलीफ़ेरा* शामिल हैं। हालाँकि मोरिंगा ओलीफ़ेरा मूल रूप से दक्षिण एशिया, विशेष रूप से भारत, श्रीलंका, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, बांग्लादेश और अफ्रीका के कुछ हिस्से और सऊदी अरब में पाया जाता हैं। मोरिंगा के कई स्थानीय नाम हैं जैसे शिग्रु, शोभंजना, तीक्ष्णगंधा, अक्षीवा, मोचका, मुनागा, सजना, सारागावो, शेगाटा, सहजानो, सीताचिनी, दैन्था, केलोर, मारुम, डैंडालोनबिन और डंडालुन आदि। मोरिंगा ओलीफेरा तेजी से बढ़ने वाला, पर्णपाती, मुलायम पौधा है जिसकी लगभग 12 मीटर की ऊंचाई तक वृद्धि होती है। उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में जहाँ लगभग 2000 मिमी औसत वर्षा, 19–35 डिग्री सेल्सियस का तापमान के साथ–साथ जहाँ अच्छी सूरज की रोशनी होती है वहां मोरिंगा का पेड़ अच्छी तरह से विकसित होता है। अच्छे जल निकास के के साथ कई प्रकार की मिट्टी में भी उगने में सक्षम है, लेकिन यह अम्लीय से क्षारीय व् रेतीली दोमट मिट्टी में सबसे अच्छा उगता है। इसके अलावा यह पेड़

अत्यधिक तापमान (48 डिग्री सेल्सियस) से लेकर मामूली ठंढ तक के तापमान को भी सहन कर लेता है और अच्छे से पनप जाता है। शाखाओं के सिरों पर त्रिपिटक, मिश्रित, पंखदार पत्तियाँ उगती है। मोरिंगा के फूलों में पीले–सफ़ेद रंग की पंखुड़ियाँ जिसमे हल्की सुखद खुशबू होती है। इस पेड़ का फल पतली फली वाला ट्रिलोब कैप्सूल की तरह जिसमे बीजो की संख्या लगभग 15 से 20 तक होती है, जो परिपक्व होने पर हरे रंग से भूरे हो जाते है। बीज गोल या त्रिकोणीय आकार में जोकि लकड़ी से ढके हुए और तीन कागजी पंख के साथ होते हैं।

मोरिंगा की पोषण संरचना

मोरिंगा ओलीफेरा जिसे "चमत्कारिक वृक्ष" के नाम से भी जाना जाता है इसमें पोषण और न्यूट्रास्युटिकल क्षमता होती है। इस पौधे के सभी भाग खाने योग्य है जिसमें पत्तियाँ, फलियाँ, बीज, फूल, फल और जड़ें शामिल हैं। उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय देशों में रहने वाले लोगों के लिए मोरिंगा ओलीफेरा एक पारंपरिक आहार का हिस्सा हैं। मोरिंगा के विभिन्न भाग, विभिन्न आवश्यक पोषक तत्व के भण्डार के रूप में कार्य करते हैं जिनको तालिका 1 में विस्तृत रूप में दर्शाया गया है।

तालिका 1: प्रति 100 ग्राम मोरिंगा ओलीफेरा की पत्तियों, बीजों और फलियों की पोषण संरचना

क्र.सं.	पोषक तत्व	सूखी पत्तियाँ	ताजी पत्तियाँ	फलियाँ	बीज
1	प्रोटीन (ग्राम)	29.4	6.7	2.5	35.97
2	कैलोरी	205	92	26	–
3	वसा (ग्राम)	5.2	1.70	0.1	38.67
4	कार्बोहाइड्रेट (ग्राम)	41.2	12.5	3.7	8.67
5	नमी (प्रतिशत)	7.5	75	86.9	–
6	फाइबर (ग्राम)	12.5	0.9	4.8	2.87
7	पोटैशियम (मिलीग्राम)	1236	259	259	235.7
8	फास्फोरस (मिलीग्राम)	252	70.8	110	75
9	कैल्शियम (मिलीग्राम)	2185	440	30	45
10	सल्फर (मिलीग्राम)	870	137	137	0.05
11	आयरन (मिलीग्राम)	25.6	0.85	5.3	–
12	मैग्नीशियम (मिलीग्राम)	448	24	24	635
13	कॉपर (मिलीग्राम)	0.6	0.07	3.1	5.20
14	विटामिन बी1 (मिलीग्राम)	2.02	0.06	0.05	0.05
15	विटामिन बी2 (मिलीग्राम)	21.3	0.05	0.07	0.06
16	विटामिन बी3 (मिलीग्राम)	7.6	0.8	0.2	0.2
17	विटामिन सी (मिलीग्राम)	17.3	220	120	4.5
18	आर्जिनिन (मिलीग्राम)	1325	406.6	360	540
19	हिस्टिडीन (मिलीग्राम)	613	149.8	27.5	98
20	लाइसिन (मिलीग्राम)	1325	288	37.5	73
21	ट्रिप्टोफैन (मिलीग्राम)	425	107	80	–
22	मेथिओनिन (मिलीग्राम)	350	117.7	140	65
23	वेलिन (मिलीग्राम)	1063	476	135	125
24	फेनिलएलनिन (मिलीग्राम)	1388	310.3	40	165
25	थ्रेओनीन (मिलीग्राम	1188	117.7	98	95
26	ल्यूसीन (मिलीग्राम)	1950	492.2	650	214

मोरिंगा की पत्तियाँ में लगभग 20–35 प्रतिशत प्रोटीन होता है जिसमे अधिकांश आवश्यक अमीनो एसिड है। इसमें पर्याप्त मात्रा में कैल्शियम, पोटेशियम, जिंक जैसे खनिजों की उच्च सामग्री के साथ लोहा, तांबा और मैग्नीशियम भी पाया जाता है। पत्तियों की तुलना में, मोरिंगा ओलीफ़ेरा के तने और फलियाँ में पोषक तत्व कम होते हैं। फली में लिपिड और प्रोटीन कम मात्रा में होते हैं लेकिन आहारीय फाइबर तथा असंतृप्त आवश्यक अमीनो एसिड प्रचुर मात्रा में होती है। मोरिंगा पौधे के बीज

में 30–40 प्रतिशत तेल सामग्री, समृद्ध संतृप्त और असंतृप्त फैटी एसिड सहित ओलिक एसिड, पामिटिक एसिड, स्टीयरिक एसिड और आर्किडिक एसिड होती हैं। बीजों में पर्याप्त मात्रा में मैक्रोन्यूट्रिएंट्स और सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे सोडियम, पोटेशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम, फॉस्फोरस, जस्ता, तांबा; और आवश्यक हाइड्रोफोबिक अमीनो एसिड होती है। मोरिंगा के फूल भी कई पोषक तत्वों से भरपूर होते हैं, इनमे प्रचुर मात्रा में प्रोटीन, आहार फाइबर, लिपिड, कार्बोहाइड्रेट सहित, पोटेशियम, कैल्शियम, पॉलीअनसेचुरेटेड फैटी एसिड और एंटीऑक्सीडेंट (टोकोफ़ेरॉल) होते है।

पत्तियाँ

मोरिंगा की पत्तियों में प्रोटीन की मात्रा लगभग 29.1 से 35.3 ग्राम पर 100 ग्राम सूखे वजन तक होती है। इनमे कैल्शियम, पोटैशियम, जिंक, मैग्नीशियम, आयरन और कॉपर जैसे खनिज भी भरपूर मात्रा में मिलते हैं। विभिन विटामिन जैसे की विटामिन ए, विटामिन के, बीटा–कैरोटीन, विटामिन बी, फोलिक एसिड, पाइरिडोक्सिन, निकोटिनिक एसिड, निकोटिनिक एसिड, विटामिन सी, डी और विटामिन ई भी मौजूद होते हैं। पतियों में टैनिन, स्टेरोल, टेरपेनोइड्स, फ्लेवोनोइड्स, सैपोनिन, एंथ्राक्विनोन जैसे फाइटोकेमिकल्स के साथ–साथ एल्कलॉइड, ग्लूकोसाइनोलेट्स, आइसोथियोसाइनेट्स, ग्लाइकोसाइड यौगिकों और ग्लिसरॉल–1–9– ऑक्टाडेकेनोएट जैसे कैंसर रोधी एजेंटों मौजूद है। मोरिंगा के पत्तों में कैलोरी की मात्रा भी कम होती है मोरिंगा के पत्तों में आवश्यक अमीनो एसिड (मेथिओनिन, ल्यूसीन, आइसोल्यूसीन, हिस्टिडीन, फेनिलएलनिन, वेलिन, थ्रेओनीन, आर्जिनिन और लाइसिन) की उच्च मात्रा होती है। मोरिंगा के पत्तों में अन्य पत्तेदार सब्जियों की तुलना में कम स्तर के एंटी–न्यूट्रिशनल कारक होते हैं जोकि आहार के रूप में सेवन करने पर कोई विषाक्त प्रभाव नहीं डालते हैं। मोरिंगा की पतियों में स्टिग्मास्टेरोल, सिटोस्टेरोल और कैम्पेस्टरोल जैसे फाइटोस्टेरोल भरपूर होता है जो हार्मोन के बनने की आधार इकाई होते हैं। ये यौगिक एस्ट्रोजन उत्पादन को बढ़ाते हैं, परिणामस्वरूप दूध का उत्पादन करने वाली स्तन ग्रंथि नलिकाओं के प्रसार को उत्तेजित करता है। इसका उपयोग 3 वर्ष से कम उम्र के बच्चों में कुपोषण के इलाज के लिए भी किया जाता है। गर्भावस्था के दौरान लगभग 6 चम्मच पत्ती का पाउडर लेने से एक महिला की दैनिक आयरन और कैल्शियम की आवश्यकताओं को पूरा करता है।

फलियाँ और फूल

मोरिंगा की फली रेशेदार होती हैं और पाचन समस्याओं और कोलन कैंसर के इलाज के लिए मूल्यवान होती हैं। शोध से पता चला है की अपरिपक्व फली में लगभग 46.78 प्रतिशत फाइबर और लगभग 20.66 प्रतिशत प्रोटीन होती है। फली तथा फूलों में क्रमश 30 और 31 प्रतिशत अमीनो एसिड होती है। फली और फूलों में पामिटिक, लिनोलेनिक, लिनोलिक और ओलिक एसिड की समान मात्रा दिखाई दी है। मोरिंगा की फली दस्त, लीवर और प्लीहा की समस्या और जोड़ों के दर्द में उपयोगी है। फलियों में पॉली अनसैचुरेटेड फैटी एसिड की उपस्थिति मोटे लोगों के आहार में उपयोग की जाती है। एशिया में मोरिंगा के फूलों को अन्य खाद्य पदार्थ के साथ मिलाया जाता है क्योंकि ये फूल कैल्शियम आयन, पोटेशियम आयन, मोम, एल्कलॉइड, क्वेरसेटिन और काएम्फेरोल से समृद्ध हैं। इसमें फ्लेवोनोइड्स जैसे की क्वेरसेटिन और काएम्फेरोल जोकि फेनोलिक हाइड्रॉक्सिल समूहों के यौगिक है ये सभी एंटीऑक्सीडेंट का काम करते हैं जिसका उपयोग चिकित्सा में होता है। मोरिंगा के फूलो में हाइपोकोलेस्ट्रोलेमिक, गठियारोधी एजेंट जोकि मूत्र संबंधी समस्याओं और सर्दी का इलाज कर सकते हैं।

जड़ की छाल

जड़ की छाल हृदय उत्तेजक, अल्सर विरोधी और सूजन विरोधी एजेंट के रूप में कार्य करती है। इसमें कैल्शियम, मैग्नीशियम और सोडियम जैसे खनिज, मॉर्फिन, मोरिगिनिन जैसे एल्कलॉइड होते हैं। छाल के एल्कलॉइड अल्सर विरोधी, हृदय उत्तेजक और मांसपेशियों को आराम देने में मदद करती है।

बीज

मोरिंगा के बीजों में वसा, फाइबर, प्रोटीन, खनिज, विटामिन ए, बी, सी और अमीनो एसिड होते हैं। इसमें ओलिक एसिड (बेन

ऑयल), एंटीबायोटिक जिसे पेटीगोस्पर्मिन कहा जाता है और फैटी एसिड जैसे लिनोलिक एसिड, लिनोलेनिक एसिड, बेहेनिक एसिड, फाइटोकेमिकल्स जैसे टैनिन, सैपोनिन, फेनोलिक्स, फाइटेट, फ्लेवोनोइड्स, टेरपेनोइड्स और लेक्टिन भी होते हैं। फ्लेवोनोइड्स का उपयोग सूजन–रोधी दवाई के लिए होता है। एंटीबायोटिक पेटीगोस्पर्मिन रोगाणुरोधी गुणों के लिए जिम्मेदार है। तालिका 2 में मोरिंगा में मौजूद पोषक तत्वों का उल्लेख किया गया है। तालिका 2 और 3 में मोरिंगा ओलीफेरा के पोषक गुण को विस्तृत रूप में दर्शाया गया है।

तालिकाः 2 मोरिंगा ओलीफेरा के पोषक गुण

पौधे के भाग	घटक
पत्तियां	प्रोटीन, β–कैरोटीन, विटामिन सी, कैल्शियम, पोटेशियम और एंटीऑक्सीडेंट
फली	फाइबर, प्रोटीन, वसा (ओलिक एसिड, लिनोलिक एसिड, लिनोलेनिक एसिड) खनिज, विटामिन (β–कैरोटीन, बी और सी) फाइटोकेमिकल्स (टैनिन, सैपोनिन, फिनोलिक्स, फाइटेट्स, फ्लेवेनॉइड्स, टेरपेनोइड्स और लेक्टिन्स)।
जड़ की छाल	खनिज (कैल्शियम, मैग्नीशियम और सोडियम)। फाइटोकेमिकल्स (मॉर्फिन और मोरिजिनिन)
फूल	सुक्रोज, ग्लूकोज, अमीनो एसिड, फाइटोकेमिकल्स के अंश

मोरिंगा में बायोएक्टिव यौगिक

मोरिंगा में औषधीय क्षमता बहुत अधिक है, जिसे आयुर्वेदिक और यूनानी पद्धति में लंबे समय से मान्यता प्राप्त है। इस पौधे के लगभग हर हिस्से जैसे की जड़, छाल, गोंद, पत्ती, फल (फली), फूल, बीज और बीज के तेल का उपयोग देशी चिकित्सा में विभिन्न बीमारियों के लिए किया जाता रहा है। इसमें बायोएक्टिव यौगिक जैसे कि फेनोलिक एसिड, यूवोनोइड्स, एल्कलॉइड्स, फाइटोस्टेरॉल, प्राकृतिक शर्करा, विटामिन, खनिज और कार्बनिक अम्ल की उपस्थिति की वजह से ये कई जैविक गतिविधियां जैसे की एंटी–इंफ्लेमेटरी, एंटीमाइक्रोबियल, हाइपोग्लाइसेमिक, हाइपोकोलेस्ट्रोलेमिक, एंटीऑक्सीडेंट, एंटीप्रोलिफेरेटिव और हेपेटोप्रोटेक्टिव को प्रदर्शित करते हैं। तालिका 3 में मोरिंगा के विभिन्न भागों के औषधीय गुण दर्शाया गए हैं।

तालिकाः 3 मोरिंगा ओलीफेरा के पोषक गुण

मोरिंग के विभिन्न भाग	औषधीय गुण
पत्तियां	अस्थमा, हाइपरग्लेसेमिया, त्वचा रोग, ब्रोंकाइटिस, कैंसर, रक्तचाप और कोलेस्ट्रॉल
बीज	अतिगलग्रंथिता, माइक्रोबियल संक्रमण, सूजन रोग
जड	हृदय उत्तेजक, अल्सर, सूजन संबंधी रोग
फूल	हाइपरकोलेस्ट्रोलेमिया, गठिया
फली	लिवर और स्प्लीन की समस्या और जोड़ों का दर्द
पौधे का गोंद	घाव को ठीक करने के लिए, अस्थमा, गठिया
तने की छाल	तपेदिक, कैंसर, अल्सर

निष्कर्ष

मोरिंगा एक चमत्कारी पेड़ है जो भारत और अन्य देशों में स्थानीय रूप से उपलब्ध है। मोरिंगा के पोषण और औषधीय महत्व के कारण, मोरिंगा और इसके मूल्यवर्धित उत्पादों की मांग बढ़ रही है। इसके लिए मोरिंगा उद्योग को विकसित करने के लिए आगे अनुसंधान पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है, ताकि आजीविका, पोषण और गरीबी में सुधार हो सके। मोरिंगा ओलीफेरा को नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ हेल्थ द्वारा वर्ष 2007 के लिए वनस्पति विज्ञान के रूप में मान्यता दी गई थी और 2011 और 2012 में फिर से प्रशंसा की गई थी। 300 से अधिक बीमारियों का इलाज करने की क्षमता के लिए इसे दुनिया भर में महत्व दिया जाता है। इसे कई नामों से सम्मानित किया है "कभी न मरना" और "केवल एक चीज जो शुष्क मौसम में उगती है" और "माँ का दूध" आदि। यह कहना सुरक्षित है कि इस पौधे ने किसी भी अन्य की तुलना में तीसरी दुनिया के देशों में अधिक जीवन बचाया है।

समाप्त

13

अवतार सिंह, रौदास कुमार, रितेश कुमार अवस्थी, राजकुमार, मनीष कुमार, देवेंद्र सिंह बुंदेला एवं सतीश कुमार सनवाल
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)
Email: singhawtar91@gmail.com

राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के किसानों के लिए भिन्डी की फसल एक महत्वपूर्ण विकल्प

भिंडी मालवेसी कुल की फसल है, जिसका उद्गम स्थल इथियोपिया माना जाता है। यह विटामिन, प्रोटीन, कैल्शियम तथा अन्य खनिज तत्वों का अच्छा स्रोत है, जिससे इसका पोषण मूल्य और भी बढ़ जाता है। भारत विश्व में भिंडी का सबसे बड़ा उत्पादक देश है। राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (एनसीआर) के अंतर्गत आने वाले उत्तर प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान और दिल्ली के आसपास के क्षेत्रों में भिंडी की खेती वर्षभर सफलतापूर्वक की जाती है। पोषण, स्वाद, औषधीय तथा औद्योगिक महत्व के कारण भिंडी सभी वर्गों में अत्यंत लोकप्रिय सब्जी है। भिंडी के कोमल व अपरिपक्व फल मुख्य रूप से सब्जी के रूप में उपयोग किए जाते हैं, जबकि कभी–कभी इनके फलों को डिब्बाबंदी या सुखाकर भी प्रयोग में लाया जाता है। भिंडी के सूखे बीजों से 13–22 प्रतिशत तक तेल तथा 22–24 प्रतिशत प्रोटीन प्राप्त किया जा सकता है। इसके तने और जड़ों से प्राप्त म्यूसिलेज का उपयोग गुड़ निर्माण में गन्ने के रस को साफ करने के लिए किया जाता है। पूर्णतः परिपक्व, रेशेदार फल और तनों का उपयोग कागज उद्योग में भी होता है।

जलवायु

भिंडी गर्म मौसम की फसल है, जिसके लिए 400 से 1000 मि.मी. वार्षिक वर्षा उपयुक्त मानी जाती है। बुवाई के समय 20–29 डिग्री सेल्सियस तापमान तथा फसल वृद्धि एवं फल तुड़ाई के दौरान 25–35 डिग्री सेल्सियस तापमान सर्वोत्तम रहता है। भिंडी दिवस–निष्प्रभावी पौधा है, अर्थात इसकी वृद्धि पर दिन की लंबाई का विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।

मिट्टी

भिंडी की खेती 6 से 8 पी.एच. मान वाली लगभग सभी प्रकार की मृदाओं में की जा सकती है। अच्छी पैदावार के लिए भुरभुरी एवं जल निकास वाली दोमट मिट्टी सबसे उपयुक्त मानी जाती है। खेत में जल भराव की स्थिति नहीं होनी चाहिए, क्योंकि अधिक नमी से जड़ सड़न जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं।

भूमि की तैयारी

भिंडी की अच्छी फसल के लिए भूमि की तैयारी अत्यंत महत्वपूर्ण है। खेत की 20–25 सेमी गहराई तक अच्छी तरह जुताई कर उसे समतल कर लिया जाता है। खेत से ढेले, ठूँठ तथा खरपतवार यंत्र या हाथ से निकाल दिए जाते हैं। अंतिम जुताई के समय 15–20 टन प्रति हेक्टेयर की दर से अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद, नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा खेत में मिला दी जाती है। इसके बाद पाटा लगाकर खेत को समतल कर लिया जाता है और आवश्यकता अनुसार छोटे–छोटे टुकड़ों में बाँट दिया जाता है।

खाद एवं उर्वरक प्रबंधन

भिंडी की फसल में संतुलित पोषण से अधिक उपज प्राप्त की जा सकती है। सामान्यतः निम्नलिखित मात्रा उपयुक्त मानी जाती है:

गोबर की खाद : 15–20 टन प्रति हेक्टेयर

नाइट्रोजन	: 100–120 किग्रा प्रति हेक्टेयर
फॉस्फोरस	: 60 किग्रा प्रति हेक्टेयर
पोटाश	: 40 किग्रा प्रति हेक्टेयर

नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई से पहले अंतिम जुताई के समय देनी चाहिए। नाइट्रोजन की शेष मात्रा दो बराबर भागों में 30–40 दिन के अंतराल पर खड़ी फसल में देना लाभकारी रहता है।

भिंडी की बुवाई

(अ) बुवाई की विधियाँ

भिंडी की बुवाई मुख्यतः दो विधियों से की जाती है:

1. **समतल क्यारियों में बुवाई–** यह सबसे सामान्य एवं प्रचलित विधि है, जिसमें खेत को समतल कर कतारों में बीज बोए जाते हैं।
2. **मेड़ों पर बुवाई (रिज पर बुवाई)–** यह विधि अधिक लाभदायक मानी जाती है, क्योंकि इसमें पानी की कम आवश्यकता होती है और पौधों की वृद्धि बेहतर होती है।

आमतौर पर अच्छे एवं समान अंकुरण के लिए बीजों को बुवाई से पहले रात भर पानी में भिगोना लाभकारी रहता है। इसके अतिरिक्त, बीजों को 0.2 प्रतिशत बाविस्टिन घोल में उपचारित करने से बीज एवं प्रारंभिक अवस्था के पौधों को मिट्टी–जनित रोगों से सुरक्षा मिलती है।

(ब) रोपण दूरी

उचित दूरी से पौधों को पर्याप्त पोषक तत्व, प्रकाश और वायु मिलती है, जिससे उपज में वृद्धि होती है। फसल के मौसम के अनुसार पौधों की उचित दूरी रखना आवश्यक है:

वसंत/ग्रीष्मकालीन फसल	: 45x30 सेमी
वर्षाकालीन फसल	: 60x30 सेमी

(स) बीज की मात्रा

ग्रीष्मकालीन (जायद) फसल	: 9 किग्रा बीज प्रति हेक्टेयर
वर्षाकालीन (खरीफ) फसल	: 7 किग्रा बीज प्रति हेक्टेयर

(द) बीज उपचार

भिंडी के बीजों को बुवाई से पूर्व कार्बेन्डाजिम + मेटालैक्सिल नामक फफूंदनाशी दवा से उपचार करें। 02–2.5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करके बीज की बुवाई करनी चाहिए। इससे बीज एवं नवांकुर अवस्था में रोगों का प्रकोप कम होता है। बीजों को 2–3 सेमी गहराई पर बोना उपयुक्त रहता है।

(य) बुवाई का समय

ग्रीष्मकालीन (जायद) फसल : फरवरी–मार्च

वर्षाकालीन (खरीफ) फसल : जून–जुलाई

सिंचाई प्रबंधन

भिंडी की फसल में समय पर संतुलित सिंचाई आवश्यक है। तापमान एवं मौसम के अनुसार सिंचाई अंतराल इस प्रकार रखें:

माह	सिंचाई का अंतराल (दिन में)
मार्च	: 6–7 दिन।
अप्रैल	: 7–8 दिन।
मई–जून	: 10–12 दिन।

चित्र 1: उत्तर प्रदेश के बागपत जिले में भिंडी की लहलहाती फसल

चित्र 2: भिंडी की फसल के साथ खुशहाल किसान

तालिका 1: भिंडी की संकर प्रजातियाँ एवं उनका विवरण

क्रमांक सं.	प्रजाति का नाम	विवरण
(i)	काशी चमन	(i) यह किस्म 2019 में आईसीएआर–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान (आईआईवीआर), वाराणसी, उत्तर प्रदेश द्वारा विकसित नवीनतम भिंडी की किस्म है। (ii) यह पीला शिरा मोजेक वायरस (वाईवीएमवी) और ओकरा एनेशन लीफ कर्ल वायरस (ओईएलसीवी) के प्रति प्रतिरोधी है। (iii) यह ग्रीष्मकालीन और वर्षाकालीन दोनों मौसम के लिए उपयुक्त किस्म है। (iv) काशी चमन भिंडी की फलियों की लंबाई 10–12 सेमी होती है। (v) इसकी उपज लगभग 150–160 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है, जो अन्य किस्मों की तुलना में 21.66 प्रतिशत अधिक है ।
(ii)	काशी वरदान	(i) यह किस्म वाईवीएमवी और ओईएलसीवी के प्रति रोगरोधी है। यह दोनों मौसम के लिए उपयुक्त किस्म है। (ii) यह किस्म 2019 में आईसीएआर–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान (आईआईवीआर), वाराणसी, उत्तर प्रदेश द्वारा विकसित की गई नवीनतम किस्म है। (iii) काशी वरदान भिंडी जल्दी पकने वाली किस्मों में से एक है। (iv) कीट सहनशील: यह प्रमुख कीटों के प्रति मध्यम रूप से सहनशील है जिससे फसल को कम नुकसान होता है। (अ) उच्च्य उपज : यह किस्म सामान्य भिंडी की प्रजातियों से 21.66 प्रतिशत अधिक उत्पादन देती है, जिससे किसानों की आय में वृद्धि होती है।

क्रमांक सं.	प्रजाति का नाम	विवरण
(iii)	आनंद क्रांति (गुजरात ओकरा हाइब्रिड–205)	(i) आनंद कृषि विश्वविद्यालय, गुजरात द्वारा 2023 में विकसित यह किस्म अपनी जलवायु प्रतिरोधकता, उच्च उपज, तथा अनेक मौसमों और निर्यात के लिए उपयुक्तता के लिए विख्यात है। (ii) इस किस्म का पौधा ऊंचाई में छोटा होता है, जिसके कारण फसल को हवा से कोई हानि नही होती है। (iii) यह पीला शिरा मोजेक वायरस के प्रति प्रतिरोधी है। यह ग्रीष्मकालीन फसल के लिए उपयुक्त किस्म है। (iv) फलियाँ गहरे हरे रंग की चिकनी और कोमल होती है। (v) औसत पैदावार 150–160 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है।
(iv)	एडवंटा कोमल 2486 एफ1 हाइब्रिड	(i) आकर्षक फलः गहरे हरे रंग, पंचकोणीय आकार के फल जो देखने में सुंदर लगते है। (ii) शीघ्र परिपक्वताः बुवाई के 45–55 दिनों में पहली फसल मिल जाती है। (iii) उच्च उपजः प्रति एकड़ अधिक उपज देने की क्षमता होती है। (iv) बाजार मांगः अच्छी गुणवत्ता और आकर्षक फलों के कारण बाजार में उच्च मांग है। (v) इस किस्म में उत्कृष्ट रोग प्रतिरोधक क्षमता होती है।
(v)	सिंजेन्टा ओएच–102	(i) लंबे समय तक ताजी रहने वाली किस्म है। (ii) रोग प्रतिरोधकः यह किस्म वाईवीएमवी और ओईएलसीवी के प्रति अच्छी सहनशीलता दिखाती है। (iii) फलः आकर्षक गहरे हरे रंग के, चिकने, एकसमान और कोमल होते हैं। (iv) उपजः उच्च उपज देने की क्षमता रखती है।
(vi)	एडवंटा नव्या भिंडी	(i) रोग प्रतिरोधकः यह किस्म वाईवीएमवी के प्रति रोगरोधी किस्म है। (ii) फली की गुणवत्ताः फलियां गहरे हरे रंग, चमकीली, पतली, और तोड़ने में आसान होती हैं। (iii) शीघ्र परिपक्वताः बुवाई के 42–45 दिनों में पहली विपणन योग्य फली तैयार हो जाती है। (iv) नव्या भिंडी किस्म में अच्छी उपज क्षमता होती है।

खरपतवार नियंत्रण

(अ) यांत्रिक नियंत्रण

खरपतवार नियंत्रण के लिए 3–4 बार निराई–गुड़ाई आवश्यक होती है। पहली गुड़ाई बुवाई के लगभग 45 दिन बाद तथा इसके बाद साप्ताहिक अंतराल पर की जाती है।

(ब) रासायनिक नियंत्रण

खरपतवारों के प्रभावी नियंत्रण हेतु बुवाई के बाद, अंकुरण से पहले 500 लीटर पानी में 2.5–3 लीटर पेंडिमेथालिन 30 प्रतिशत ई.सी. मिलाकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव किया जाता है।

(स) जैविक नियंत्रण

जैविक मल्च अथवा कतारों के बीच काली पॉलीथीन शीट का उपयोग करने से नमी संरक्षण होता है तथा खरपतवारों की वृद्धि में कमी आती है।

फसल संरक्षण (कीट एवं रोग प्रबंधन)

भिंडी की अच्छी उपज के लिए कीट–रोगों का समय पर नियंत्रण आवश्यक है। इसके लिए एकीकृत कीट एवं रोग प्रबंधन (आईपीएम) अपनाना चाहिएः

- सफेद पॉलीथीन मल्च से मृदा सौर्यीकरण

- फसल चक्र का पालन
- प्रतिरोधी किस्मों का चयन (जैसे– अर्का अनमोल, काशी चमन, काशी ललिमा, वर्षा उपहार, आनंद क्रांति आदि)
- खेत और मेड़ों से वैकल्पिक व परपोषी पौधों को हटाना
- पीले स्टिकी ट्रैप का प्रयोग (10 ट्रैप प्रति हेक्टेयर)
- कीट नियंत्रण हेतु इमिडाक्लोप्रिड 17.8 प्रतिशत एस.एल. 1–1.5 मि.ली. प्रति 3 लीटर पानी की दर से छिड़काव

फलियों की तुड़ाई

- फलियों को कोमल अवस्था में 6–8 सेमी लंबाई पर तोड़ लेना चाहिए।
- किस्म के अनुसार पहली तुड़ाई 40–45 दिन में हो जाती है।
- इसके बाद 2–3 दिन के अंतराल पर नियमित तुड़ाई करनी चाहिए, जिससे उत्पादन निरंतर बना रहता है।

उपज

ग्रीष्मकालीन फसल : 90–110 क्विंटल प्रति हेक्टेयर

वर्षाकालीन फसल : 100–140 क्विंटल प्रति हेक्टेय

तालिका 2: भिंडी में लगने वाले प्रमुख रोग, लक्षण एवं उनका नियंत्रण

क्रमांक सं.	रोग का नाम	रोग लक्षण	नियंत्रण
(i)	येलो वेन मोजेक रोग	(i) पत्तियों की नसें पीली पड़ने लगती हैं। (ii) पूरी पत्तियाँ एवं फल पीले पड़ जाते हैं। (iii) पौधे की बढ़वार रुक जाती है। (iv) यह रोग सफेद मक्खी द्वारा फैलता है। (v) इस रोग से प्रभावित फसल में लगभग 50 – 90 : हानि होती है। (vi) इस रोग से प्रभावित फसल में लगभग 50 – 90 : हानि होती है।	**(i) इमिडाक्लोप्रिड (17.8% एसएल)** : 05 मिलीलीटर प्रति 15 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।
(ii)	छाछिया/आर्मी वॉर्म	(i) इस रोग में भिंडी की प्रारंभिक पत्तियों पर सफेद–छोटे गहरे धब्बे पड़ने लगते हैं। (ii) यह पत्तियों, तनों और यहाँ तक कि फलियों को भी हानि पहुँचाता है।	**(i) डाइथेन (एम–45)** : इस रोग के नियंत्रण हेतु दवा 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। अथवा मेलाथियान (50: ईसी.): 1.5 एमएल प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

तालिका नंबर–2: भिंडी में लगने वाले प्रमुख रोग, लक्षण एवं उनका नियंत्रण

क्रमांक सं.	कीट का नाम	रोग लक्षण	नियंत्रण
(i)	फली एवं फल छेदक	(i) यह कीट फली तथा फल में छेद कर अंडे देता है। (ii) प्रारंभिक अवस्था में इल्ली कोमल भागों में छेद कर देती है, जिससे फसल खराब हो जाती है। फलों पर इसके आक्रमण से फल काले पड़ने लगते हैं, और फूल झड़ जाते हैं।	**(i) प्रोफेनोफास (50: ईसी.)**: 2.5 मिलीलीटर मात्रा प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।
(ii)	हरा तेला एवं सफेद मक्खी	(i) यह कीट पत्तियों, कोमल तनों एवं फलों से रस चूसकर नुकसान पहुँचाता है।	**(i) इमिडाक्लोप्रिड (17.8: एसएल)**: 05 मिलीलीटर मात्रा 15 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

क्रमांक सं.	कीट का नाम	रोग लक्षण	नियंत्रण
(iii)	रेड स्पाइडर माइट	(i) यह माइट पौधों की पत्तियों को चूसता है। (ii) यह कीट भारी संख्या में कॉलोनियाँ बनाकर रहता है। (iii) यह अपने मुखांग से पत्तियों की कोशिकाओं में छेद करता है।	**(i) फेनाजाक्विन (10 प्रतिशत ईसी):** प्रति लीटर पानी में 10 मिलीलीटर मिलाकर छिड़काव करें। **(ii) वेटेबल सल्फरः** का 2.5 मिली लीटर प्रति लीटर पानी मे मिलाकर छिड़काव करें।

तालिका 4: ग्रीष्मकालीन भिंडी की फसल में लागत एवं कमाई

क्रमांक सं.	पैरामीटर	प्रति हेक्टेयर	रुपये
1.	खेती की लागत	**1. भूमि की तैयारी :**	
		(i) 2 बार हैरो से जुताई	(i) 1250×2 = 2500/–
		(ii) 1 बार टिलर से जुताई एवं पाटा	(ii) 1250×1 = 1250/–
		2. बीज : (09 किग्रा)	3500×9 = 31500/–
		3. खाद : (एफ.वाई.एम 500रु/टन)	500×20 = 10000/–
		4. उर्वरक :	
		(i) डी.ए.पी. (3 बैग प्रति 50 किग्रा)	(i) 1350×3 = 4050/–
		(ii) यूरिया (5 बैग प्रति 45 किग्रा)	(ii) 280×5 = 1400/–
		(iii) पोटाश (2 बैग प्रति 50 किग्रा)	(iii) 1700×2 = 3400/–
		5. बुवाई :	1500×1 = 1500/–
		6. पेस्टिसाइडः (2 बार छिड़काव 1 महीने में)	1000×8 = 8000/–
		7. सिंचाई (15–16)	625×15 = 9375/–
		8. निराई–गुड़ाई (3 बार)	3000×3 = 9000/–
		9. तुड़ाई (64 = 4 महीने में 16 दौर)	64×250 = 16000/–
		10. ट्रांसपोर्ट	300×64 = 19200/–
		***कुल निवेश**	= **1,17,175/–**
2.	सकल रिटर्न(रु)	1. औसत उपज (किग्रा)	10000
		2. औसत रेट /30 रु प्रति किग्रा	10000×30 = 3,00,000/–
3.	शुद्ध रिटर्न(रु)	300000 रु – 1,17,175 रु	= **1,82,825/–**

तालिका 5: वर्षाकालीन भिंडी की फसल में लागत एवं कमाई

क्रमांक सं.	पैरामीटर	प्रति हेक्टेयर	रुपये	
1.	खेती की लागत	1. भूमि की तैयारी :		
		(i) 2 बार हैरो से जुताई	(i) 1250×2	= 2500/–
		(ii) 1 बार टिलर से जुताई एवं पाटा	(ii) 1250×1	= 1250/–
		2. बीज : (07 किग्रा)	3500×7	= 24,500/–
		3. खाद : (एफ.वाई.एम 500रु/टन)	500×20	= 10000/–
		4. उर्वरक :		
		(i) डी.ए.पी. (3 बैग प्रति 50 किग्रा)	(i) 1350×3	= 4050/–
		(ii) यूरिया (5 बैग प्रति 45 किग्रा)	(ii) 280×5	= 1400/–
		(iii) पोटाश (2 बैग प्रति 50 किग्रा)	(iii) 1700×2	= 3400/–
		5. बुवाई :	1500×1	= 1500/–
		6. पेस्टिसाइडः (2 बार छिड़काव 1 महीने में)	1000×8	= 8000/–
		7. सिंचाई (10–12)	625×12	= 7500/–
		8. निराई–गुड़ाई (4 बार)	3000×4	= 12000/–
		9. तुड़ाई (64 = 4 महीने में 16 दौर)	64×250	= 16000/–
		10. ट्रांसपोर्ट	300×64	= 19200/–
		* कुल निवेश		= 1,11,300/–
2.	सकल रिटर्न(रु)	1. औसत उपज (किग्रा)	12000	
		2. औसत रेट 25 रु प्रति किग्रा	12000×25	= 3,00,000/–
3.	शुद्ध रिटर्न(रु)	300000 रु – 1,11,300 रु	= 1,88,700/–	

निष्कर्ष

भिंडी एक अल्प अवधि की फसल है। यह अधिक लाभ देने वाली और आसानी से उगाई जाने वाली महत्वपूर्ण सब्जी की फसल है। यह गर्म एवं आर्द्र जलवायु में अच्छी होती है और विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में उगाई जा सकती है, हालांकि बलुई दोमट मिट्टी इसके लिए सर्वाधिक उपयुक्त मानी जाती है।उचित प्रबंधन अपनाने पर भिंडी की खेती से किसानों को अच्छी आय प्राप्त हो सकती है। एक हेक्टेयर क्षेत्र में वर्षाकालीन एवं ग्रीष्मकालीन भिंडी की खेती की लागत क्रमशः लगभग 1.11 लाख और 1.17 लाख रुपये आती है, जबकि अनुकूल बाजार स्थिति में इससे 1.83–1.89 लाख रुपये प्रति हेक्टेयर तक की शुद्ध आय प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार भिंडी एनसीआर क्षेत्र के किसानों के लिए एक अत्यंत लाभकारी और सुरक्षित विकल्प सिद्ध होती है।र

समाप्त

14

पूजा[1], रविंदर कुमार[1], अश्वनी कुमार[2], सुनिता देवी[2], श्रुति कौशिक[2]* एवं मिन्टु राम मीणा[1]
[1]भा.कृ.अनु.प.–गन्ना प्रजनन संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्र, करनाल–132001 (हरियाणा)
[2]भा.कृ.अनु.स.–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail: shrutikaushik22@gmail.com

गुड़ बनाने की कला और विज्ञानः एक समीक्षा

गन्ना (*सैकेरम ऑफ़िसिनारम*) व्यापक रूप से एक नकदी फसल है जो दुनिया भर में वाणिज्यिक फसल के रूप में उगाया जाता है। चीनी के अलावा गन्ने का उपयोग गुड़ और खांडसारी उत्पादन के लिए भी किया जाता है। गन्ना, चीनी उधोग का प्रमुख स्रोत है जो भारत में लगभग 5.15 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में इसकी खेती की जाती है जिसमे लगभग 383 मिलियन टन का उत्पादन होता है। चीनी उद्योग, भारत में कृषि पर आधारित दूसरा सबसे बड़ा उद्योग हैं जो लगभग 12.34 मिलियन लोगों, लाखों किसान और खेत के मजदूर की आजीविका चलाता हैं। ये चीनी की कुल आवश्यकता का लगभग 40 प्रतिशत पूर्ति कर रहा है साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में 25 लाख लोगों को रोजगार दे रहा हैं। गुड़ एक कच्चा, गैर–केन्द्र पसारक साबुत गन्ना की चीनी है जो दुनिया भर में उपयोग किया जाता है। यह एक पारंपरिक भारतीय स्वीटनर है जो आधुनिक चीनी के आगमन और चीनी बनाने की तकनीक से बहुत पहले भारत में उपयोग किया जाता था। गुड़ का रंग अलग–अलग होता है जोकि सुनहरा भूरा से गहरा भूरे रंग का मुख्यतय हैं लेकिन बाजार के दृष्टिकोण से हल्के सुनहरे रंग का गुड़ बहुत लोकप्रिय है। गुड़ खनिज और विटामिन का समृद्ध मिश्रण है जो इसे स्वास्थ्यप्रद बनाता हैं। गुड़ में खनिज तत्व, परिष्कृत चीनी से लगभग 50 गुना और भूरे रंग की चीनी (ब्राउन शुगर) से 5 गुना अधिक होते है। गुड़ ऊर्जा (383 किलो कैलोरी / 100 ग्राम) का एक अच्छा स्रोत है और इसमें विभिन्न औषधीय गुण भी हैं।

परिदृश्य

भारत अब चीनी के उत्पादन का सबसे बड़ा उत्पादक और उपभोक्ता बन गया है जोकि 33 एमएमटी तक पहुंच गया है (2018–19)। भारत में गुड़ सबसे लोकप्रिय पारंपरिक भारतीय मिठाई (स्वीटनर) है जो गन्ने के रस के गाढ़े घोल से शीरे को अलग किये बिना उत्पादित किया जाता है। यह खनिजों और पोषक तत्वों का एक अच्छा स्रोत है और इसमें कई औषधीय गुण भी हैं। इसकी बढ़ती मांग के साथ–साथ इसके मानक विनिर्माण पैकेज को विकसित किया जा रहा है जिससे इसकी उत्पादकता भी बढ़ेगी और स्वच्छता, आकार और भंडारण क्षमता के मानकीकरण के संदर्भ में गुणवत्ता में सुधार भी किया जायेगा। कारखाने की तापीय और समग्र क्षमताएँ, फ्लू गैस के माध्यम से थर्मल ऊर्जा के नुकसान और निर्माण के गैर–डिज़ाइन संयंत्र मापदंडों के कारण गुड़ का उत्पादन बहुत कम है। गुड़ का संग्रहण करना भी एक बड़ी समस्या है, चूंकि इनवर्ट शर्करा और खनिज लवण जो प्रकृति में आर्द्रताग्राही है, जिसकी वजह से गुड़ की गुणवत्ता भी बहुत प्रभावित होती है। इस समीक्षा का उद्देश्य गुड़ के उत्पादन और संरक्षण के लिए उपयोग किए जाने वाले तकनीकी उन्नयन का अध्ययन करना और गुड़ और विभिन्न भंडारण, पैकेजिंग विधियों का उपयोग करके गुड़ के संरक्षण की जानकारी प्रदान करना है।

दुनिया भर में भारत गुड़ के व्यापारी और निर्यातक के रूप में आगे है। उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र प्रमुख चीनी उत्पादक राज्य हैं। उत्तर प्रदेश गन्ना उत्पादन में सबसे बड़ा राज्य बन गया है। उत्तर प्रदेश का देश के कुल गन्ना उत्पादन में 42–44 प्रतिशत योगदान है। उत्तर प्रदेश लगभग 107.19 लाख टन उत्पादन के साथ सबसे बड़ा चीनी उत्पादक राज्य बन गया है जो सूची में शीर्ष पर है। यह अनुमान लगाया गया था कि भारत में कुल गन्ने का लगभग 50 प्रतिशत हिस्सा (लगभग 8–10 मिलियन टन) गुड़ के विनिर्माण में उपयोग लिए किया गया है। पिछले कुछ वर्षों के दौरान भारत ने 300 मिलियन टन से अधिक गन्ना उत्पादन किया है, जिसमें से लगभग 79.91 प्रतिशत सफेद चीनी के उत्पादन में उपयोग किया जाता है 11.29 प्रतिशत गुड़ और खांडसारी उत्पादन में, 8.80 प्रतिशत गन्ने के रस के रूप में और गन्ने के बीज के लिए जोकि अगली फसल के लिए इस्तेमाल होता है। भारत के विभिन्न राज्यों के लिए गन्ने से चीनी की रिकवरी 8.89 से 11.26 प्रतिशत तक सिमित है,

जबकि, गुड़ की रिकवरी 10–13 प्रतिशत तक होती है जोकि गन्ने की किस्म, गन्ने की गुणवत्ता, मिट्टी की बनावट, सिंचाई सुविधाएं, गन्ना पेराई का समय आदि के आधार पर होती है। गुड़ की घरेलू और विदेशी बाजार में बहुत मांग है।

गुड़ की पोषण स्थिति एवं महत्व

गुड़ जोकि गन्ने का एक ऐसा उत्पाद है जो महत्वपूर्ण खनिजों से भरपूर है जैसे की प्रति 100 ग्राम गुड में 70–90 मिलीग्राम मैग्नीशियम, 10–56 मिलीग्राम पोटैशियम, 20–90 मिलीग्राम फॉस्फोरस, 19–30 मिलीग्राम सोडियम, 10–13 मिलीग्राम आयरन, 0.2–0.5 मिलीग्राम मैंगनीज, 0.2–0.4 मिलीग्राम जिंक, 0.1–0.9 मिलीग्राम तांबा और 5.3 मिलीग्राम क्लोराइड होता है। विटामिन (जैसे, विटामिन ए–3.8 मिलीग्राम, विटामिन बी1–0.01 मिलीग्राम, विटामिन बी2–0.06 मिलीग्राम, विटामिन बी5–0.01 मिलीग्राम, विटामिन बी6–0.01 मिलीग्राम, विटामिन सी–7.00 मिलीग्राम, विटामिन डी2–6.50 मिलीग्राम, विटामिन ई–111.30 मिलीग्राम) और प्रोटीन 280 मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम गुड़ में उपलब्ध हैं जोकि कुपोषण और अल्पपोषण को दूर करता है। गुड़ में सूक्ष्म पोषक तत्व जिसमे एंटीटॉक्सिक और एंटी–कैंसर मौजूद हैं (नाथ एट अल. 2015)। गुड़ में मौजूद मैग्निशियम तंत्रिका तंत्र को मजबूत करता है, मांसपेशियों को आराम देने में मदद करता है, राहत देता है, थकान से बचाता है और हमारी रक्त वाहिकाओं की देखभाल करता है। गुड़ में पोटैशियम और सोडियम की कम मात्रा मौजूद होती है जोकि शरीर की कोशिकाओं में एसिड संतुलन बनाए रखता है और एसिड और एसीटोन को कम करके हमारे रक्तचाप को नियंत्रित करते हैं। गुड़ में मौजूद आयरन एनीमिया को रोकने में मदद करता है। यह तनाव और अस्थमा को दूर करने में भी मदद करता है, क्योंकि इसमें एंटी–एलर्जी गुण होते हैं। इसमें मौजूद कैल्शियम, फॉस्फोरस और जिंक की मध्यम मात्रा सर्वोत्तम स्वास्थ्य बनाए रखने में मदद करती है.

गुड़ के विभिन्न रूप

गुड़ मूल रूप से तीन रूपों में उपलब्ध होता है, ठोस (गांठदार), तरल एवं दानेदार गुड़। इसमें से 80 प्रतिशत ठोस गांठ के रूप में होता है जबकि शेष 20 प्रतिशत तरल और दानेदार गुड़ के रूप में होता है। इन रूपों की संरचना तालिका 1 में दी गई है।

ठोस गुड़

ठोस गुड़ बनाने के लिए गन्ने के रस को 116 से लेकर 120 डिग्री सेल्सियस पर भिन्न–भिन्न तापमान पर उबाला जाता है एवं शुद्ध किया जाता है और फिर अलग–अलग आकार और माप के सांचों में भरा जाता है। ठोस गुड़ में नमी की मात्रा भारतीय मानक ब्यूरो के अनुसार 5.0 प्रतिशत और 7.0 प्रतिशत के बीच होती है। तरल गुड़ अर्ध तरल सिरप है जोकि गन्ने के रस को विशेष बिंदु से नीचे के तापमान 105 से 108 डिग्री सेल्सियस तक उबालने से बनता है। तरल गुड़ में 30–36 प्रतिशत पानी, 40–46 प्रतिशत सुक्रोज, 15–25 प्रतिशत चीनी और 0.30 प्रतिशत कैल्शियम होता है।

तरल गुड़

गुड़ बनाते समय शुद्ध किये गये गन्ने के रस को सांद्रण किया जाता है जिससे एक मध्यवर्ती उत्पाद मिलता है जिसको तरल गुड़ बोलते है जोकि अर्द्ध तरल सिरप जैसा उत्पाद होता है। तरल गुड़ की गुणवत्ता काफी हद तक गन्ने के रस की गुणवत्ता, प्रकार, संरचना, स्पष्टीकरण के लिए उपयोग किए गए रासायनिक और जिस तापमान पर सान्द्रित रस एकत्र किया जाता है आदि पर निर्भर करती है। जब गन्ने का रस 103–106 डिग्री सेल्सियस तापमान तक पहुंचता है तब उबलते पैन से रस का सांद्रण हटा दिया जाता है ताकि तरल गुड़ की गुणवत्ता बनी रहे, जोकि विविधता और कृषि–जलवायु क्षेत्र पर भी निर्भर करती है। विशिष्ट तरल गुड़ में पानी 30–36 प्रतिशत, सुक्रोज 40–60 प्रतिशत, इनवर्ट शुगर 15–25 प्रतिशत, कैल्शियम 0.30 प्रतिशत तथा आयरन 8.5–10 मिलीग्राम, फॉस्फोरस 05, प्रोटीन 0.10 मिलीग्राम और विटामिन बी 14 मिलीग्राम प्रति 100 मिलीग्राम होते हैं।

दानेदार या पाउडर गुड़

दानेदार गुड़ बनाने की प्रक्रिया भी रस को एकाग्रता बनाने की तरह ही है। दानेदार बनाने के लिए सांद्रित घोल को लकड़ी के खुरच (रगड़ने वाला कड़ा ब्रश) पर रगड़ा जाता है। दानेदार गुड़ को ठंडा करके छान लिया जाता है। गुणवत्ता वाले दानेदार गुड़ के लिए 3 मिमी से कम आकार के बने हुए क्रिस्टल को बेहतर माना जाता हैं। चूने के साथ गन्ने के रस का पीएच 6.0–6.2 तक बढ़ाना और 120 डिग्री सेल्सियस बिंदु तापमान तक बढ़ाने से दानेदार गुड़ की गुणवत्ता बढ़ जाती है जिसमे 88.6 प्रतिशत की उच्च सुक्रोज सामग्री, 1.65 प्रतिशत की कम नमी, अच्छा रंग, भुरभुरापन और क्रिस्टलीयता होती हैं। दानेदार गुड़ (लगभग 3 मिमी तक छना हुआ), धूप में सुखाया हुआ और नमी की मात्रा 2 प्रतिशत से भी कम करके पॉलिएस्टर बैग, बोतलें या पॉलीथीन में पैक किया जाता हैं जोकि अधिक समय (दो वर्ष से अधिक) तक संग्रहीत किया जा सकता हैं। इस तरह के गुड़ में मानसून अवधि के दौरान भी गुणवत्ता में न्यूनतम बदलाव होता है। गुड़ के पाउडर का रंग सुनहरे पीले से लेकर सुनहरा गहरा भूरा तक हो सकता है जोकि डार्क चॉकलेट की तरह हो सकता है। गुड़ के पाउडर का रंग अक्सर बनाने के लिए जो आधार सामग्री इस्तेमाल होती है, उस पर निर्भर करता है। यह चीनी से नरम और आकारहीन भी होता है क्योंकि गन्ने में विटामिन, प्रोटीन और ग्रेडिएंट नहीं निकाला जा सकता है। यह मुख्यतः सुक्रोज, नमक, लोहा और खनिज से बना हुआ हाता है। इसलिए आयरन की कमी से होने वाले एनीमिया के मामले में गुड़ का सेवन करने की सलाह दी जाती है। इसमें सुक्रोज की लंबी श्रृंखला होती है इसलिए यह धीरे–धीरे पचता है और ऊर्जा मुक्त भी धीमा होता है। अतः ऊर्जा लम्बे समय तक प्रदान होती है और यह शरीर के लिए हानिकारक भी नहीं है।

गुड़ निर्माण की पारंपरिक प्रक्रिया

खुली मिट्टी की भट्टी में गुड़ को तैयार करने के लिए यांत्रिक और तापीय ऊर्जा की आवश्यकता होती है। मेकेनिकल ऊर्जा गन्ने का रस निकालने और तापीय ऊर्जा का उपयोग करके गन्ने के रस को गर्म करने और भट्टी में गुड़ तैयार करने के लिए किया जाता है। गन्ने को कुचलने से गन्ने का रस और खोई का उत्पादन होता है। शुरुआती समय में खोई में लगभग 40–50 प्रतिशत नमी की मात्रा होती है। खोई को सुखाकर नमी की मात्रा को 8–10 प्रतिशत तक कम किया जा सकता है फिर सूखी खोई का उपयोग मिट्टी की भट्टी में खुले क्षेत्र में दहन द्वारा ऊष्मा उत्पन्न करने के लिए किया जाता है। यह देखा गया कि दहन प्रक्रिया में उत्पादित लगभग कुल ऊर्जा में से 45 प्रतिशत का उपयोग गुड़ तैयार करने के लिए जाता है। खुली मिट्टी की कड़ाही में गुड़ तैयार करने में तीन विभिन्न चरण शामिल होते हैं।

प्रक्रिया के पहले चरण में गन्ने के रस का तापमान व्यापक से उसके क्वथनांक तक बढ़ाने के लिए ऊष्मा (दहन में उत्पन्न कुल ऊर्जा का लगभग 6 प्रतिशत) की आवश्यकता होता है। इस प्रक्रिया में गन्ने के रस का आवश्यक पीएच बनाए रखने के लिए भिंडी, कैल्शियम कार्बोनेट और फॉस्फोरिक एसिड जैसे योजक (प्रत्येक लगभग 30–50 ग्राम / 100 किलोग्राम गन्ना) डाले जाते हैं। दूसरे चरण में गन्ने के रस से (उबलने का तापमान) संतृप्त अवस्था में पानी निकाला जाता हैं। पानी को भाप में बदलने के लिए ऊष्मा की मात्रा (कुल उत्पादित ऊर्जा का लगभग 39 प्रतिशत) की जरुरत होती है। तैरता हुए अवशेष, जिसे शीरा कहते है, (लगभग 3–5 कि.ग्रा. / 390 कि.ग्रा. गन्ने का रस) इस प्रक्रिया में बनते है जिन्हे सतह से हटाया जाता है। दूसरे चरण के अंत में गन्ने का रस पूरी तरह सांद्रित ठोस पदार्थों में बदल जाता है क्योंकि इससे पानी पूरी तरह से हटा दिया जाता है। गुड़ तैयार करने के अंतिम चरण में ऊष्मा (कुल उत्पादित ऊर्जा का लगभग 0.1 प्रतिशत) का उपयोग क्वथनांक से आघात बिंदु तक तापमान बढ़ाने के

चित्र 1: गुड़ बनाने की प्रक्रिया

लिए किया जाता है जिसे रस अर्ध ठोस में बदल जाता है। तापमान जिस पर गन्ने का रस अर्ध ठोस में परिवर्तित हो जाता है वो अर्ध ठोस पैन पर चिपकने के बजाय तवे की सतह से फिसलता है, इस अवस्था में गन्ने का रस अर्ध–ठोस अवस्था में होता है जिसको पैन से हटा दिया जाता है और कमरे के तापमान तक ठंडा कर दिया जाता है। गुड़ तैयार करने के लिए गुड़ की पारंपरिक प्रक्रिया तैयारी को चित्र 1 में दर्शाया गया है।

गुड़ बनाने की नई प्रौद्योगिकी

जब गुड़ का उत्पादन पारंपरिक प्रक्रिया से किया जाता है तब अनियंत्रित तापन की वजह से गन्ने के रस में पाए जाने वाले एंजाइम और अन्य यौगिक एक दूसरे के साथ प्रतिक्रिया करते हैं जिससे गहरे रंग के कई जटिल यौगिक बन जाते है। दूसरा, तेज़ गर्मी के कारण रस में मौजूद शर्करा कैरामलाइज़ हो जाती है और गहरे रंग के यौगिक बन जाते है। अंततः चूने का अत्यधिक उपयोग और लोहे के तवे से लीचिंग की वजह से भी गन्ने के रस का रंग गहरा हो जाता है। कई गन्ने के उत्पादक कारखाने की आवश्कता की आपूर्ति के बाद बचे हुए और अधिशेष गन्ने का उपयोग ढेर सारा गुड़ बनाने के लिए करते है। इस तरह का गुड़ उत्पादन प्रक्रिया अनुरूप नहीं होता जिससे गुड़ की गुणवत्ता अच्छी नहीं होती है। पारंपरिक प्रौद्योगिकियों के कारण कई गुड़ बनाने वाली ईकाईयां बंद होने के कगार पर हैं, क्योंकि लाभकारी मूल्य की तुलना में गन्ने के इस तरह के गुड़ का कम बाज़ार मूल्य होता है। इस प्रक्रिया में ज्यादा मजदूर भी शामिल होतें है और इसमें लम्बा समय लगता है। पैन में रस के उबलने से हानिकारक रसायन ग्रिप गैस और फ़्लुए गैस निकलती हैं जोकि खतरनाक होती है और श्रमिकों में श्वसन संबंधी समस्याएं पैदा करती है। आधुनिकीकरण के आगमन और परिचय के साथ–साथ नई प्रौद्योगिकियों और बाजार की आवश्यकताओं के अनुरूप चीनी की गुणवत्ता में सुधार हुआ है लेकिन गुड़ का उत्पादन छोटे पैमाने पर अभी भी जारी है जोकि आमतौर पर स्थानीय लोगों के लिए लघु कुटीर उद्योग तक ही सीमित है।

गुड़ बनाने में तकनीकी की प्रगति

गुड़ निर्माताओं द्वारा रस को स्पष्ट करने के लिए चूना, फॉस्फोरिक एसिड और हाइड्रोज़ पाउडर जैसे रसायन का उपयोग किया जाता है। गुड़ में इन रसायनों के अंश मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते है। इस समस्या पर काबू पाने के लिए दो, तीन या चार–पैन का उपयोग किया जा सकता है ताकि गर्म ग्रिप गैसों की तापीय ऊर्जा का अधिकतम उपयोग कर सके। गुड़ की विनिर्माण संयंत्र को और बेहतर बनाने के लिए कई शोध किए जा रहे हैं। शोध अध्ययन में जूस प्री–हीटर्स, ऊर्जा बूस्टर, अर्थशास्त्रियों का उपयोग, गन्ने की जूस का ऊर्जा पंप आधारित फ्रीज एकाग्रता प्रणाली आदि शामिल है। उपरोक्त सभी सुझावों में से ऊर्जा पंप आधारित फ्रीज के साथ मल्टीपल पैन प्लांट का उपयोग गन्ने के रस की सान्द्रता प्रणाली और कुशल गुड़ उत्पादन के लिए आशाजनक दृष्टिकोण को दर्शाती है। इन प्रमुख मुद्दों को ऊर्जा कुशल फ्रीज़ पूर्व एकाग्रता प्रक्रिया द्वारा संबोधित किया जाता है

फ्रीज पूर्व–सांद्रण प्रकिर्या द्वारा गन्ने के रस का उपयोग करके गुड़ बनाना

इस प्रक्रिया में रस सांद्रित करने के लिए रस से पानी को अलग निकालकर बर्फ जमाया जाता है। रस (20 से 40 डिग्री ब्रिक्स) का हिमांक तापमान –1.5 से बदल कर –4.6 डिग्री सेल्सियस तक हो जाता है। इस प्रक्रिया में प्रारंभिक 63 प्रतिशत जल का निष्कासन करके बची हुए खोई को पुनर्चक्रित द्वारा खेत में खाद के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। सांद्रित रस कम तापमान पर प्राप्त हो जाता है। भाप और वनस्पति स्पष्टीकरण के साथ जैकेट युक्त पैन का उपयोग करके इस रस को और अधिक गाढ़ा किया जाता है। कुल मिलाकर, इस गुड़ का रंग गहरे भूरे से सुनहरा पीला हो जाता है जिसका बाजार मूल्य अधिक है। रस को सांद्रित करने के लिए उपयोग किए जाने वाले खुले पैनों की संख्या खोई के उपयोग पर निर्भर करती है। गन्ने की कुछ किस्में चीनी से भरपूर होते हैं जबकि कुछ फाइबर से भरपूर होती हैं। सिंगल पैन गुड़ जिसमे कम फाइबर और उच्च चीनी होती है, उसमे सामग्री के लिए खोई के अलावा अतिरिक्त ईंधन की आवश्यकता होती है। पहले से गरम करना और सान्द्रता की समस्या को पैन की संख्या बढ़ा कर समाधान किया जा सकता है। दो, तीन और चार पैन भट्टियों का

वर्णन साहित्य में मिलता है। यह दर्शाया गया है की पैन की संख्या बढ़ाने से भट्ठी में गर्मी के उपयोग की दक्षता बढ़ती है। गुड़ की गुणवत्ता पर अब भी सवाल उठ रहे हैं क्योंकि रस और गुड़ के रंग को निखारने के लिए रासायनिक स्पष्टीकरणों का उपयोग किया जाता है। जैविक गन्ने की खेती और जैविक गुड़ बनाने के लिए गन्ने के रस को सिर्फ वानस्पतिक स्पष्टीकरण द्वारा तैयार कर इस तरह के गुड़ की भारतीय बाज़ार में भारी संभावना दिखाई देती है जोकि निर्यात के दृष्टिकोण से भी महतवपूर्ण है

गन्ने के रस का कुशल फ्रीज पूर्व–सांद्रण का उपयोग करना एक प्रतिवर्ती ताप पंप द्वारा संपादित किया जाता है। फ्रीज पूर्व–सांद्रण प्रकिर्या के लाभ इस प्रकार हैं:

- कम विशिष्ट बिजली खपत (9 से 11 किलो वाट / मीटर^3 पानी हटाना)
- उत्पादित खोई का 77 प्रतिशत तक बचत किसानों को अतिरिक्त राजस्व देता है
- गुड़ बनाने की इकाई के लिए आवश्यक क्षेत्र में 60 प्रतिशत की कमी
- बिना रसायनों का उपयोग किए गुड़ की गुणवत्ता और गुड़ के रंग में सुधार होता है
- केंद्रित रस को उबालने के लिए आवश्यक पैन के आकार कम होता है
- प्रणाली का संचालन में सौर फोटो वोल्टिक सेलों का उपयोग किया जा सकता है
- स्वचालित संचालन के द्वारा उबलने की प्रक्रिया को संभालने के लिए आवश्यक श्रमिकों की संख्या को भी कम करता है।

भंडारण एवं पैकेजिंग

गुड़ का भंडारण मुख्य रूप से वायुमंडलीय आर्द्रता और तापमान पर निर्भर करता है। गुड़ भंडारण की प्रमुख समस्या इनवर्ट्स शर्करा और खनिज लवण की उपस्थिति की वजह से होती हैं क्योंकि ये पदार्थ प्रकृति में जल संग्रहक होते हैं, विशेष रूप से मानसून के दौरान नमी को अवशोषित करते हैं जिससे गुड़ खराब हो जाता है। भारत में प्रतिवर्ष कुल गुड़ के उत्पादन का 10 प्रतिशत, जिसकी कीमत लगभग 0.6 मिलियन अमेरिकी डॉलर तक होती है, मानसून के मौसम में खराब हो जाता है। अच्छी स्थिरता के लिए, गुड़ में नमी की मात्रा 6 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए और 43–61 प्रतिशत सापेक्ष आर्द्रता पर रखा जाना चाहिए। प्रतिकूल परिस्थितियों में गुड़ का भंडारण इसके संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण योगदान करता है। हर साल गुड़ के कुल उत्पादन का एक तिहाई और उसका आधा हिस्सा भंडारित किया जाता है। गन्ने के रस को नाइट्रिक ऑक्साइड से पूर्व उपचार करने से गुड़ में बेहतर रंग और सुक्रोज की मात्रा में वृद्धि होती है। जिससे गुड़ लम्बे समय तक सुरक्षित रहता है। शोधकर्ताओं ने विभिन्न पारंपरिक और उन्नत तरीके का उपयोग किया है ताकि गुड़ लम्बे समय तक खराब न हो। गुड़ भंडारण जोकि क्षेत्र–दर–क्षेत्र अलग–अलग होता है इसमें आमतौर पर मिट्टी के बर्तन, लकड़ी का बक्सा और धातु के ड्रमों का उपयोग किया जाता है। गुड़ को सांचे में जमा कर रखा जाता है कुछ क्षेत्रों मे गुड़ के ढेर को गन्ने के कूड़े से भरा जाता है। यहां तक खोई, गेहूँ का भूसा, बिनौला, भट्टी की राख, ताड़ की पत्ती, चटाई, चावल की भूसी आदि के इस्तेमाल किया जाता हैं ताकि गुड़ वायु और नमी के सीधे संपर्क में न आए। भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ में गुड़ निर्माण पर और उसकी गुणवत्ता एवं भण्डारण की व्यवस्था की चर्चा की गई। तैयार गुड़ को आठ महीने तक कम तापमान (7–9 डिग्री सेल्सियस) तापमान पर रख कर गुड़ को बिना किसी परिवर्तन के 20 महीने की अवधि तक भंडारित किया जा सकता है। गुड़ भंडारण के दौरान अत्यधिक सूक्ष्मजीवी वृद्धि मानव शरीर के लिए बहुत हानिकारक हैं। गुड़ के कणों का आकार–प्रकार गुड़ पाउडर के भंडारण को भी प्रभावित करता है। इसके रासायनिक गुणों और ऑर्गेनोलेप्टिक के संदर्भ में गुड़ को छह महीने की अवधि के लिए 100 गेज पॉलीथीन बैग में रखने के लिए मध्यम (0.351–0.420 मिमी) और महीन (0.211–0.296 मिमी) गुड़ पाउडर के कण से मोटे श्रेणी के कण (0.5–0.708 मिमी) को अधिक उपयुक्त पाया गया हैं। गुड़ को सुखाने के लिए

एक उन्नत सह–भंडारण बिन (100 किलोग्राम क्षमता) और छह टन क्षमता का गोदाम भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान द्वारा बनाए गए है, जो लगभग भारत के सभी क्षेत्र के लिए उपयुक्त है। गुड़ सह–भण्डार के बिन जो छह महीने की अवधि के लिए भंडारण के दौरान गुणवत्ता विशेषताओं में होने वाले परिवर्तन जैसे की नमी की मात्रा, रंग, सुक्रोज और चीनी में कमी आदि खुले पैन और पॉलीथीन बैग की तुलना में अधिक सफल पाया गया है। पहाड़ी जलवायु परिस्थितियों में भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान द्वारा निर्मित बिन में गुड़ का भंडारण पॉलिथीन बैग और खुला भंडारण की तुलना में अधिक प्रभावी पाया गया। जूट बैग की तुलना में, 100 प्रतिशत नाइट्रोजन वाली पीईटी फिल्म गुड़ को अधिक समय तक संरक्षित रख सकती है। जिस गुड़ को मट्ठा प्रोटीन के आवरण के साथ सुखाकर सह भंडारण बिन में रखा जाता हैं वो बिना आवरण के गुड़ की तुलना में अच्छा पाया गया। कार्बोक्सी मिथाइल सेलूलोज़ और मट्ठा प्रोटीन का उपयोग, गुड़ की नमी की मात्रा को बनाए रखने और गुड़ के भंडारण के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।

निष्कर्ष

गुड़ के उत्पादन संयंत्रों की तापीय और समग्र क्षमताएँ बहुत सीमित हैं। गुड़ बनाने वाले संयंत्रों के डिजाइन और निर्माण विनिर्देश संयंत्र, खोई का दहन, गर्म ग्रिप गैस थर्मल का उपयोग, भट्टी द्वारा उत्पादित ऊर्जा आदि प्रमुख कारक है जिन पर उचित ध्यान देने की आवश्यकता है। इस समस्या को हल करने के लिए, दो–पैन, तीन–पैन और चार–पैन संयंत्रों का उपयोग इष्टतम तापमान के साथ गर्म ग्रिप गैसों को अवशोषित करने के लिए किया जा सकता है। तापीय क्षमता मल्टी–पैन संयंत्रों का उपयोग जोकि गर्मी के साथ, पंप आधारित फ्रीज सांद्रण प्रणाली द्वारा गुड़ के कुशल उत्पादन के लिए अच्छा तरीका माना गया है। गुड़ की गुणवत्ता बनाये रखने के लिए गुड़ का भंडारण भी एक बड़ी चिंता का विषय है। पारंपरिक गुड़ का भंडारण जो मिट्टी के बर्तन, लकड़ी के बक्से और धातु के ड्रम में किया जाता था सफल नहीं हैं। गुड़ की गुणवत्ता बनाये रखने के लिए खाद्य कोटिंग, पीईटी फिल्म, सुखाने सह–भंडारण बिन, कम तापमान भंडारण, 100 प्रतिशत नाइट्रोजन में पैकेजिंग आदि सामग्री का उपयोग किया जा सकता है। सभी पर्यावरणीय परिस्थितियों में गुड़ की स्थिरता को लंबे समय तक बनाए रखने के लिए ऊष्मा का उपयोग, रस को पहले से गर्म करना, फ्रीज का उपयोग करनी की एकाग्रता तकनीक, विभिन्न प्रक्रियाओं को स्वचालित करना आदि दक्षता में सुधार हुआ हैं।

समाप्त

15

पूजा[1], अश्वनी कुमार[2], आरजू शर्मा[2], रविंदर कुमार[1], मनीष कुमार[2] एवं श्रुति कौशिक[2]
[1]भा.कृ.अनु.प.–गन्ना प्रजनन संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्र, करनाल – 132001 (हरियाणा)
[2]भा.कृ.अनु.स.–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल – 132001 (हरियाणा)
E-mail: poojadjhansu@gmail.com

गन्ने के मुख्य उप–उत्पादः कृषि में उपयोग और महत्व

गन्ना एक महत्वपूर्ण बारहमासी फसल है, जिसकी खेती मुख्यतः उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में चीनी के औद्योगिक उत्पादन के लिए की जाती है। भारत में गन्ने की खेती प्राचीन काल से की जाती रही है और इसका उल्लेख सिंधु घाटी सभ्यता के समय से मिलता है। सामान्यतः उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों की तुलना में उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में गन्ने की उत्पादकता अधिक पाई जाती है। भारत के उपोष्णकटिबंधीय गन्ना उत्पादक क्षेत्रों में बिहार, झारखंड, हरियाणा, पश्चिम बंगाल, पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश एवं उत्तराखंड शामिल हैं, जबकि उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में आंध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, गोवा, गुजरात, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, ओडिशा, पुडुचेरी एवं तमिलनाडु प्रमुख राज्य हैं। गन्ना लंबी अवधि की फसल होने के कारण अधिक बायोमास का उत्पादन करता है तथा बड़ी मात्रा में जल, पोषक तत्व, कार्बन डाइऑक्साइड और सौर ऊर्जा का उपयोग करता है।

गन्ना चीनी एवं इथेनॉल उत्पादन के लिए एक सस्ता, समृद्ध और नवीकरणीय स्रोत है। इसके अतिरिक्त गन्ने से भोजन (चीनी, गुड़, सिरप), फाइबर (सेलूलोज), रसायन, पशु चारा (हरा शीर्ष, पत्तियाँ, खोई, गुड़) तथा ईंधन जैसे अनेक उपयोगी उत्पाद प्राप्त होते हैं। यही कारण है कि गन्ना किसानों, उद्योगों, शोधकर्ताओं एवं नीति–निर्माताओं के लिए व्यापक संभावनाओं वाला फसल तंत्र बन चुका है। चीनी प्रसंस्करण एवं अल्कोहल उत्पादन के दौरान मुख्य रूप से चार प्रकार के उप–उत्पाद उत्पन्न होते हैं–प्रेसमड, खोई (बैगास), गुड़/मोलासिस, और डिस्टिलरी अपशिष्ट (स्पेंट वॉश)। वर्तमान में चीनी मिलों से प्राप्त अधिकांश सह–उत्पादों का उपयोग ऊर्जा उत्पादन, जैव–उर्वरक, चारा एवं औद्योगिक कच्चे माल के रूप में किया जा रहा है, जिससे एक ओर ऊर्जा आवश्यकताओं की पूर्ति होती है और दूसरी ओर किसानों की आय में वृद्धि होती है। हाल के वर्षों में चीनी, गुड़ और खोई ने भारतीय चीनी उद्योग में उल्लेखनीय मूल्य संवर्धन किया है, जबकि कुछ अन्य सह–उत्पादों का व्यावसायिक उपयोग अभी अपेक्षाकृत कम है।

भारत में गन्ने का आर्थिक महत्व

भारत में गन्ने की खेती लगभग 50 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में की जाती है, जो कुल कृषि क्षेत्र का मात्र 3–4 प्रतिशत है, फिर भी फसल उप–क्षेत्र की कृषि जीडीपी में इसका योगदान 40 प्रतिशत से अधिक है। यह तथ्य भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था में गन्ने के असाधारण महत्व को दर्शाता है। ब्राजील के बाद भारत विश्व का दूसरा सबसे बड़ा गन्ना उत्पादक देश है, जबकि चीनी उत्पादन में भारत प्रथम स्थान पर है और विश्व में चीनी का सबसे बड़ा उपभोक्ता भी है। देश में अधिकांश चीनी मिलें ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित होने के कारण गन्ना खेती और चीनी उद्योग ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह क्षेत्र प्रत्यक्ष रूप से लगभग 5 करोड़ गन्ना किसानों और श्रमिकों को तथा अप्रत्यक्ष रूप से 10 करोड़ से अधिक लोगों को रोजगार एवं आजीविका सुरक्षा प्रदान करता है।

गन्ना उद्योग की विशेषता यह है कि इससे 150 से अधिक प्रकार के सह–उत्पाद एवं उप–उत्पाद प्राप्त होते हैं। यद्यपि वर्तमान वैज्ञानिक एवं बाजार परिस्थितियों में सभी उप–उत्पादों का आर्थिक महत्व समान नहीं है, फिर भी केवल चीनी उत्पादन पर निर्भर रहने के बजाय सह–उत्पादों और उप–उत्पादों के विविधीकरण एवं मूल्यवर्धन के माध्यम से नए उद्योगों के विकास की व्यापक संभावनाएँ मौजूद हैं। खोई, गुड़ और प्रेसमड गन्ने के प्रमुख उप–उत्पाद हैं, जबकि हरी पत्तियाँ, खेतों का कचरा, बॉयलर की राख तथा चीनी एवं आसवनी इकाइयों से निकलने वाला अपशिष्ट अपेक्षाकृत कम मूल्य वाले सह–उत्पाद हैं (चित्र 1)। इन सभी का वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक उपयोग गन्ना आधारित कृषि प्रणाली को अधिक टिकाऊ, लाभकारी और पर्यावरण–अनुकूल बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

चित्र 1: गन्ने के मुख्य उप–उत्पादों

गन्नाः एक बहुउपयोगी फसल

गन्ना लंबी अवधि की फसल है, जो अधिक जैव–द्रव्यमान उत्पन्न करती है। यह बड़ी मात्रा में जल, पोषक तत्व, कार्बन डाइऑक्साइड और सौर ऊर्जा का उपयोग करती है। गन्ने से प्राप्त उत्पादों को मोटे तौर पर पाँच वर्गों में बाँटा जा सकता हैः

- **खाद्य** : चीनी, गुड़, सिरप
- **फाइबर** : खोई (बैगास)
- **रसायन एवं ऊर्जा** : एथेनॉल, अल्कोहल
- **पशु आहार** : हरी पत्तियाँ, खोई, गुड़
- **जैव–ऊर्जा एवं औद्योगिक कच्चा माल**

गन्ना उद्योग के प्रमुख उप–उत्पादः

गन्ने के प्रसंस्करण से मुख्यतः चार प्रकार के उप–उत्पाद प्राप्त होते हैं–

1. **प्रेसमड (फिल्टर केक / गन्ने का जैविक अपशिष्ट)**
2. **खोई (बैगास)**

3. **गुड़/मोलासिस**

4. **डिस्टिलरी अपशिष्ट (स्पेंट वॉश)**

इन उप–उत्पादों का वैज्ञानिक और संतुलित उपयोग किसानों की आय बढ़ाने के साथ–साथ पर्यावरण संरक्षण में भी सहायक है।

1. प्रेसमड (फिल्टर केक): जैविक खाद का महत्वपूर्ण स्रोत

चीनी उत्पादन की प्रक्रिया के दौरान प्रेस मड, जिसे फिल्टर केक या प्रेस केक भी कहा जाता है, एक महत्वपूर्ण जैविक उप–उत्पाद है। यह गन्ने के रस के शोधन (कार्बोनेशन या सल्फिटेशन) के समय प्राप्त होता है, जब साफ रस ऊपर अलग हो जाता है और नीचे मिट्टी, कार्बनिक पदार्थ एवं अशुद्धियाँ जमा हो जाती हैं। सामान्यतः 100 टन गन्ने की पेराई से लगभग 3–5 टन प्रेस मड का उत्पादन होता है। यह नरम, स्पंजी, अनाकार तथा गहरे भूरे से काले रंग का पदार्थ होता है, जिसमें नमी की मात्रा अधिक होती है।

वर्तमान में प्रेस मड को प्रायः चीनी मिलों का अपशिष्ट माना जाता है और इसे मिल परिसरों के आसपास ढेर कर दिया जाता है, जिससे भंडारण, दुर्गंध और पर्यावरण प्रदूषण जैसी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। जबकि वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाए तो प्रेस मड एक मूल्यवान जैविक संसाधन है, जिसे उचित प्रबंधन और उपचार के बाद कृषि में प्रभावी रूप से उपयोग किया जा सकता है। इसमें लगभग 45–65 प्रतिशत नमी, 20–30 प्रतिशत फाइबर, 5–12 प्रतिशत चीनी, 5–10 प्रतिशत कच्चा प्रोटीन तथा 2–2.5 प्रतिशत नाइट्रोजन पाई जाती है। इसके अतिरिक्त इसमें कैल्शियम, मैग्नीशियम, फॉस्फोरस, आयरन, मैंगनीज और सिलिकॉन जैसे सूक्ष्म एवं द्वितीयक पोषक तत्व भी प्रचुर मात्रा में उपस्थित होते हैं।

तालिका 1: प्रेसमड के अवयव (श्योराण एट अल., 2020)

क्रम संख्या	अवयव	मात्रा
1.	पी. एच.	5.2 ± 0.08 ±
2.	ईसी$_2$ (डेसी साइमन प्रति मीटर)	1.1 ± 0.06
3.	नमी	48.8 ±1.5 प्रतिशत
4.	कार्बन (प्रतिशत)	30.7 ± 1.1 प्रतिशत

क्रम संख्या	अवयव	मात्रा
5.	नाइट्रोजन (प्रतिशत)	2.31 ± 0.5 प्रतिशत
6.	सल्फर (प्रतिशत)	1.44 ± 0.07 प्रतिशत
7.	कैल्शियम (प्रतिशत)	2.17 ± 0.05 प्रतिशत
8.	मैग्नीशियम (प्रतिशत)	1.08 ± 0.03 प्रतिशत

प्रेस मड कम्पोस्ट के कृषि में अनूठे लाभः

प्रेस मड को मिट्टी की उपजा शक्ति बढाने में उपयोग किया जा सकता हैं। प्रेसमड का उपयोग कंपोस्ट बनाकर या जैव–उर्वरकों के साथ मिलाकर करना अधिक लाभकारी होता है। इससे मिट्टी में कार्बनिक कार्बन की मात्रा बढ़ती है और दीर्घकालीन मृदा स्वास्थ्य सुनिश्चित होता है। इसके निम्नलिखित फायदे पाए गए हैं।

1. मिट्टी के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों में सुधार करता है।
2. मिट्टी की संरचना और जल – धारण क्षमता में सुधार होता है।
3. सूक्ष्मजीवों की सक्रियता बढ़ाकर पोषक तत्वों की उपलब्धता करता है। इसमें पौधों के विकास के लिए आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्व (कैल्शियम, सल्फर, मैग्नीशियम, लौह, आदि) और मैक्रो पोषक तत्व (नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश) दोनों शामिल हैं।
4. क्षारीय और लवणीय–क्षारीय मिट्टी में सुधार करता है।
5. फसल की उपज और गुणवत्ता में वृद्धि करता है।
6. मिट्टी की संरचना में सुधार करके जड़ों के विकास में मदद करता है।

प्रेस मड की उच्च नमी और कार्बनिक पदार्थ की मात्रा मिट्टी में सूक्ष्मजीवों एवं केंचुओं की गतिविधि के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करती है। इसका उपयोग कम्पोस्ट या आंशिक रूप से अपघटित अवस्था में करने से मिट्टी के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में उल्लेखनीय सुधार होता है। यह मिट्टी की संरचना, जल धारण क्षमता और वायु परिसंचरण को बेहतर बनाता है, साथ ही पोषक तत्वों को लीचिंग से बचाकर पौधों को उपलब्ध कराता है। प्रेस मड में उपस्थित कैल्शियम सल्फाइट एवं कैल्शियम फॉस्फेट क्षारीय एवं लवणीय–क्षारीय मिट्टियों के सुधार में विशेष रूप से सहायक होते हैं। अकार्बनिक उर्वरकों के साथ प्रेस मड के एकीकृत उपयोग से गन्ने की उपज, शुष्क पदार्थ तथा चीनी की मात्रा में वृद्धि देखी गई है। इसके निरंतर प्रयोग से मिट्टी की केटायन एक्सचेंज क्षमता (सीईसी) बढ़ती है और इसका अवशिष्ट प्रभाव कई वर्षों तक बना रहता है। भारत में पशुधन की संख्या में कमी के कारण गोबर की खाद की उपलब्धता घट रही है, ऐसे में प्रेस मड एक प्रभावी वैकल्पिक जैविक खाद के रूप में उभर रहा है।

हालाँकि, कच्चे प्रेस मड का सीधे खेत में उपयोग उच्च बायोकेमिकल ऑक्सीजन डिमांड (बीओडी) और रासायनिक ऑक्सीजन डिमांड (सीओडी) के कारण फसलों को नुकसान पहुँचा सकता है। अतः इसका कम्पोस्टिंग, वर्मी–कम्पोस्टिंग या बायोगैस उत्पादन के बाद उपयोग अधिक उपयुक्त माना जाता है। बायोगैस उत्पादन के बाद बचा स्लरी पदार्थ उच्च गुणवत्ता की जैविक खाद के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, प्रेस मड का सीमित उपयोग निर्माण उद्योग, चूना निर्माण तथा कुछ औद्योगिक उत्पादों में भी किया जाता है। इस प्रकार, प्रेस मड का वैज्ञानिक एवं विवेकपूर्ण उपयोग न केवल अपशिष्ट प्रबंधन की समस्या का समाधान करता है, बल्कि मृदा स्वास्थ्य सुधार, फसल उत्पादकता वृद्धि और टिकाऊ कृषि को बढ़ावा देने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

2. खोई (बैगास): ऊर्जा और उद्योग का आधार

खोई गन्ने से रस निकालने के बाद बचा सूखा, गूदेदार एवं रेशेदार अवशेष है। सामान्यतः 100 टन गन्ने की पेराई से लगभग 25–32 टन खोई प्राप्त होती है, जो औसतन 27–28 प्रतिशत के आसपास होती है। ताजा खोई में लगभग 48–50 प्रतिशत नमी, 2.5–3.5 प्रतिशत घुलनशील ठोस पदार्थ (ब्रिक्स) तथा 46–48 प्रतिशत फाइबर पाया जाता है। यह फाइबर मुख्यतः सेल्यूलोसिक पदार्थों से बना होता है, जो इसे एक उपयोगी औद्योगिक कच्चा माल बनाता है।

खोई का सर्वाधिक प्रचलित उपयोग चीनी मिलों में ईंधन के रूप में किया जाता है। पर्याप्त मात्रा में जलाने पर यह मिल की ऊर्जा आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम होती है और जीवाश्म ईंधनों पर निर्भरता कम करती है। इसके अतिरिक्त भारत, चीन, थाईलैंड, अर्जेंटीना और कोलंबिया जैसे देशों में खोई का उपयोग लुगदी, कागज और बोर्ड निर्माण के लिए लकड़ी के विकल्प के रूप में किया जा रहा है। समान परिस्थितियों में एक हेक्टेयर गन्ने से प्राप्त खोई, एक हेक्टेयर लकड़ी की तुलना में लगभग दोगुना कागजी रेशा प्रदान कर सकती है। भारत में कई उद्योग खोई आधारित क्राफ्ट पेपर, लेखन एवं मुद्रण कागज, समाचार पत्र तथा नालीदार कार्डबोर्ड का निर्माण कर रहे हैं। तमिलनाडु न्यूजप्रिंट्स लिमिटेड (टीएनपीएल) इसका सफल उदाहरण है। लकड़ी के स्थान पर खोई के उपयोग से वनों की कटाई में कमी आती है, जिससे यह पर्यावरण–अनुकूल और टिकाऊ विकल्प बनता है।

खोई का उपयोग बोर्ड एवं कंपोजिट सामग्री के निर्माण में भी किया जा रहा है, जहाँ यह उच्च घनत्व वाले फाइबरबोर्ड और लेमिनेटेड फर्श के लिए लकड़ी का प्रभावी विकल्प बनती है। इसके अलावा खोई से किण्वन द्वारा बायोगैस तथा उत्पादक गैस का उत्पादन किया जा सकता है, जिससे ऊर्जा सुरक्षा को बढ़ावा मिलता है। यद्यपि कच्ची खोई की पाचन क्षमता कम होने के कारण इसका सीधा उपयोग पशु आहार के रूप में सीमित है, फिर भी गुड़, एंजाइम एवं किण्वन तकनीकों द्वारा इसके पोषण मूल्य में सुधार कर इसे सस्ते वैकल्पिक चारे में बदला जा सकता है। साथ ही, खोई जैसे सेल्यूलोसिक अवशेषों से आधुनिक तकनीकों द्वारा इथेनॉल उत्पादन की भी व्यापक संभावनाएँ हैं।

खोई का उपयोग मुख्यतः

- चीनी मिलों में ईंधन के रूप में
- कागज और गत्ते के निर्माण में
- फाइबर बोर्ड और कंपोजिट उद्योग में
- जैव–ऊर्जा और बायोगैस उत्पादन में

खोई से कागज निर्माण करने से वनों पर दबाव कम होता है, जिससे पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा मिलता है। इसके अतिरिक्त, खोई से एथेनॉल उत्पादन की संभावनाएँ भी तेजी से बढ़ रही हैं।

3. गुड़ / मोलासिसः पशु आहार और जैव–उद्योग की रीढ़

गुड़ या मोलासिस चीनी निर्माण की अंतिम अवस्था में प्राप्त होने वाला गाढ़ा तरल उप–उत्पाद है। इसमें कार्बोहाइड्रेट, खनिज तत्व और कुछ विटामिन पाए जाते हैं। गुड़ का कृषि में महत्वपूर्ण उपयोग है। खेत में प्रयोग करने पर यह मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने में सहायक होता है, क्योंकि लगभग 48 मीट्रिक टन गुड़ से मिट्टी को 5.2 किलोग्राम नाइट्रोजन और 2.5 किलोग्राम फॉस्फोरस ऑक्साइड की आपूर्ति होती है। पशु आहार के रूप में गुड़ ऊर्जा का सस्ता और समृद्ध स्रोत है, जिसमें कार्बोहाइड्रेट प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। साथ ही इसमें बी–कॉम्प्लेक्स विटामिन तथा कोबाल्ट, तांबा, जस्ता, मैंगनीज, बोरॉन और आयोडीन जैसे सूक्ष्म तत्व भी मौजूद होते हैं। गुड़ का उपयोग गाय–भैंस के साथ–साथ सूअर और मुर्गियों के चारे में भी किया जाता है। भारत में पहला गुड़–आधारित पशु आहार राष्ट्रीय शर्करा संस्थान, कानपुर में विकसित किया गया था। इसके अतिरिक्त, दलहनी फसलों में राइजोबियम कल्चर तथा प्राकृतिक खेती में जीवामृत एवं धनामृत बनाने में भी गुड़ का व्यापक उपयोग किया जाता है।

इसका उपयोग मुख्य रूप से :

- पशु आहार में ऊर्जा स्रोत के रूप में
- एथेनॉल और अल्कोहल उत्पादन में
- जैव–उर्वरक, जीवामृत और प्राकृतिक खेती के इनपुट में
- मोलासिस का प्रयोग पशुओं की स्वादिष्टता बढ़ाने और चारे की पोषण गुणवत्ता सुधारने में सहायक है।

चीनी उद्योगों से जुड़े पर्यावरणीय मुद्दे

गन्ने के प्रसंस्करण से भोजन, ईंधन, फाइबर, उर्वरक तथा अन्य औद्योगिक उत्पादों का उत्पादन होता है, लेकिन इसके साथ पर्यावरणीय चुनौतियाँ भी जुड़ी हैं। चीनी उद्योग मीठे पानी के प्रमुख उपभोक्ता होने के साथ–साथ अपशिष्ट जल के बड़े स्रोत भी हैं। सामान्यतः प्रति टन गन्ने की पेराई से लगभग 1000 लीटर अपशिष्ट जल उत्पन्न होता है। यदि इसका उचित उपचार न किया जाए, तो यह सतही एवं भूजल स्रोतों को गंभीर रूप से प्रदूषित कर सकता है। चीनी मिलों के अपशिष्ट जल में जैव–रासायनिक ऑक्सीजन मांग (बी.ओ.डी) बहुत अधिक (लगभग 500–1000 मि.ग्रा. / लीटर) पाई जाती है। इसके अलावा कुल निलंबित ठोस (टीएसएस), सल्फेट तथा अन्य रासायनिक तत्व भी जल गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं। उप–उत्पादों का अवैज्ञानिक निपटान भी प्रदूषण को बढ़ाता है। बढ़ती जल–आवश्यकता और बायो–एथेनॉल उत्पादन के विस्तार से यह समस्या और गंभीर हो गई है।

गन्ना उद्योग के अपशिष्ट जल का उपचार तकनीकी रूप से चुनौतीपूर्ण है। उच्च दर वाला अवायवीय पाचन इस अत्यधिक

कार्बनिक अपशिष्ट को कम करने में प्रभावी पाया गया है, हालाँकि यह सभी प्रदूषकों को पूरी तरह समाप्त नहीं कर पाता। इसलिए, गन्ना आधारित उद्योगों में जल संरक्षण, पुनर्चक्रण और आधुनिक अपशिष्ट उपचार तकनीकों को अपनाना टिकाऊ विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है। आधुनिक बायो–रिफाइनरी, एनेरोबिक डाइजेशन और अपशिष्ट जल पुनर्चक्रण तकनीकों के माध्यम से इन अपशिष्टों को ऊर्जा, खाद और उपयोगी उत्पादों में बदला जा सकता है।

निष्कर्ष

गन्ना केवल चीनी उत्पादन की फसल नहीं है, बल्कि एक बहुउपयोगी कृषि–औद्योगिक प्रणाली का आधार है। इसके विभिन्न उप–उत्पाद जैसे खोई, प्रेसमड, गुड़ और आसवनी अपशिष्ट कृषि, ऊर्जा, उद्योग और पर्यावरण संरक्षण के लिए अपार संभावनाएँ रखते हैं। इन उप–उत्पादों का वैज्ञानिक एवं समुचित उपयोग मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार, फसल उत्पादकता बढ़ाने, वैकल्पिक ऊर्जा उत्पादन तथा किसानों की आय में वृद्धि का सशक्त माध्यम बन सकता है। साथ ही, गन्ना आधारित उद्योगों से उत्पन्न अपशिष्टों का पुनर्चक्रण पर्यावरणीय प्रदूषण को कम करने और चक्रीय अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने में सहायक है। वर्तमान समय की आवश्यकता है कि गन्ने के उप–उत्पादों को 'अपशिष्ट' नहीं, बल्कि 'संसाधन' के रूप में देखा जाए। गन्ना आधारित परिपत्र अर्थव्यवस्था (सर्कुलर इकोनॉमी) को बढ़ावा देकर कृषि को अधिक टिकाऊ, लाभकारी और पर्यावरण–अनुकूल बनाया जा सकता है। नीति समर्थन, तकनीकी नवाचार, किसान जागरूकता और उद्योगदृकृषि समन्वय के माध्यम से गन्ना आधारित कृषि को अधिक लाभकारी और पर्यावरण–अनुकूल बनाया जा सकता है, जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था और राष्ट्रीय विकास को नई दिशा मिलेगी।

समाप्त

16

निर्मल सिंह[1], अक्षय भूकर[2], अनुराग मलिक[2] एवं राजकुमार[1]*
[1]भा.कृ.अनु.प.–केंद्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
[2]चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विष्वविद्यालय, हिसार–125004 (हरियाणा)
*E-mail: rajhorticulture@gmail.com

किसानों की आय दोगुनी करने में बीज प्रौद्योगिकी की भूमिका

भारत देश की वर्तमान जनसंख्या 1.45 बिलियन है जो 2054 तक 1.69 बिलियन होने की उम्मीद है तथा भारत की 58 प्रतिशत से अधिक आबादी के लिए कृषि आजीविका का मुख्य स्रोत है। कृषि न केवल भारतीयों को आजीविका प्रदान करता है, यह हमारी संस्कृति और परंपराओं का स्रोत भी है। यहाँ फसल उत्पादन को उत्सव के रूप में मनाया जाता है और सूखा/अकाल को सबसे बुरी आपदा के रुप में देखा जाता है। किसान भारतीय अर्थव्यवस्था का मुख्य केंद्र हैं और उनकी आजीविका का उत्थान राष्ट्र के समग्र विकास की दिशा में एक कदम है। आजादी के बाद से, भारत में कृषि क्षेत्र का विकास मुख्य रूप से उत्पादन बढ़ाने और खाद्य सुरक्षा में सुधार पर केंद्रित रहा है। नई किस्मों को अपनाने, प्रभावी रोग प्रबंधन रणनीतियों, नई किसान–अनुकूल नीतियों के साथ हरित क्रांति के बाद भारतीय कृषि के परिवर्तन ने देश को न केवल खाद्य और पोषण सुरक्षित बनाने के साथ–साथ दुनिया के खाद्य निर्यातक देशों में से एक के रूप में भी स्थापित किया है। इसके बावजूद, हाल के दिनों में नियमित आपदायें और संकट किसानों की आय और आजीविका सुरक्षा के लिए एक गंभीर खतरा पैदा करते हैं। वैश्विक स्तर पर अग्रणी खाद्य–निर्यातक देशों में से एक होने के बावजूद, भारत में ग्रामीण परिवारों का पांचवां हिस्सा, जिनका मुख्य व्यवसाय कृषि है, गरीबी रेखा से नीचे है।

आजादी के समय से ही देश की जीडीपी (सकल घरेलू उत्पाद) में कृषि क्षेत्र का प्रमुख योगदान रहा है। वित्तीय वर्ष 1950–1951 में देश की कुल जीडीपी में कृषि और अन्य संबंधित गतिविधियों की हिस्सेदारी 59 प्रतिशत थी जो 2024 में 17.7 प्रतिशत रह गयी है। हालाँकि कृषि क्षेत्र में लगातार गिरावट आ रही है, फिर भी यह भारतीय अर्थव्यवस्था में सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में से एक है। आर्थिक समीक्षा 2023–24 के अनुसार कृषि क्षेत्र का सकल पूंजी निर्माण (जी.सी.एफ.) और सकल मूल्य वर्धन (जी.वी.ए.) के प्रतिशत के रूप में कृषि और संबद्ध क्षेत्रों में जीसीएफ का हिस्सा लगातार बढ़ रहा है, जिसका मुख्य कारण सार्वजनिक निवेश में वृद्धि है। कृषि क्षेत्र का जीसीएफ 2022–23 में 19.04 प्रतिशत की दर से बढ़ा, और जीवीए के प्रतिशत के रूप में जीसीएफ 2021–22 में 17.7 प्रतिशत से बढ़कर 2022–23 में 19.9 प्रतिशत हो गया, जो कृषि में निवेश में वृद्धि का सुझाव देता है। 2016–17 से 2022–23 तक जीसीएफ में औसत वार्षिक वृद्धि 9.70 प्रतिशत थी। आर्थिक समीक्षा में कहा गया है कि जीसीएफ में बढ़ती प्रवृत्ति के बावजूद, विशेष रूप से किसानों की आय दोगुनी करने के संदर्भ में कृषि निवेश को और बढ़ावा देने की आवश्यकता है। भारत को किसानों के साथ काम करने के लिए नए विचारों के साथ आना होगा और उन्हें मजबूत करने के लिए नए वैज्ञानिक ज्ञान के साथ–साथ नई तकनीक से सशक्त बनाना होगा। किसानों की आय दोगुनी करने के लिए, आदनों (इनपुट) की लागत कम करने और अधिक लाभ सृजन की संभावना के साथ प्रति इकाई क्षेत्र में उत्पादन और उत्पादकता के रूप में उच्च उत्पादन सुनिश्चित करने पर ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए। नई प्रौद्योगिकियों के साथ कृषि विज्ञान के अभिसरण की आवश्यकता है और ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगार वयस्कों/युवाओं को कुशल बनाकर गैर–फसल गतिविधियों में शामिल करने पर ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए जो अतिरिक्त आय उत्पन्न करने में मदद करेगा। इस उपाय से गरीब ग्रामीणों का काम की तलाश में शहरों की ओर पलायन रुकेगा तथा वे अपनी आजीविका कमाने के लिए आत्मनिर्भर बनेंगे। भारतीय किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए, सरकार ने आगे बढ़ने के लिए सात चरणों का मार्ग लागू किया हैः

1. प्राथमिक ध्यान बड़े बजट के साथ सिंचाई पर है, जिसका उद्देश्य 'प्रति बूंद, अधिक फसल' है।

2. प्रत्येक खेत की मिट्टी के स्वास्थ्य के आधार पर गुणवत्तापूर्ण बीजों और पोषक तत्वों का प्रावधान।

3. फसल कटाई के बाद फसल के नुकसान को रोकने के लिए गोदामों और कोल्ड चेन में भारी निवेश।

4. खाद्य प्रसंस्करण के माध्यम से मूल्यवर्धन को बढ़ावा देना।

5. राष्ट्रीय कृषि बाजार और ई–प्लेटफॉर्म का निर्माण।

6. संभावित जोखिमों को कम करने के लिए प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना (पीएमएफबीवाई) और

7. कृषि–संबद्ध गतिविधियों पर ध्यान।

भारतीय कृषि का प्रभावशाली विकास हुआ है और बीज क्षेत्र ने इस विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। गुणवत्तापूर्ण बीज कृषि क्षेत्र के निरंतर विकास के लिए महत्वपूर्ण इनपुट है और अन्य इनपुट बीज की गुणवत्ता के इष्टतम प्रभावी होने पर निर्भर हैं। भारत में बीज उद्योग आज अपनी प्रारंभिक अवस्था पार कर चुका है और मजबूत विकास की ओर लंबे कदम बढ़ा रहा है। हालाँकि बहुत चुनौतियाँ के बावजुद भी स्वदेशी नवाचार और प्रौद्योगिकी में मजबूत नींव के साथ एक जीवंत बीज उद्योग हैं। आज के समय में मजबूत आर्थिक नीति की आवश्यकता है, जो भारत को अग्रणी रखे और भारतीय बीज क्षेत्र को दुनिया के साथ गहरे रिश्ते बनाने और हमारे मेहनती किसानों के लिए अधिक धन लाने का मौका प्रदान करे।

मुख्य चुनौतियां

अधिकांश भारतीय किसान छोटे और सीमांत, अक्षम संसाधन वाले, बाजार के व्यवहार के बारे में अनभिज्ञ, जोखिम प्रवण, ऋण और ऋण से भरे हुए हैं और खरीदारों तक पहुंचने के लिए व्यापारियों पर निर्भर हैं। भारतीय किसान नवीनतम तकनीक का प्रशिक्षण और उसे अपनाने में बहुत पीछे है। अनुसंधान में कुल कृषि सकल घरेलू उत्पाद के 1 प्रतिशत से कम का निवेश अनुसंधान और विकास में खराब स्थिति को दर्शाता है। पूरी कृषि मूल्य श्रृंखला में बुनियादी ढांचे की भारी कमी है। प्रमुख फसलों की उत्पादकता में वृद्धि के बावजूद, यह कई देशों की तुलना में बहुत कम है। देश में विशाल वर्षा आधारित क्षेत्र, विशेष रूप से शुष्क भूमि, जहां ज्यादातर मोटे अनाज, दालें और तिलहन उगाए जाते हैं, अभी भी कम उपज दे रहे हैं। बेहतर पोषण गुणों और जलवायु लचीलापन के बावजूद, कम उत्पादकता, उच्च श्रम तीव्रता, कठिन परिश्रम और आकर्षक कृषि मूल्यों की कमी के कारण इन फसलों की खेती का क्षेत्र कम हो रहा है। इन क्षेत्रों में किसी भी सकारात्मक विकास से किसानों की बेहतर आजीविका हो सकती है। क्षारीयता और लवणता की समस्याएं लगभग 8 मिलियन हेक्टेयर भूमि को प्रभावित करने वाली अन्य चुनौतियां हैं। देश में और 7 मिलियन हेक्टेयर भूमि जल–जमाव के कारण अपनी उर्वरता खो रही है। इसके अलावा, कई राज्यों में मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा भी कम हो रही है। खाद्य उत्पादन की भविष्य की स्थिरता जलवायु परिवर्तन, संसाधनों के क्षरण के साथ–साथ जल और वायु प्रदूषण के लिए अत्यधिक सवेंदशील है। भूजल के अत्यधिक निष्कर्षण, उर्वरकों के असंतुलित उपयोग और फसल के अवशेषों को जलाने का राष्ट्रीय और वैश्विक दोनों तरह का प्रभाव पड़ता है। इसलिए, अधिक संसाधन कुशल और लचीला मार्ग शुरू करने के लिए भारतीय कृषि में एक आदर्श बदलाव की दिशा में तत्काल कार्रवाई की आवश्यकता है।

बीज प्रौद्योगिकी के निम्नलिखित माध्यमों से किसानों की आय को बढाया जा सकता है:

गुणवत्तापूर्ण बीज और रोपण सामग्री

देश में गुणवत्तापूर्ण बीज की उपलब्धता अभी भी एक बड़ी चिंता का विषय है। किसानों को अधिकतम उत्पादन और अच्छा लाभ प्राप्त करने के लिए उच्च गुणवत्ता वाले बेहतर बीज एक पूर्व–आवश्यकता है। इसके अलावा, यह कृषि में एक बेहतर तकनीक के रूप में कार्य करता है। अच्छी गुणवत्ता वाले बीज की बुवाई से कम बीज दर, बेहतर पौधे का उद्भव, अधिक एकरूपता, जोरदार प्रारंभिक विकास, कीट और रोग के हमले के प्रतिरोध में वृद्धि, कम खरपतवार, 5–20 प्रतिशत तक

अधिक उपज और कम पुनः रोपण होता है। उच्च बीज गुणवत्ता एक जटिल विशेषता है और यह उच्च अंकुरण प्रतिशत, उच्च आनुवंशिक शुद्धता, उच्च शारीरिक शुद्धता, उच्च रोपण मूल्य, कीट और बीमारियों से मुक्ति, खरपतवार के बीज और अन्य फसल के बीजों से मुक्ति से संबंधित है। भारतीय बीज उद्योग के साथ राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रणाली ने कई फसलों के बीज उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और किसानों को समय पर बीजों की उपलब्धता सुनिश्चित की है ताकि वाणिज्यिक फसल उत्पादन के बजाय बीज उत्पादन के लिए उनकी रुचि पैदा की जा सके। फिर भी, देश में कृषि परिदृश्य में उल्लेखनीय बदलाव लाने और किसानों की आय को दोगुना करने के लिए प्रत्येक किसान को उचित समय और किफायती लागत पर पर्याप्त मात्रा में गुणवत्तापूर्ण बीज उपलब्ध कराने की आवश्यकता है। हालाँकि, भारत में उत्पादन प्रौद्योगिकियों और बीज के गुणवत्ता मूल्यांकन के संबंध में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है, लेकिन यह कई विकासशील देशों में समान गति से नहीं हो सकता है।

चित्र 1: गुणवत्तापूर्ण बीज की गुणवत्ता विशेषताएँ

चित्र 2: गुणवत्तापूर्ण बीज के लाभ

आनुवंशिक शुद्धता की गारंटी

आनुवंशिक शुद्धता सबसे महत्वपूर्ण गुणवत्ता विशेषताओं में से एक है जो विविधता के सही–से–प्रकार (ट्रु–टु–टाईप) या वास्तविकता को दर्शाती है। जब बीज में वह आनुवंशिक संरचना होती है जिसके लिए प्रजनक ने दावा किया है या जिस जीनोटाइप का संकेत दिया है, तो इसे आनुवंशिक रूप से शुद्ध कहा जाता है। बीज की आनुवंशिक शुद्धता में गिरावट बीज गुणन और वितरण चक्र के दौरान हो सकती है, जिससे इसके प्रदर्शन में आनुपातिक कमी आ सकती है। इसलिए, 'वर्गीकरण कुंजी' के उपयोग जैसे तरीकों के साथ बीज उत्पादन को बढ़ाने के लिए आनुवंशिक शुद्धता सुनिश्चित करने की आवश्यकता है। प्रयोगशाला प्रयोग जैसे गेहूँ के लिए फिनोल परीक्षण, सोयाबीन के लिए सीड कोट पेरोक्सीडेस परीक्षण, ज्वार के लिए केओएच ब्लीच परीक्षण, धान के लिए फेरस सल्फेट रंग परीक्षण, ल्यूपिनस के लिए अल्कालॉइड परीक्षण, इलेक्ट्रोफोरेसिस, पेज, एसडीएस–पेज, फैटी एसिड की क्रोमैटोग्राफी, आणविक मार्करों का उपयोगय ग्रो–आउट–टेस्ट और फील्ड–प्लॉट–टेस्ट आनुवंशिक शुद्धता सुनिश्चित करने के लिए किये जाते हैं।

भौतिक शुद्धता की गारंटी

भौतिक शुद्धता बीज लॉट की भौतिक संरचना और डॉकेज से स्वतंत्रता को संदर्भित करती है। सीड लॉट एक ही प्रकार के शुद्ध बीज अर्थात बीज, निष्क्रिय पदार्थ, टूटे हुए अनाज, मिट्टी और धूल के कण, भूसी, खरपतवार के बीज और अन्य फसल के बीज से मिलकर बना होता है। शुद्ध बीज की मात्रा जितनी अधिक होगी, बीज की गुणवत्ता उतनी ही बेहतर होगी। भौतिक शुद्धता घटकों की व्याख्या शुद्ध बीज के रूप में की जाती है जिसमें पूर्ण बीज इकाइयाँ और मूल आकार के आधे से बड़े बीज इकाइयों के टुकड़े शामिल होते हैं। टूटे बीज, अपरिपक्व और सिकुड़े हुए बीज, खाली बीज, कीट क्षतिग्रस्त बीज, स्क्लेरोटिया और नेमाटोड गाल सभी बीज अशुद्धता के लिए जिम्मेदार हैं जिन्हें उचित सफाई और शुद्धता पृथक्करण की आवश्यकता

होती है। बीज लॉट की सफाई तीन आवश्यक चरणों में की जा सकती है। बुनियादी बीज सफाई के लिए बीज तैयार करना अर्थात प्री–कंडीशनिंग, एयर स्क्रीन मशीन के माध्यम से बुनियादी सफाई, साफ किए गए बीज की गुणवत्ता में सुधार। अधिक बीज उत्पादन सुनिश्चित करने के लिए बीज को साफ करना आवश्यक है।

आधुनिक बीज प्रसंस्करण और भंडारण सुविधा का विकास

भारत में आधुनिक बीज प्रसंस्करण और भंडारण सुविधाओं का विकास कृषि में कई महत्वपूर्ण कारकों को संबोधित करके किसानों की आय बढ़ाने के लिए परिवर्तनकारी क्षमता रखता है। सबसे पहले, उन्नत बीज प्रसंस्करण प्रौद्योगिकियां जैसे कि सफाई, ग्रेडिंग और उपचारित बीज, यह सुनिश्चित करते हैं कि केवल सर्वोत्तम गुणवत्ता वाले बीज लगाए जाएं, जिससे अधिक पैदावार के साथ स्वस्थ फसलें हों। ये प्रक्रियाएँ अशुद्धियों को दूर करती हैं और कीटों और बीमारियों के लिए बीजों के प्रतिरोध को बढ़ाती हैं, रासायनिक हस्तक्षेप की आवश्यकता को कम करती हैं और उत्पादन लागत को कम करती हैं। इसके अलावा, जलवायु नियंत्रण और कीट प्रबंधन प्रणालियों से आधुनिक भंडारण सुविधाएं बीजों की अंकुरण क्षमता को बनाए रखती हैं तथा बीजों की गुणवत्ता के साथ समझौता करने से बचा जा सकता है। यह किसानों को गुणवत्ता में गिरावट के बिना लंबे समय तक बीजों को संग्रहीत करने की अनुमति देती है, जिससे उन्हें फसल के तुरंत बाद, जब कीमतें अक्सर कम होती हैं, के बजाय बाजार की कीमतें अनुकूल होने पर बेचने का अवसर मिलता है। इस तरह की सुविधाएं संकर और आनुवंशिक रूप से संशोधित बीजों के उत्पादन और भंडारण को भी सक्षम बनाती हैं, जो स्थानीय जलवायु स्थितियों के अनुरूप होते हैं और जिनकी उत्पादकता अधिक होती है। अक्सर इन सुविधाओं से जुड़े एकत्रीकरण और सहकारी मॉडल छोटे और सीमांत किसानों को साझा बुनियादी ढांचे और संसाधनों तक पहुंच प्रदान करके उन्हें सशक्त बनाते हैं जिन्हें वे व्यक्तिगत रूप से वहन नहीं कर सकते थे। ये सहकारी समितियाँ खरीदारों और आपूर्तिकर्ताओं के साथ बेहतर कीमतों और शर्तों पर बातचीत कर सकती हैं, जिससे लाभ में किसानों का हिस्सा और बढ़ सकता है। इसके अलावा, आधुनिक बीज प्रौद्योगिकियों को अपनाकर, किसान अनुबंध खेती और अन्य संस्थागत व्यवस्थाओं में भाग ले सकते हैं जो पूर्व निर्धारित कीमतों पर सुनिश्चित पुनर्खरीद प्रदान करते हैं, इस प्रकार बाजार की कीमतों में उतार–चढ़ाव से जुड़े जोखिमों को कम करते हैं। यह आर्थिक स्थिरता किसानों को अपने खेतों में अधिक निवेश करने, बेहतर प्रथाओं को अपनाने और अंततः उनकी समग्र उत्पादकता और आय में सुधार करने के लिए प्रोत्साहित कर सकती है। संक्षेप में, आधुनिक बीज प्रसंस्करण और भंडारण सुविधाएं बीज की गुणवत्ता को बढ़ाती हैं, फसल कटाई के बाद के नुकसान को कम करती हैं, बाजार की आपूर्ति को स्थिर करती हैं और बेहतर आर्थिक अवसर प्रदान करती हैं, जिससे भारत में किसानों की आय में सामूहिक रूप से वृद्धि होती है।

बाजार आधारित बीज उत्पादन

नीति आयोग के अनुसार कृषि में अगली क्रांति विपणन और प्रसंस्करण से आएगी। देशव्यापी बाजार में कृषि उपज के विपणन के लिए 14 अप्रैल, 2016 को ई–नाम (राष्ट्रीय कृषि बाजार) नामक राष्ट्रीय ई–प्लेटफॉर्म के खुलने से किसानों के लिए बेहतर मूल्य अर्जित करना आसान और अधिक लाभकारी हो गया है। यह न केवल वस्तुओं में ऑनलाइन व्यापार के लिए एक मंच है, बल्कि बेहतर मूल्य खोज में बाजार की मदद करता है। जनवरी 2018 तक ई–नाम बाजार में लेन–देन 36,200 करोड़ रुपये रहा। मुख्य खाद्यान्न, सब्जी और फलों सहित 90 से अधिक वस्तुएं वर्तमान में व्यापार के लिए उपलब्ध वस्तुओं की सूची में सूचीबद्ध हैं। इस क्षेत्र में बाजार की जानकारी/बाजार की बुद्धिमत्ता की कमी एक उद्योग के रूप में बीज की व्यावसायिक योजना की सटीकता में एक बाधा है। व्यापार के लिए उपलब्ध वस्तुओं की सूची में गुणवत्तापूर्ण बीजों को शामिल करने की गुंजाइश है जो उत्पादकों को उच्च प्रतिफल और बीज उपज के लिए बेहतर मूल्य सुनिश्चित कर सकता है।

बीज संवर्धन

बीज संवर्धन उन प्रौद्योगिकियों को शामील करता है जो लगातार अच्छे बीज प्रदर्शन में मदद करती हैं, जिससे फसल की उपज और गुणवत्ता में सुधार होता है। बीज संवर्धन तकनीकों में अंकुरण की बाधाओं को दूर करने और समान मानक, फसल

विकास और बेहतर पैदावार प्रदान करने के लिए भौतिक, कार्यिकी (फिजियोलोजिकल) और जैविक उपचार शामिल हैं। बीज संवर्धन प्रौद्योगिकियां बीजों में अधिक रोग प्रतिरोध प्रदान करने, बीज शक्ति में सुधार करने और बीज उभरने की क्षमताओं को संशोधित करने की अपनी क्षमता के लिए अधिक ध्यान आकर्षित कर रही हैं। पिछले वर्षों से बीज वृद्धि के लिए कई शॉटगन तरीकों का उपयोग किया जा रहा है, जिसमें बीज प्राइमिंग, चुंबकीय उत्तेजना, बीज पैलेटिंग और कोटिंग शामिल हैं।

बीज/किस्म प्रतिस्थापन दर में सुधार

मांग–आपूर्ति में भारी अंतर के कारण, भारत में बीज प्रतिस्थापन दर निराशाजनक है। कुछ राज्यों में यह सभी फसलों में 5 प्रतिशत से भी कम है जो बीज उद्योग और भारतीय कृषि के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती है। सार्क (दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन) देशों के सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का योगदान 16–30 प्रतिशत है, बीज प्रतिस्थापन दर 10–30 प्रतिशत है, विशेष रूप से भारत स्वपरागीत फसलों में 30 प्रतिशत तथा परपरागीत फसलों में 50 प्रतिशत है। इस स्थिति से उबरने के लिए, सरकार की एकयोजना तैयार करने की आवश्यकता है जहां गुणवत्ता वाले बीज के तहत क्षेत्र को आवरण करने के लिए लक्ष्य निर्धारित किए जाने चाहिए। एक अन्य बाधा बीज श्रृंखला में बहुत पुरानी किस्मों का प्रभुत्व है जिसके लिए नीतिगत हस्तक्षेप की आवश्यकता है। सार्वजनिक क्षेत्र को केवल कम मूल्य वाली खाद्यान्न फसलों के गुणवत्तापूर्ण बीजों के उत्पादन तक सीमित रखा गया है, जबकि निजी क्षेत्र को बाजार में प्रवेश करने की अनुमति दिए जाने के बाद से उच्च मूल्य वाली फसलों पर ध्यान केंद्रित किया गया है। निस्संदेह, निजी क्षेत्र पहुंच से बाहर के क्षेत्रों तक अधिक तेजी से पहुंच सकता है, लेकिन उनके बीज की लागत सार्वजनिक क्षेत्र के बीज की तुलना में बहुत अधिक है। निजी क्षेत्र की बीज कंपनियों की बीज लागत पर भी नियंत्रण रखने के लिए कुछ तंत्र होना चाहिए ताकि छोटे और सीमांत किसान भी बीज खरीद सकें और यह निश्चित रूप से एसआरआर को बढ़ाने में मदद करेगा।

निर्यात आयात को बढ़ावा देना

भारत के उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण सुधार 1991 के साथ, बीज देश की सीमा से बाहर जाने लगे क्योंकि व्यापार खोला गया था, हालांकि, व्यापार निर्यात आयात नीति, 2002–2007 के बाद ही बढ़ा। बीज और कृषि अनुसंधान कम हाथों में होने के कारण, वैश्विक खाद्य आपूर्ति बाजार के उतार–चढाव के प्रति अतिसंवेदनशील है, इस प्रकार निजी बीज कंपनियों, गैर सरकारी संगठनों और बीज सहकारी समितियों द्वारा अधिक भागीदारी की आवश्यकता महसूस की गई है। यूएसडीए ने अपने हाल के अध्ययन में निष्कर्ष निकाला कि बाजार में कम प्रतिस्पर्धा का कारण अनुसंधान और विकास में है, जो भारत में अनुसंधान और विकास में अधिक जीडीपी योगदान के लिए आधारशिला है। आज शीर्ष 10 बीज कंपनियां दुनिया की आधे से अधिक वाणिज्यिक बीज बिक्री को नियंत्रित करती हैं। वैश्विक बीज उद्योग में शीर्ष 10 कंपनियों में से केवल शीर्ष 3 कंपनियों का कारोबार शेष 7 कंपनियों का लगभग 3.6 गुना है। प्रति वर्ष लगभग 50 बिलियन अमेरिकी डॉलर के वैश्विक बाजार के साथ, कीटनाशक बाजार की तुलना में वाणिज्यिक बीज उद्योग अपेक्षाकृत छोटा है। यह अनुमान लगाया गया है कि शीर्ष 10 कंपनियां वैश्विक बीज व्यापार के 62 प्रतिशत हिस्से को नियंत्रित करती हैं। अफ्रीकी और एशियाई देश कई बीज कंपनियों के लिए अपने बीज व्यवसाय के विस्तार के लिए नए क्षेत्र हैं। एशियाई देशों में मलेशिया, म्यांमार, पाकिस्तान, श्रीलंका और इथियोपिया, घाना, केन्या, नाइजीरिया, टोगो, सूडान, अंगोला और तंजानिया जैसे अफ्रीकी देश अच्छे बीज निर्यात के लिए अच्छे विकल्प हैं जो भारतीय किसानों को उनकी आय दोगुनी करने में मदद करेंगे। व्यापार में तेजी लाने और खाद्य सुरक्षा के लिए, सार्क और सार्क देशों से बाहर बीज व्यापार की बहुत अधिक संभावनाएं हैं।

अच्छी तरह से परखी गई जीएम प्रौद्योगिकी

विवाद के बावजूद आनुवंशिक रूप से संशोधित (जी. एम.) बीज बाजार में काफी हिस्सेदारी प्राप्त कर रहे हैं। यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि बायोटेक बीज विशेषताओं का बाजार 1996 में 280 मिलियन डॉलर से बढ़कर 2004 में 4700 मिलियन डॉलर हो गया है, जो 2017–18 में तीन गुना अधिक है। बीटी–कपास को छोड़कर किसी अन्य फसल को व्यावसायिक रूप से अपनाने

की अनुमति नहीं दी गई है। अधिक से अधिक जीएम उत्पादों को जारी करने की वैश्विक प्रवृत्ति और देश में कृषि उत्पादन के अनुमानित लक्ष्यों को पूरा करने की चुनौती को ध्यान में रखते हुए, मानव स्वास्थ्य पर जैव–सुरक्षा, जीएम प्रौद्योगिकी के खतरों/लाभों के मुद्दों पर सोचना महत्वपूर्ण है। इसके अलावा, जीएम फसलों के बीज उत्पादन को सुविधाजनक बनाने के लिए क्षेत्र और बीज मानकों को परिभाषित करने की आवश्यकता है। जैसा कि कई जैव प्रौद्योगिकी विशेषज्ञों ने सुझाव दिया है, भारतीय जैव प्रौद्योगिकी नियामक प्राधिकरण (बी.आर.ए.आई.) को तत्काल चालू करने की आवश्यकता है। एक नियामक प्रणाली को अत्यधिक कुशल और विश्वसनीय बनाने की आवश्यकता है ताकि नये बीजों को बाजार में उतारने कि प्रक्रिया धीमी ना हो। जी.एम. फसलों के परीक्षण, निकासी और निगरानी के लिए पारदर्शी प्रक्रियाओं से संभावित सामग्रियों के तेजी से अनुमोदन में मदद मिलेगी। 2004 में, पायनियर/ड्यूपॉन्ट ने अपने बीज राजस्व का 50 प्रतिशत उन किस्मों से अर्जित किया जिनमें आनुवंशिक रूप से संशोधित विशेषता शामिल है।

जैविक बीज उत्पादन

भारत सरकार ने जैविक उत्पादन के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम (एनपीओपी) लागू किया है जिसके लिए एपीडा (कृषि और प्रसंस्कृत खाद्द उत्पाद निर्यात विकास प्राधिकरण) नोडल एजेंसी है। इसमें प्रमाणीकरण के लिए मान्यता कार्यक्रम, जैविक उत्पादन के लिए मानक, संवर्धन और जैविक खेती आदि शामिल हैं। जैविक उत्पादों की बढ़ती मांग के कारण ऐसी फसलों के बीज उत्पादन की मांग बढ़ी है। हालांकि राजस्थान जैसे कुछ राज्यों में, जैविक बीज उत्पादन के प्रमाणन के लिए इसे सशक्त बनाने के लिए राज्य बीज प्रमाणन एजेंसी को फिर से नामित किया गया है, फिर भी जैविक बीज उत्पादन के लिए कोई सर्वसम्मत बीज और क्षेत्र मानक निर्धारित नहीं किया गया है। सब्जियों और अनाज में जैविक बीज उत्पादन के लिए भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र की खोज एक लाभदायक रणनीति होगी। जैविक उत्पादन के लिए जैविक रूप से उत्पादित बीजों के उपयोग को वाणिज्यिक उत्पादन श्रृंखला पर उपयोग किए जाने वाले विभिन्न रसायनों के अवशिष्ट प्रभाव के संबंध में वैज्ञानिक रूप से मान्य करने की आवश्यकता है। पोषण और दीर्घकालिक पारिस्थितिकी तंत्र के महत्व में बढ़ती जागरूकता के साथ, जैविक उत्पादों को दुनिया भर के बाजारों में अधिक पैसा मिलना शुरू हो गया है, इस प्रकार, यह किसानों की आय को दोगुना करने के लिए एक निश्चित प्रयास है।

सब्सिडी योजनाओं को तर्कसंगत बनाना

सब्सिडी योजनाओं को तर्कसंगत बनाने और आपूर्ति श्रृंखला में कमजोर लिंक को विकसित करने के लिए रणनीतिक रूप से अधिक हिस्सेदारी आवंटित करने की आवश्यकता है, विशेष रूप से वे जो ग्रामीण स्तर पर बुनियादी ढांचे और परिसंपत्तियों में निवेश को बढ़ावा देते हैं। कृषि लॉजिस्टिक्स के निर्माण और आधुनिकीकरण के लिए उपयोग किए जाने वाले पूंजीगत सामान, जैसे कि प्री–कूलर, एकीकृत पैक–हाउस, रीफर वाहन, रीफर कंटेनर, वेयरहाउसिंग, साइलो, कोल्ड स्टोर आदि को लागत के बोझ को कम करने के लिए जीएसटी से छूट दी जा सकती है, क्योंकि इन्हें पहले उत्पाद शुल्क से छूट दी गई थी।

किसान समूह (एफआईजी और एफपीओ) के माध्यम से सशक्तिकरण/आत्मनिर्भरता

भारत सरकार ने किसान हित समूहों (एफ.आई.जी.) और किसान उत्पाद संगठनों के गठन का प्रावधान किया है। कॉम्पैक्ट एरिया अप्रोच पर आधारित एक सरल सिद्धांत के लिए व्यक्तिगत रूप से व्यवसाय करने की तुलना में सहभागी/सामुदायिक भागीदारी के माध्यम से बीज उत्पादन में बहुत अधिक क्षमता है। यह दृष्टिकोण बीज प्रबंधन और वितरण को आसान बनाता है, विभिन्न प्रकार के मिश्रणों और अशुद्धियों को काफी कम करता है, बीज प्रमाणन में आसानी, बेहतर मशीनीकरण, उच्च आनुवंशिक और भौतिक शुद्धता और अंततः निवेश और खेती की लागत पर अधिक लाभ देता है जो आने वाले वर्षों में किसानों की आय को दोगुना करना सुनिश्चित करेगा। ये कार्यक्रम किसानों को बीजों के उत्पादन, चयन और वितरण में सीधे शामिल करके, उनकी कृषि प्रथाओं पर स्वामित्व और नियंत्रण की भावना को बढ़ावा देकर उन्हें सशक्त बनाते हैं। कृषि वैज्ञानिकों और विस्तार सेवाओं के साथ सहयोग करके, किसान उच्च गुणवत्ता वाले बीजों तक पहुंच प्राप्त करते हैं जो

स्थानीय रूप से अनुकूलित होते हैं, जिससे बेहतर अंकुरण दर और स्थानीय कीटों और बीमारियों के लिए लचीलापन सुनिश्चित होता है। यह स्थानीय उत्पादन बाहरी बीज कंपनियों पर निर्भरता को कम करता है, लागत को कम करता है और बेहतर बीज किस्मों की उपलब्धता को बढ़ाता है। इसके अतिरिक्त, किसानों को बीज उत्पादन और भंडारण के लिए सर्वोत्तम प्रथाओं में प्रशिक्षित किया जाता है, जिससे फसल की पैदावार में स्थिरता सुनिश्चित होती है। ये कार्यक्रम पारंपरिक बीज किस्मों के संरक्षण, जैव विविधता को बनाए रखने और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के खिलाफ एक बफर की पेशकश को भी बढ़ावा देते हैं। सहकारी संरचनाओं के माध्यम से, किसान सामूहिक रूप से अपने बीजों का विपणन कर सकते हैं, अपनी सौदेबाजी की शक्ति बढ़ा सकते हैं और बेहतर मूल्य प्राप्त कर सकते हैं। सहभागी मॉडल यह सुनिश्चित करता है कि उत्पादित बीज समुदाय की विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करते हैं, जिससे अधिक कुशल और उत्पादक कृषि प्रणालियाँ बनती हैं। नतीजतन, किसानों को उपज में वृद्धि और कम लागत का अनुभव होता है, जिससे उच्च शुद्ध आय प्राप्त होती है। इसके अलावा, इन कार्यक्रमों द्वारा प्रोत्साहित सामुदायिक भावना और साझा ज्ञान सामाजिक पूंजी को मजबूत करता है, जिससे अधिक लचीले कृषि समुदाय बनते हैं। कुल मिलाकर, सहभागी बीज उत्पादन कार्यक्रम न केवल आत्मनिर्भरता और खाद्य सुरक्षा को बढ़ाते हैं, बल्कि उच्च गुणवत्ता वाले, स्थानीय रूप से अनुकूलित बीजों की उपलब्धता सुनिश्चित करके और महंगे बाहरी निवेशों पर निर्भरता को कम करके किसानों की आय को भी काफी बढ़ावा देते हैं।

प्रमुख फसलों में नए जलवायु अनुकूल क्षेत्र विशिष्ट संकर/उच्च उपज देने वाली किस्मों को व्यापक प्रोत्साहन

प्रमुख फसलों में बदलती जलवायु परिस्थिति के अनुसार, क्षेत्र–विशिष्ट संकर और उच्च उपज देने वाली किस्मों (एच. वाई.वी.) को व्यापक रूप से बढ़ावा देने से जलवायु परिवर्तनशीलता और क्षेत्र–विशिष्ट कृषि स्थितियों से उत्पन्न महत्वपूर्ण चुनौतियों का समाधान करके किसानों की आय में काफी वृद्धि हो सकती है। ये उन्नत बीज प्रौद्योगिकियां सूखे, बाढ़ और गर्मी की लहरों जैसी चरम मौसम की घटनाओं का सामना करने के लिए तैयार की गई हैं, जो जलवायु परिवर्तन के कारण लगातार हो रही हैं। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी स्थिर और उच्च उपज सुनिश्चित करके, ये बीज फसल की विफलता के जोखिम को कम करते हैं और किसानों के लिए आय की अस्थिरता को कम करते हैं। क्षेत्र–विशिष्ट संकर और एच.वाई.वी. को विभिन्न क्षेत्रों की अनूठी मिट्टी और जलवायु स्थितियों में पनपने, संसाधन उपयोग को अनुकूलित करने और उत्पादकता बढ़ाने के लिए विकसित किया जाता है। उदाहरण के लिए, शुष्क क्षेत्रों में सूखा–सहिष्णु किस्में या बाढ़–प्रवण क्षेत्रों में बाढ़–प्रतिरोधी किस्में यह सुनिश्चित करती हैं कि किसान लगातार उत्पादन स्तर बनाए रख सकें, जिससे उनकी आजीविका सुरक्षित हो सके। इसके अलावा, इन किस्मों में अक्सर स्थानीय कीटों और बीमारियों के लिए अंतर्निहित प्रतिरोध होता है, जिससे महंगे रासायनिक निवेश की आवश्यकता कम हो जाती है और उत्पादन लागत कम हो जाती है। इससे न केवल शुद्ध आय में वृद्धि होती है बल्कि स्थायी कृषि प्रथाओं को भी बढ़ावा मिलता है। इस तरह के बीजों को अपनाने से अधिक विपणन योग्य अधिशेष हो सकता है, किसानों की सौदेबाजी की शक्ति में सुधार हो सकता है और बेहतर बाजार मूल्यों तक पहुंच हो सकती है। इसके अतिरिक्त, इन बीजों को बढ़ावा देने के लिए सरकारी और निजी क्षेत्र की पहलों में अक्सर विस्तार सेवाएं और प्रशिक्षण कार्यक्रम शामिल होते हैं, जो किसानों को नई किस्मों के लाभ को अधिकतम करने के लिए ज्ञान और कौशल से लैस करते हैं। फसल के बेहतर प्रदर्शन से बेहतर गुणवत्ता वाले उत्पाद मिलते हैं, जिससे बाजार में प्रीमियम मूल्य प्राप्त होते हैं और निर्यात के अवसर खुलते हैं। इसके अलावा, उच्च उत्पादकता से स्थिर और बढ़ी हुई आय कृषि में पुनर्निवेश को प्रोत्साहित करती है, जिससे कृषि स्थिरता और विकास को और बढ़ावा मिलता है। आय में वृद्धि का लहर प्रभाव ग्रामीण विकास का भी समर्थन करता है, जिससे समग्र सामुदायिक कल्याण में वृद्धि होती है। संक्षेप में, जलवायु–लचीला, क्षेत्र–विशिष्ट संकर और एचवाईवी को व्यापक रूप से अपनाना खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करके, लाभप्रदता बढ़ाकर और किसानों के बीच लचीलापन बढ़ाकर कृषि परिदृश्य को बदल सकता है, इस प्रकार आर्थिक विकास को बढ़ावा दे सकता है और ग्रामीण भारत में आजीविका में सुधार कर सकता है।

गुणवत्तापूर्ण बीज प्रतिस्थापन पर आधारित सब्सिडी

गुणवत्तापूर्ण बीज प्रतिस्थापन पर आधारित सब्सिडी पूरी लागत का बोझ उठाए बिना बेहतर बीज किस्मों तक उनकी पहुंच सुनिश्चित करके किसानों की आय में उल्लेखनीय वृद्धि कर सकती है। इन बीजों पर सब्सिडी देकर, सरकार किसानों के लिए वित्तीय बाधा को कम करती है, जिससे छोटे और सीमांत किसान भी उच्च उपज देने वाली और हर क्षेत्र के लायक बीज किस्मों को अपना सकते हैं। परिणामस्वरूप उच्च फसल गुणवत्ता और उपज बेहतर बाजार मूल्य प्राप्त कर सकती है, जिससे किसानों के राजस्व में वृद्धि हो सकती है। सब्सिडी किसानों को पारंपरिक बीज–बचत प्रथाओं, जिसमें घटते बीज क्षमता और उत्पादकता के साथ बीजों का उपयोग शामिल हो सकता है। इसके अलावा, गुणवत्तापूर्ण बीजों की बढ़ती मांग स्थानीय बीज उद्योगों को प्रोत्साहित कर सकती है, रोजगार पैदा कर सकती है और ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक विकास को बढ़ावा दे सकती है। कुल मिलाकर, प्रारंभिक वित्तीय बाधाओं को कम करके और उच्च गुणवत्ता वाले बीजों को अपनाने को बढ़ावा देकर, सब्सिडी कृषि उत्पादकता को बढ़ावा देने, लागत को कम करने और किसानों की आय बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जिससे कृषि क्षेत्र के व्यापक आर्थिक विकास में योगदान मिलता है।

निष्कर्ष

अधिकांश भारतीय किसान छोटे और गरीब किसान हैं, जिनके कंधों पर बढ़ती आबादी का भरण–पोषण करने की जिम्मेदारी है। वे जैव विविधता और स्थिरता में सुधार के लिए भी महत्वपूर्ण हैं। किसानों की वास्तविक आय को दोगुना करने के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, इसे प्राप्त करने के लिए आवश्यक प्रयास और संसाधन सामान्य रूप से व्यवसाय परिदृश्य स्तरों के तहत वर्तमान की तुलना में कम से कम तीन गुना होने चाहिए। गुणवत्तापूर्ण बीज, उन्नत किस्मों और सर्वोत्तम उपयुक्त सस्य प्रथाओं के उपयोग को फसल उत्पादन, उत्पादकता और किसानों की आजीविका बढ़ाने के सबसे किफायती तरीके के रूप में पहचाना जाता है। कृषि उत्पादन में सुधार का अधिक प्रतिशत उन्नत बीज के उपयोग से आया है। यह सुनिश्चित करने के लिए, नई किस्मों के बीज किसानों को पर्याप्त मात्रा और गुणवत्ता में और किफायती कीमतों पर और समय पर उपलब्ध कराए जाने चाहिए। बीजों की आपूर्ति और मांग के बीच की खाई को पाटने और किसानों को उनके गांवों में सही मात्रा में और सही समय पर गुणवत्तापूर्ण बीज उपलब्ध कराने में निजी क्षेत्र की महत्वपूर्ण भूमिका है। यह उम्मीद की जाती है कि आपूर्ति में वृद्धि से कीमतों में भी कमी आएगी, जिससे गरीब किसानों को प्रौद्योगिकी उपलब्ध होगी, और इस प्रकार उत्पादकता और आर्थिक गतिविधि में वृद्धि होगी, और गरीबी और खाद्य असुरक्षा में कमी आएगी। पारंपरिक रूप से खुले परागण वाली किस्मों और छोटी फसलों में अनुसंधान प्रजनन और खेती के विकास में निवेश की आवश्यकता है। इस क्षेत्र में अधिक निवेश से उत्पादकों के लिए चुनने के लिए सस्ती किस्में और फसल जैव विविधता का अधिक संरक्षण का अवसर होगा। अनुसंधान और बीज उत्पादक संस्थानों के बीच सरल संस्थागत और कार्यात्मक संबंध, देश में स्पष्ट बीज नीतियों का निर्माण और कार्यान्वयन और विशेषज्ञों और विस्तार एजेंटों को शामिल करके अनुसंधान और विकास में क्षमता निर्माण जो संपूर्ण एकीकृत बीज प्रणाली को मजबूत कर सकते हैं तथा अनेक समस्या का व्यावहारिक समाधान किया जा सकता है।

समाप्त

17

जावेद[1,3], सानिया नाज़[1], सुमित किरन सत्पथी[2,3], रवि किरन के. टी.[3],
अर्जुन सिंह[3]*, मनीष कुमार[4], अनन्या गौतम[3] एवं कैलाश प्रजापत[4]

[1]आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

[2]भाकृअनुप–आई.ए.आर.आई., लखनऊ हब, लखनऊ (उ.प्र.)

[3]भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय अनुसंधान केंद्र, लखनऊ (उ.प्र.)

[4]भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

*Email: arjun.iari@gmail.com

ड्रोन एवं कृत्रिम बुद्धिमत्ताः आधुनिक संरक्षित कृषि प्रणाली की नई उम्मीद

ड्रोन एवं कृत्रिम बुद्धिमत्ता (ए.आई.) आधारित तकनीकें संरक्षित कृषि प्रणाली को अधिक सटीक, उत्पादक, लाभकारी और पर्यावरण–अनुकूल बनाने में एक क्रांतिकारी भूमिका निभा रही हैं। ड्रोन के माध्यम से फसलों की निरंतर निगरानी, मिट्टी एवं नमी का आकलन, कीट–रोग व खरपतवार नियंत्रण तथा उर्वरक और कीटनाशकों का लक्षित व संतुलित छिड़काव संभव हुआ है, जिससे उत्पादन लागत में कमी और उपज व गुणवत्ता में उल्लेखनीय वृद्धि देखी जा रही है। एआई तकनीक वास्तविक समय के आंकड़ों के आधार पर किसानों को बेहतर निर्णय लेने में सहायता करती है, जिससे जल, उर्वरक और रसायनों का कुशल उपयोग होता है तथा पर्यावरणीय प्रभाव भी कम होता है। चीन, जापान, अमेरिका और ब्राज़ील जैसे देशों में इन तकनीकों का व्यापक उपयोग हो रहा है, वहीं भारत में भी कृषि ड्रोन और एआई आधारित समाधानों को तेजी से अपनाया जा रहा है। इसके साथ ही ड्रोन तकनीक ग्रामीण क्षेत्रों में कौशल विकास और रोजगार सृजन के नए अवसर प्रदान कर रही है। यद्यपि नियामक ढांचे की कमी, सीमित उड़ान अवधि और प्रारंभिक लागत जैसी चुनौतियाँ मौजूद हैं, फिर भी उचित नीतिगत समर्थन, प्रशिक्षण और तकनीकी नवाचारों के माध्यम से इन बाधाओं को दूर किया जा सकता है। कुल मिलाकर, ड्रोन और कृत्रिम बुद्धिमत्ता भारतीय कृषि को अधिक टिकाऊ, आधुनिक और जलवायु–अनुकूल बनाने की दिशा में एक सशक्त माध्यम सिद्ध हो सकती हैं।

परिचय

ड्रोन तकनीक आज कृषि क्षेत्र में एक नई क्रांति का आधार बन रही है। यह तकनीक किसानों को उर्वरक, कीटनाशक और पानी की सटीक मात्रा तथा सही समय पर उपयोग की जानकारी प्रदान करती है, जिससे संसाधनों की बचत होती है और सुरक्षा भी सुनिश्चित होती है। परिणामस्वरूप खेती की कुल लागत घटती है और उत्पादन क्षमता बढ़ती है। चीन, जापान, संयुक्त राज्य अमेरिका और ब्राजील जैसे कृषि प्रधान देशों ने कृषि कार्यों में ड्रोन के उपयोग को बढ़ावा देने के लिए ठोस कदम उठाए हैं। ये देश कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित ड्रोन तकनीक के विस्तार हेतु अनुकूल नीतियों और संरचनात्मक विकास को प्राथमिकता दे रहे हैं।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता, कंप्यूटर विज्ञान की एक उभरती हुई शाखा है, जो कृषि सहित सभी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण बदलाव ला रही है। एआई पारंपरिक कृषि पद्धतियों को अधिक सटीक, तेज और प्रभावी तकनीकों से प्रतिस्थापित कर रही है। उदाहरण के लिए, चीन में एआई संचालित ड्रोन तकनीक के उपयोग से फसल प्रबंधन में उल्लेखनीय सुधार हुआ है। एक्स.ए.जी के शोध के अनुसार, ड्रोन तकनीक अपनाने के बाद चीन में फसल उपज में 17–20 प्रतिशत तक की वृद्धि दर्ज की गई है। वर्तमान में चीन का ड्रोन बाजार लगभग 13.8 प्रतिशत की चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर से बढ़ रहा है तथा प्रतिदिन 1.2 मिलियन हेक्टेयर से अधिक कृषि भूमि पर ड्रोन का उपयोग किया जा रहा है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता कृषि को अधिक स्मार्ट, सटीक और टिकाऊ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। एआई आधारित प्रणालियाँ किसानों को समय पर और सही निर्णय लेने में सहायता करती हैं। इसके माध्यम से जल, उर्वरक और कीटनाशकों

का कम लेकिन प्रभावी उपयोग संभव हो पाता है, जिससे लागत घटती है और लाभप्रदता बढ़ती है। एआई तकनीक फसल स्वास्थ्य और गुणवत्ता में सुधार लाने के साथ–साथ आपूर्ति श्रृंखला के बेहतर प्रबंधन में भी सहायक है। इसके परिणामस्वरूप उत्पादकता बढ़ती है और संसाधनों का अधिकतम तथा संतुलित उपयोग सुनिश्चित होता है।

चित्र 1: भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय अनुसंधान केंद्र, शिवरी, लखनऊ में सोडिक मृदा परिस्थितियों के अंतर्गत गेहूँ फसल पर मृदा सोडिकता के प्रभाव का क्षेत्रीय दृश्य।

ड्रोन और सटीक (प्रिसीजन) खेती

सटीक खेती वह पद्धति है जिसमें पानी, उर्वरक और कीटनाशकों का उपयोग आवश्यकता के अनुसार और नियंत्रित मात्रा में किया जाता है। जिन समस्याओं को जमीन से पहचानना कठिन होता है, उन्हें ड्रोन की सहायता से आसानी से देखा जा सकता है। इस प्रकार ड्रोन किसानों को समय पर निर्णय लेने में मदद करते हैं।

ड्रोन कृषि चुनौतियों के समाधान में निम्नलिखित तरीकों से सहायक हैं:

फसल निगरानी: ड्रोन फसलों की नियमित निगरानी कर जैविक एवं अजैविक तनावों की पहचान करते हैं। इससे स्थान–विशेष कृषि को बढ़ावा मिलता है और बीज, उर्वरक व अन्य इनपुट का उचित उपयोग संभव होता है।

मिट्टी एवं भूमि का विश्लेषण: ड्रोन के माध्यम से मिट्टी की नमी, पोषक तत्वों की स्थिति और कटाव का आकलन किया जा सकता है, जिससे सिंचाई, रोपण और उर्वरक प्रबंधन अधिक प्रभावी बनता है।

कीट, रोग एवं खरपतवार नियंत्रण: ड्रोन सटीक मात्रा में कीटनाशकों और शाकनाशियों का छिड़काव करते हैं, जिससे फसलों को सही खुराक मिलती है और किसानों के स्वास्थ्य पर जोखिम कम होता है।

श्रम एवं समय की बचत: ड्रोन बड़े क्षेत्र में कम समय में छिड़काव कर सकते हैं, जिससे श्रम की आवश्यकता घटती है और किसान अन्य कृषि कार्यों पर ध्यान दे सकते हैं।

नए सेवा मॉडल: ड्रोन आधारित डेटा संग्रह से कृषि सेवा प्रदाता, ड्रोन संचालक और इनपुट कंपनियां मिलकर किसानों को 'पे–पर–यूज़' जैसी सेवाएं प्रदान कर सकती हैं।

चित्र 2: फसलों के विशाल क्षेत्र के ऊपर उड़ता हुआ कृषि ड्रोन

ड्रोन से रोजगार के नए अवसर

ड्रोन संचालन के लिए विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है, जिससे ग्रामीण युवाओं के लिए रोजगार के नए अवसर उत्पन्न हो रहे हैं। अनुमान है कि ड्रोन और एआई आधारित तकनीकों से ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग 21 लाख रोजगार सृजित हो सकते हैं। ड्रोन तकनीक के तेजी से विस्तार ने रोजगार के क्षेत्र में एक नया और गतिशील आयाम जोड़ा है, जिससे युवाओं के लिए पारंपरिक रोजगार से हटकर कौशल–आधारित नए अवसर सृजित हो रहे हैं। ड्रोन पायलट प्रशिक्षक, डेटा विश्लेषक, तकनीकी सहायक और रिमोट सेंसिंग विशेषज्ञ जैसे

पद अब उभर रहे हैं। कृषि क्षेत्र में ड्रोन के बढ़ते उपयोग से 'ड्रोन–ए–ए–सर्विस' प्रदाताओं, मैपिंग और सर्वेक्षण विशेषज्ञों, तथा एग्री–टेक सलाहकारों की मांग बढ़ी है। इसके अतिरिक्त, ड्रोन असेंबली, रखरखाव, मरम्मत और सॉफ्टवेयर विकास से जुड़े उद्यम भी रोजगार सृजन कर रहे हैं। सरकार द्वारा संचालित प्रशिक्षण कार्यक्रम और निजी संस्थान ड्रोन संचालन में प्रमाणन प्रदान कर युवाओं को स्वरोजगार के साथ–साथ विभिन्न उद्योगों में रोजगार योग्य बना रहे हैं। इस प्रकार, ड्रोन प्रौद्योगिकी न केवल दक्षता ला रही है बल्कि एक पूर्ण नया रोजगार पारिस्थितिकी तंत्र भी विकसित कर रही है।

भारत में उपलब्ध प्रमुख कृषि ड्रोन

भारत में कृषि ड्रोन का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है और अब बाजार में किसानों की आवश्यकता के अनुसार किफायती ड्रोन उपलब्ध हैं।

- **केसीआई हेक्साकॉप्टर (मोड–2 कार्बन फाइबर ड्रोन):** एनालॉग कैमरे, 10 लीटर क्षमता, कीमत लगभग 3.6 लाख रुपये।
- **एस–550 स्प्रे ड्रोन:** 10 लीटर क्षमता, एक एकड़ भूमि में 10 मिनट में छिड़काव, वाटरप्रूफ, कीमत 4.5–5.0 लाख रुपये।
- **केटी–डॉन ड्रोन:** 10–100 लीटर क्षमता, क्लाउड–आधारित प्रबंधन प्रणाली, कीमत लगभग 3 लाख रुपये से प्रारंभ। ड्रोन को मैप प्लानिंग फंक्शन और हैंडहेल्ड स्टेशन के साथ डिजाइन किया गया है।
- **आईजी ड्रोन एग्री:** 5–20 लीटर छिड़काव क्षमता, उच्च गति, कीमत लगभग 4 लाख रुपये।

ड्रोन अपनाने की प्रमुख चुनौतियाँ

ड्रोन तकनीक कृषि के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो रही है, किंतु इसके व्यापक प्रसार के लिए कुछ व्यावहारिक चुनौतियों का समाधान आवश्यक है:

- **नियामक ढांचा:** सबसे पहली चुनौती नियामक ढांचे की है। ड्रोन संचालन, उड़ान अनुमति तथा ड्रोन के माध्यम से उपयोग किए जाने वाले कीटनाशकों के लिए स्पष्ट और सरल दिशानिर्देशों की आवश्यकता है, ताकि किसान बिना भ्रम के इस तकनीक को अपना सकें।
- **सीमित उड़ान समय:** दूसरी प्रमुख समस्या सीमित उड़ान समय है। अधिक भार वहन करने के कारण ड्रोन की उड़ान अवधि कम होती है, जिससे संचालन लागत बढ़ जाती है। इस दिशा में हल्की, टिकाऊ और उच्च क्षमता वाली बैटरियों के विकास पर अनुसंधान को बढ़ावा देना आवश्यक है।
- **आर्थिक मॉडल:** इसके अतिरिक्त, आर्थिक पक्ष भी एक बड़ी चुनौती है। छोटे और सीमांत किसानों के लिए ड्रोन खरीदना कठिन हो सकता है। ऐसे में सरकारी प्रोत्साहन, अनुदान तथा किराए पर ड्रोन उपलब्ध कराने जैसे सेवा–आधारित मॉडल इस तकनीक को सुलभ बना सकते हैं।

संरक्षित कृषि प्रणाली में कृत्रिम बुद्धिमत्ता के लाभ

कृत्रिम बुद्धिमत्ता कृषि को अधिक स्मार्ट और टिकाऊ बनाने में सहायक है। इसके प्रमुख लाभ हैं:

- बेहतर और समयबद्ध निर्णय
- जल, उर्वरक एवं कीटनाशकों का कम उपयोग

- लागत में कमी और लाभप्रदता में वृद्धि
- फसल स्वास्थ्य एवं गुणवत्ता में सुधार
- आपूर्ति श्रृंखला का कुशल प्रबंधन
- उत्पादकता और संसाधन–दक्षता में वृद्धि

संरक्षित कृषि प्रणाली में ड्रोन एवं एआई की बढ़ती भूमिका

संरक्षित कृषि प्रणाली में ड्रोन और एआई की भूमिका महत्वपूर्ण है। सटीक निगरानी एवं विश्लेषण के अंतर्गत, उच्च–रिज़ॉल्यूशन कैमरों और सेंसर से युक्त ड्रोन पौधों की वृद्धि, पोषक तत्वों की स्थिति, जल तनाव तथा रोगों के शुरुआती लक्षणों की पहचान कर सकते हैं। एआई इन आंकड़ों का विश्लेषण कर फसल की स्वास्थ्य स्थिति की वास्तविक समय में जानकारी उपलब्ध कराता है। सटीक छिड़काव एवं अनुप्रयोग के माध्यम से ड्रोन स्थान–विशिष्ट और नियंत्रित मात्रा में उर्वरक, कीटनाशक या जैविक उत्पादों का छिड़काव करते हैं। इससे रसायनों की बचत होती है, श्रमिकों के स्वास्थ्य पर जोखिम कम होता है और पर्यावरणीय प्रदूषण न्यूनतम रहता है। कुछ परिस्थितियों में परागण सहायता के लिए ड्रोन के प्रयोग भी किए जा रहे हैं, जो बंद संरक्षित वातावरण में उत्पादन बढ़ाने में सहायक हो सकते हैं। वहीं कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित पूर्वानुमान प्रणाली ऐतिहासिक और वास्तविक समय के डेटा के आधार पर कीट–रोग प्रकोप, उत्पादन स्तर और जोखिमों का पूर्वानुमान लगाकर किसानों को समय रहते निवारक कदम उठाने में सक्षम बनाती है।

ड्रोन और कृत्रिम बुद्धिमत्ता अपनाने की राह में चुनौतियाँ एवं समाधान

ड्रोन और एआई तकनीक के लाभ स्पष्ट हैं। परंतु, इनके व्यापक उपयोग में कुछ बाधाएँ अवश्य हैं, जिनका समाधान समय की मांग है:

1. **नियामक तंत्र एवं अनुमोदन:** सबसे पहले, नियामक तंत्र और अनुमोदन प्रक्रिया को सरल, पारदर्शी और त्वरित बनाना होगा, विशेषकर एरियल स्प्रेइंग और कीटनाशक अनुमोदन के संदर्भ में। ड्रोन के माध्यम से उपयोग के लिए कीटनाशकों के लेबल विस्तार की प्रक्रिया को सरल एवं तेज करना होगा, ताकि किसानों को जल्द से जल्द इसका लाभ मिल सके।

2. **तकनीकी सीमाएँ:** ड्रोन की उड़ान अवधि (20–60 मिनट) और सीमा सीमित होती है, जिससे बड़े क्षेत्रों में संचालन चुनौतीपूर्ण है। इसके लिए हल्की व उच्च क्षमता की बैटरी के विकास पर अनुसंधान को बढ़ावा देने की आवश्यकता है। इसके अलावा, इंटरनेट कनेक्टिविटी की कमी और प्रतिकूल मौसम की स्थितियाँ भी सीमाएँ खड़ी करती हैं।

3. **आर्थिक बाधाएँ एवं व्यवसायिक मॉडल:** ड्रोन प्रौद्योगिकी की उच्च प्रारंभिक लागत, विशेष रूप से छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए, एक बड़ी बाधा है। सरकारी सब्सिडी, किराए–पर–सेवा (ड्रोन–ए–सर्विस) मॉडल और सहकारी समितियों के माध्यम से सामूहिक स्वामित्व जैसे प्रभावी वाणिज्यिक मॉडल विकसित करने की आवश्यकता है।

4. **ज्ञान एवं कौशल की कमी:** ड्रोन संचालन, रखरखाव और एकत्रित डेटा के विश्लेषण के लिए विशेष कौशल की आवश्यकता होती है। प्रशिक्षित पायलटों की कमी एक बड़ी चुनौती है। किसान प्रशिक्षण कार्यक्रमों, एफपीओ स्तर पर कौशल विकास और स्थानीय युवाओं को प्रोत्साहन द्वारा इस अंतर को पाटा जा सकता है।

5. **अन्य प्रमुख चुनौतियाँ:** अन्य महत्वपूर्ण पहलुओं में डेटा सुरक्षा, गोपनीयता, आयात पर निर्भरता कम करने के लिए स्वदेशी निर्माण को बढ़ावा देना और पर्यावरणीय सुरक्षा के लिए स्पष्ट दिशा–निर्देश शामिल हैं।

निष्कर्ष

ड्रोन और कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित तकनीकें संरक्षित कृषि प्रणाली को अधिक उत्पादक, लाभकारी और पर्यावरण–अनुकूल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। इनके माध्यम से न केवल खेती की लागत घटती है, बल्कि प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण भी सुनिश्चित होता है। यदि सरकार, निजी क्षेत्र और किसान मिलकर इन तकनीकों को अपनाने हेतु अनुकूल नीतियां, प्रशिक्षण और वित्तीय सहयोग प्रदान करें, तो भारत आधुनिक और जलवायु–स्मार्ट कृषि के क्षेत्र में वैश्विक नेतृत्व स्थापित कर सकता है।

ड्रोन और कृत्रिम बुद्धिमत्ता संरक्षित कृषि की क्षमता को पूरी तरह से उजागर करने की कुंजी हैं। हालाँकि चुनौतियाँ विद्यमान हैं, लेकिन सरकार, उद्योग, अनुसंधान संस्थानों और किसानों के सहयोग से इन पर विजय पाई जा सकती है। एक मजबूत नियामक ढांचा, लागत प्रभावी समाधान, व्यापक प्रशिक्षण और जागरूकता अभियान के माध्यम से हम इस अत्याधुनिक तकनीक को देश के संरक्षित कृषि क्षेत्र की सतत और लाभकारी वृद्धि का आधार बना सकते हैं। यह तकनीक न केवल उत्पादन बढ़ाएगी, बल्कि संसाधनों के उचित उपयोग से टिकाऊ और लाभप्रद कृषि का मार्ग भी प्रशस्त करेगी।

समाप्त

18

अर्चना उदय सिंह[1] एवं ओम प्रकाश[2]
[1]सूत्रकृमि विज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली – 110012
[2]कृषि प्रसार संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली – 110012
Email: archiessingh62@gmail.com

कृषि में महिलाओं की भूमिका

भारत को विकासित राष्ट्र बनाने के लिए ग्रामीण भारत का सशक्त होना अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि यही कृषि क्षेत्र की रीढ़ है। निरंतर विकास और समावेशी प्रगति के लिए यह अनिवार्य है कि महिलाओं और लड़कियों के अधिकारों को हर स्तर पर सुनिश्चित किया जाए। भारत की अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से कृषि पर आधारित है, जहाँ महिलाएँ खेतों में पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर कार्य करती हैं। हाल के वर्षों में ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर पुरुषों के बढ़ते पलायन ने यह स्पष्ट कर दिया है कि महिलाएँ अब केवल सहायक नहीं, बल्कि किसान, श्रमिक और उद्यमी के रूप में कृषि क्षेत्र का नेतृत्व कर रही हैं। इसके बावजूद, कृषि क्षेत्र में व्याप्त सामाजिक रूढ़ियाँ और संरचनात्मक चुनौतियाँ आज भी महिलाओं की पूर्ण भागीदारी में बाधा बनी हुई हैं। ग्रामीण समाज में आज भी महिलाओं से यह अपेक्षा की जाती है कि वे घरेलू जिम्मेदारियों तक सीमित रहें और पुरुष सदस्यों की सहायक भूमिका निभाएँ। पुरुष–प्रधान सामाजिक संरचना के कारण महिलाओं की क्षमता और योगदान को अक्सर कम आँका जाता है, जिसके परिणामस्वरूप वे अपनी पूरी कार्यक्षमता का उपयोग नहीं कर पातीं।

कृषि कार्यों में महिलाओं की व्यापक भागीदारी

भारतीय कृषि व्यवस्था में महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। ग्रामीण महिलाएँ अपनी सामाजिक–आर्थिक स्थिति और क्षेत्रीय परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न रूपों में कृषि गतिविधियों से जुड़ी रहती हैं। खेत की तैयारी से लेकर बीज चयन, बुवाई (चित्र 1), खाद–उर्वरक एवं कीटनाशकों का प्रयोग, कटाई, जुताई और थ्रेसिंग जैसे लगभग सभी कृषि कार्यों में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी रहती है। इसके अतिरिक्त पशुपालन, मत्स्य पालन, सब्जी और फूलों की खेती जैसे क्षेत्रों में महिलाओं की भूमिका और भी अधिक प्रमुख है। राष्ट्रीय स्तर के सर्वेक्षणों के अनुसार लगभग 65 प्रतिशत ग्रामीण महिलाएँ खेती या खेतिहर मजदूरी के माध्यम से कृषि पर निर्भर हैं। काम की अनिश्चितता के कारण अनेक महिलाओं को एक साथ कई भूमिकाएँ एक ही समय में निभानी पड़ती हैं – जैसे खेतिहर मजदूर, पशुपालन कर्मी, वनोपज संग्रहकर्ता और प्रवासी श्रमिक।

कृषि का "महिलाकरण" और संसाधनों की असमान पहुँच

वर्तमान समय में कृषि का "महिलाकरण" हो रहा है, जहाँ किसान, उद्यमी और मजदूर के रूप में महिलाओं की संख्या लगातार बढ़ रही है। ग्रामीण महिलाएँ भूमि, जल और वनों जैसे प्राकृतिक संसाधनों का एकीकृत प्रबंधन कर घरेलू और कृषि आवश्यकताओं को पूरा करती हैं। इसके बावजूद महिला किसानों की भूमि, जल, ऋण, आधुनिक तकनीक और प्रशिक्षण तक पहुँच सीमित है। संसाधनों पर महिलाओं के अधिकार सुदृढ़ किए बिना न तो कृषि उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है और न ही सतत विकास संभव है। विशेष रूप से भूमि, बीज, ऋण और बाजार तक महिलाओं की असमान पहुँच पर तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है।

कृषि क्षेत्र में महिलाओं को कार्यभार, मजदूरी और अदृश्य श्रम

कृषि क्षेत्र में महिलाओं को अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ता है। वैश्विक स्तर पर कृषि श्रम शक्ति में महिलाओं की भागीदारी लगभग 43 प्रतिशत है, लेकिन ग्रामीण महिलाओं पर कार्यभार अपेक्षाकृत अधिक होता है। कृषि कार्यों के

साथ–साथ भोजन पकाना, ईंधन और पानी एकत्र करना जैसी अवैतनिक घरेलू जिम्मेदारियाँ भी मुख्यतः महिलाओं पर ही होती हैं। हालाँकि कृषि और खाद्य उत्पादन में महिलाओं का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है, फिर भी समान कार्य के लिए उन्हें पुरुषों की तुलना में कम मजदूरी मिलती है। फल, सब्जी और कट–फ्लावर जैसे उच्च मूल्य वाले क्षेत्रों में महिलाएँ उत्पादन से लेकर विपणन तक अहम भूमिका निभाती हैं, लेकिन उनका श्रम अक्सर अदृश्य रह जाता है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि महिलाओं के बिना कृषि क्षेत्र की कल्पना ही नहीं की जा सकती। खेत की तैयारी से लेकर बीज चयन, बुवाई, खाद–उर्वरक एवं कीटनाशकों का प्रयोग, कटाई, जुताई और थ्रेसिंग जैसे लगभग सभी कार्यों में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी रहती है। इसके अतिरिक्त पशुपालन, मत्स्य पालन, सब्जी और फूलों की खेती जैसे क्षेत्रों में तो महिलाओं की भूमिका और भी अधिक प्रमुख है।

चित्र 1: बुआई के लिए खेत की तैयारी में महिलाएँ

कृषि मूल्य श्रृंखला में महिलाओं की भूमिका

कृषि मूल्य श्रृंखला के सभी चरणों–उत्पादन, कटाई–पूर्व, कटाई–पश्चात् प्रसंस्करण, पैकेजिंग और विपणन में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी को देखते हुए, कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए लिंग–संवेदनशील हस्तक्षेप अनिवार्य हैं। ग्रामीण परिवर्तन की प्रक्रिया में महिलाओं को केवल लाभार्थी नहीं, बल्कि सक्रिय भागीदार और नेतृत्वकर्ता के रूप में शामिल किया जाना चाहिए। ग्रामीण महिलाएँ सामान्यतः तीन रूपों में कृषि गतिविधियों से जुड़ी रहती हैं:

- वेतनभोगी कृषि मजदूर के रूप में
- अपनी भूमि पर कृषक के रूप में
- कटाई पश्चात् कार्यों और श्रम पर्यवेक्षण के माध्यम से प्रबंधक के रूप में

महिलाओं द्वारा की जाने वाली प्रमुख कृषि गतिविधियाँ हैं:

- बुआई, नर्सरी प्रबंधन, रोपाई, निराई, सिंचाई, उर्वरक एवं पौध संरक्षण (चित्र 2)
- कटाई, तोड़ाई, भंडारण और प्रसंस्करण (चित्र 3)

पशुपालन और आजीविका सुरक्षा

पशुधन ग्रामीण महिलाओं की आजीविका का एक प्रमुख आधार है। पशुओं की देखभाल, दुग्ध उत्पादन, गोबर प्रबंधन और चारा संग्रहण जैसे अधिकांश कार्य महिलाओं द्वारा किए जाते हैं। चराई को छोड़कर लगभग सभी पशुधन प्रबंधन गतिविधियाँ महिलाओं के जिम्मे होती हैं। इसी प्रकार घरेलू स्तर पर मुर्गीपालन में भी महिलाओं की केंद्रीय भूमिका है, जो ग्रामीण आय और पोषण सुरक्षा में महत्वपूर्ण योगदान देती है।

चित्र 2: धान की रोपाई में भाग लेती महिलाएँ

डिजिटल सशक्तिकरण और बाजार तक पहुँच

डिजिटल युग में यह सकारात्मक संकेत है कि महिला किसान कृषि संबंधी जानकारी के लिए मोबाइल फोन और डिजिटल माध्यमों का तेजी से उपयोग कर रही हैं। उन्नत कृषि पद्धतियों, तकनीकी ज्ञान और बाजार से जुड़ाव के माध्यम से महिलाओं की आय और आत्मनिर्भरता बढ़ाई जा सकती है। हालाँकि सूचना और नेटवर्क की सीमित पहुँच के कारण महिलाएँ अक्सर बेहतर व्यापारिक अवसरों से वंचित रह जाती हैं और अपने उत्पाद बिचौलियों को कम कीमत पर बेचने को मजबूर होती हैं। बाजारों में प्रकाश व्यवस्था, सुरक्षा और महिलाओं के लिए मूलभूत सुविधाओं में सुधार से उनकी भागीदारी धीरे–धीरे बढ़ रही है।

चित्र 3: गेंदे के फूल की कटाई में महिलाओं की भागीदारी

नीतिगत पहल और आगे की राह

महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए सरकार द्वारा शिक्षा, प्रशिक्षण और कौशल विकास से जुड़ी अनेक योजनाएँ चलाई जा रही हैं। नारी शक्ति पुरस्कार और स्टेप जैसे कार्यक्रम इसके उदाहरण हैं। कृषि संगठनों और संस्थानों को भी महिलाओं की उपलब्धियों को पहचानकर उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए, ताकि वे अन्य महिलाओं के लिए प्रेरणास्रोत बन सकें।

निष्कर्ष

सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता यह है कि महिलाओं को केवल सहायक श्रमिक नहीं, बल्कि किसान के रूप में मान्यता दी जाए। सुरक्षित और दस्तावेजीकृत भूमि अधिकारों के बिना महिला किसानों को कृषि आदानों, ऋण और सरकारी योजनाओं का पूरा लाभ नहीं मिल पाता। फिलीपींस, थाईलैंड और वियतनाम जैसे देशों में महिलाओं को आर्थिक रूप से समान दर्जा मिलने से कृषि व्यवसायों में उनकी नेतृत्वकारी भूमिका बढ़ी है। यदि भारत में भी महिलाओं को समान अवसर, संसाधनों तक पहुँच और निर्णय–निर्माण में भागीदारी दी जाए, तो कृषि क्षेत्र अधिक उत्पादक, समावेशी और टिकाऊ बन सकता है।

समाप्त

19

राहुल सिंह पन्नू[1], प्रदीप फोगाट[1] एवं राजकुमार जागलान[1]
[1]आईसीएआर–केंद्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल 132001
Email: rahulsinghpannu9@gmail.com

बदलते भारत की बदलती खेती: धान की यांत्रिक रोपाई की दिशा में एक कदम

विश्व में धान एक महत्त्वपूर्ण खाद्यान्न फसल है और विश्व का लगभग 26 प्रतिशत (125.04 मिलियन टन) उत्पादन भारत में होता है। विश्व के कुल धान उत्पादन का लगभग 90 प्रतिशत उत्पादन एवं उपयोग एशिया महाद्वीप में होता है। दुनिया में चीन के बाद भारत धान का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक और उपभोक्ता देश है। भारत की आबादी के 65 प्रतिशत से अधिक लोगों का मुख्य भोजन धान है तथा यह कुल फसल क्षेत्र के लगभग 30 प्रतिशत क्षेत्रफल पर उगाया जाता है। भारत में धान की उत्पादकता में हरित क्रांति के बाद काफी वृद्धि हुई है, जिसका श्रेय कृषि वैज्ञानिकों द्वारा विकसित अधिक उपज देने वाली किस्मों, बेहतर प्रबंधन पैकेज, सिंचाई जल प्रबंधन एवं उर्वरकों की उचित खुराक को जाता है। लेकिन कुछ क्षेत्रों में धान की उत्पादकता में काफी उतार चढ़ाव होता रहता है, जिसके मुख्य कारण मिट्टी के प्रकार, मिट्टी की उर्वरता, वर्षा, बाढ़, जलमग्नता, जलवायु परिवर्तन आदि हैं।

दक्षिण–पूर्व एशिया में धान को वहाँ की पारिस्थितिकी तंत्र के अनुसार उगाया जाता है। धान की खेती भारत में 51.4 मिलियन हैक्टर में कई कृषि पारिस्थितिकी क्षेत्रों में प्रचलित है। इसकी विविधता को देखते हुए इसे चार पारिस्थितिकी प्रणालियों में समावेषित किया गया हैः

(1) सिंचित धान पारिस्थितिकी (26 मिलियन हैक्टर)

(2) वर्षा आधारित तराई धान पारिस्थितिकी प्रणाली (13 मिलियन हैक्टर)

(3) वर्षा आधारित अपलैंड धान पारिस्थितिकी प्रणाली (6 मिलियन हैक्टर)

(4) बाढ़ प्रवण धान पारिस्थितिकी प्रणाली (3 मिलियन हैक्टर)।

सिंचितधान पारिस्थितिकी प्रणाली, वैश्विक धान उत्पादन में 75 प्रतिशत योगदान करती है।

धान की रोपाई

हरियाणा, पंजाब एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश में धान–गेहूँ फसल प्रणाली को बहुतायत में अपनाया जाता है। हरियाणा, पंजाब एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश में भूमिगत जल स्तर लगभग 0.3–1.0 मीटर प्रति वर्ष की दर से नीचे जा रहा है, फिर भी यहाँ धान की खेती पारंपरिक विधि से की जा रही है। इन प्रदेशों में धान–गेहूँ फसल प्रणाली के अंतर्गत धान को कद्दू करके लगाने से फसल रोपाई में कृषि मजदूरों, पानी एवं उर्जा की अधिक आवश्यकता होती है जिस कारण उत्पादन खर्च बढ जाता है। धान–गेहूँ फसल प्रणाली में ज्यादा कद्दू करने से मृदा के भौतिक व रासायनिक गुणों पर भी विपरीत प्रभाव पड़ा है। वर्तमान शहरीकरण के दौर में कृषि के लिए मजदूरों की उपलब्धता दिनों–दिन घटती जा रही है। अतः ऐसे समय में हमें धान की रोपाई के वैकल्पिक तरीके (यांत्रिक रोपाई) पर ध्यान देने की जरूरत है।

धान में यांत्रिक रोपाई

भारत के उत्तर–पश्चिमी (हरियाणा, पंजाब एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश) में धान की खेती पारंपरिक तरीके से जलमग्न/पानी भरे

खेत में कद्दू करके रोपाई द्वारा की जाती है। धान की जल मांग को पूरा करने के लिए इसकी खेती में लगभग 200–250 सेंमी. पानी की आवश्यकता होती है तथा यह फसल अवधि के अनुसार घटती–बढ़ती रहती है। खेत को रोपाई योग्य बनाने या कद्दू करने, खेत तैयार करने तथा पौध उगाने के लिए क्रमशः 200–300,15–20 एवं 25–40 मि.मी. पानी की आवश्यकता होती है। कद्दू करने के लिये खेत में पानी भरकर बार–बार जुताई करने से पानी का रिसाव जमीन के अन्दर कम होता है परन्तु ऐसा करना मृदा संरचना को भी बिगाड़ता है जो कि धान की फसल के अनुकूल होते हैं, लेकिन अगली गैर धान फसल के लिए नुकसानदेह होता है। धान की रोपाई एक सघन मजदूर प्रक्रिया है। रोपाई के समय तुरन्त व सस्ते कारगर मजदूरों का मिलना एक बहुत बड़ा चिंता का विषय है। उत्तर–पश्चिमी प्रदेशों में खेतीहर मजदूरों की समय पर उपलब्धता की बड़ी किल्लत है। इसलिए, इस समस्या के समाधान हेतु बिना कद्दु किये कम मजदूरों एवं उर्जा की लागत तथा समय पर फसल की रोपाई को सुगम बनाने के लिये धान उत्पादन तकनीकों में बदलाव एवं नये अन्वेषण की आवश्यकता हुई। इन समस्याओं के लिये स्वचालित यांत्रिक मशीन जो बिना कद्दुकिये खेतों में आसानी से रोपाई करती है, एक कारगार समाधान हो सकता है।

इस रोपाई यंत्र की मदद से एक दिन में लगभग 1.5 से 2.0 हैक्टर क्षेत्र में रोपाई की जा सकती है जबकि इतने ही क्षेत्र की रोपाई के लिए लगभग 30–40 मजदूरों की आवश्यकता होती है। इस मशीन से धान की रोपाई एक वांछित अंतराल पर की जा सकती है। भारत में सिंधु–गंगा के मैदानी भागों में पायी जाने वाली मृदाओं में अधोसतह थोड़ी सख्त होती है, जिस कारण यह मशीन इन मृदाओं में बिना धंसे बडी सुगमता से चलती है। खेत में पानी देने के 3–4 घंटे के बाद इस मशीन द्वारा रोपाई की जा सकती है। खेत में बुआई के समय 1–2 सेंमी. से अधिक पानी खड़ा नहीं होना चाहिए। धान की मजदूरों द्वारा रोपाई एवं यांत्रिक रोपाई का विश्लेषण इस प्रकार है:–

तालिका 1: धान की बुआई के कार्यों का विवरण

कार्य विवरण	कद्दू करके मजदूरों द्वारा रोपाई	धान की यांत्रिक रोपाई
मजदूरी खर्च	रुपये 8000–10000 प्रति हैक्टर रुपये	2500–3000
सिंचाई जल की आवश्यकता	रोपाई के लिए लगभग 200–300 मि.मी.	लगभग 60–80 मि.मी.
नर्सरी खेत तैयार करने एवं पौधशाला उगाने हेतु पानी	लगभग 40–60 मि.मी.	लगभग 10–15 मि.मी.
रोपाई करते समय पौधे की आयु	सामान्य मृदाओं में 20–25 दिन	सामान्य मृदाओं में 20–22 दिन
डीजल की खपत	45–50 लीटर प्रति हैक्टर	5–10 लीटर प्रति हैक्टर
कतार व कतार के दूरी	अनियंत्रित	यांत्रिक रोपाई मशीन द्वारा नियंत्रित
मृदा पर प्रभाव	मृदा संरचना खराब होती है	मृदा संरचना पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता

कार्य विवरण	कददू करके मजदूरों द्वारा रोपाई	धान की यांत्रिक रोपाई
रोजगार के अवसर	समय पर मजदूरी की अनुपलब्धता के कारण जोखिम	यांत्रिक रोपाई के किराए की सेवाओं (सर्विस प्रोवाइडर) के कारण ग्रामीण युवाओं के लिए रोजगार व आय का स्रोत
फसल का पक्काव	एक समय पर रोपाई नहीं होने से फसल एक साथ नहीं पकती	एक समय पर रोपाई व कटाई के कारण फसल कटाई में आसानी
पौधशाला का क्षेत्रफल	500 वर्ग मीटर प्रति हैक्टर	100 वर्ग मीटर प्रति हैक्टर
पौधशाला की बीज दर	धान की सभी किस्मों के लिए 15–18 किग्रा प्रति हैक्टर	बासमती एवं नॉन बासमती किस्मों में 30–35 तथा संकर किस्मों में 22–25 किग्रा प्रति हैक्टर
उपज में वृद्धि	धान की यांत्रिक रोपाई के समतूल्य एवं कम में सार्थक	पारंपरिक विधि से 5–10 प्रतिशत अधिक सार्थक

धान की यांत्रिक रोपाई के लिए चटाईनुमा नर्सरी

चटाईनुमा नर्सरी तैयार करते समय निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए:–

- नर्सरी के लिए खेत में समतल जगह का चुनाव किया जाना चाहिए।
- चयनित स्थान पर प्लास्टिक शीट (100 माइक्रोन) को फैला देते है। इस शीट पर छेद कर दें ताकि शीट मृदा तल से सटकर रहे तथा मृदा में नमी एवं वायु का संचार ठीक बना रहे।
- मृदा मिश्रण तैयार करने के लिए खरपतवार बीज रहित मिट्टी को दोहरी परत वाली छलनी से छानकर गोबर की खाद या वर्मी कम्पोस्ट को 4:1 के अनुपात में मिलाकर प्लास्टिक शीट पर 1.5 से 2 सेंमी. मोटी परत को समान रूप से फैलाने के लिये एक लकड़ी का ढाँचा (5 मीटर लम्बा 1.2 मीटर चौडा व 2 सेंमी. गहरा) भी काम में ले सकते हैं।
- एक एकड़ रोपाई हेतु नर्सरी के लिए 1.2 मीटर चौडी व 10–12 मीटर लम्बी दो पट्टियों की जरूरत होती है।
- चटाईनुमा नर्सरी, रोपाई से 20–22 दिन पहले तैयार की जानी चाहिए।
- एक एकड़ की यांत्रिक रोपाई के लिये 12–14 किलोग्राम मोटे दाने वाली प्रजातियों व 10–12 किलोग्राम संकर किस्मों के बीज की जरूरत होती है।
- बीज को बुआई से पहले 10 ग्राम थाइरम तथा 1 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लीन प्रति 10 किलोग्रामबीज से उपचारित करते है।

- बीजों को बुआई से पूर्व 6–8 घंटे पानी में डुबोकर 15–20 घंटे छायादार स्थान पर नम जूट के बोरोंसे ढखकर अंकुरित (1–2 सेंमी. लंबाई के मूलांकुर) होने तक रखें।
- पूर्व अंकुरित बीजों को प्लास्टिक शीट पर फैलाये मिश्रण पर एक परत के रूप में फैला दें तथा उस पर मृदा की एक पतली परत चढ़ा देवें।
- नर्सरी तलों/पट्टियों की सिंचाई नन्हें फव्वारों या झारे से शुरू के 3–4 दिन तक 8–10 बार प्रतिदिन करें।
- 5 से 15 दिनों तक पानी नर्सरी तलों के बीच नालियों में भरें। रोपाई से 12 से 15 घंटे पहले सिंचाई बंद कर देनी चाहिए।
- नर्सरी में पोषक तत्व आमतौर पर मृदा व खाद के मिश्रण से ही पर्याप्त होते हैं, परन्तु आवश्यकतानुसार 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट एवं 2.5 प्रतिशत यूरिया का घोल बनाकर पत्तियों पर छिड़काव करना लाभप्रद रहता है।

यांत्रिक रोपाई: मशीन द्वारा धान की रोपाई

- धान यांत्रिक रोपाई मशीन के प्लेटफार्म पर एक पट्टी प्रति ट्रे के हिसाब से नर्सरी केक रखें।
- रोपाई शुरू करने से पहले खेत की एक दिशा की ओर मशीन के निकलने की जगह छोड़ें जिसमें मशीन को आसानी से घुमाया जा सके।
- खेत में मशीन को सीधी रेखा में चलायें तथा वापस घुमाने से पहले रोपी गई कतार के बराबर रोपाई करें।
- धान की यांत्रिक रोपाई मशीन में उपस्थित चिमटे पौध को चटाईनुमा नर्सरी के केक में से धान के पौधों को उठाकर ठीक उसी प्रकार लगाते हैं जैसे मजदूर रोपाई करता है।
- ट्रे में रखे सम्पूर्ण खण्ड में एक समान मिट्टी की परत एवं पौध की संख्या रोपाई की सघनता को नियंत्रित करती है। मशीन पर उपस्थित ट्रे में आवश्यकतानुसार नर्सरी केक रखते रहें एवं इनको ठीक से नियंत्रित करे।
- रोपाई के अंत में खेत के किनारों पर छोड़ी जगह में रोपाई करें जिसमें यंत्र को खेत से बाहर ले जाने में आसानी रहेगी।
- रोपाई के बाद रोपित क्षेत्र की ठीक से जाँच करें तथा यदि कोई खाली जगह रह गई है तो उसे दोबारा हाथ से रोपित कर दें ताकि उपज पर कोई प्रभाव ना पड़े।
- धान की उपयुक्त बढ़वार हेतु प्रतिदिन या एक दिन के अंतराल पर 5–7 दिनों तक हल्की सिंचाई करनीचाहिए ताकि पौधों का स्थापन ठीक से हो सके।

धान की यांत्रिक रोपाई करते समय ध्यान देने योग्य बातें

- आशानुरूप एवं अधिक उपज प्राप्त करने के लिए उत्तम बीजों का प्रयोग करें, जिससे बीज की लागतको कम किया जा सके, साथ ही समान अंकुरण एवं स्वस्थ पौध प्राप्त की जा सके।
- सावधानीपूर्वक पॉलिथीन शीट का इस्तेमाल करने से हम इसे 3–4 बार काम में लेकर लागत को कम कर सकते हैं।
- नर्सरी के शुरू में 3 से 5 दिनों तक फव्वारे से हल्की सिंचाई करें जिससे बीजों के बहने का खतरा कम रहे तथा

नर्सरी समतल बनी रहे जो एक समान रोपाई में मददगार साबित होती हैं।

- आवश्यकतानुसार नर्सरी में पोषक तत्वों का प्रबंधन करें, जैसे जिंक की कमी हेतु 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट, नाइट्रोजन की कमी होने पर 1.5 प्रतिशत यूरिया का घोल बनाकर छिड़काव करें।
- रोपाई के समय खेत में पानी का भराव लगभग 1–2 सेंमी. रखने के लिए खेत की 1 दिन पहले सिंचाई करें।
- निचली जमीन जहाँ पानी भरा रहता है वहां रोपाई मशीन का इस्तेमाल न करें।
- रोपाई के बाद खेत को संतृप्त स्थिति में रखें, न तो पानी भरा हो तथा न ही खेत सुखा हो।
- रोपाई करते समय मृदा का सतही स्तर समान एवं कार्य करने के योग्य होना चाहिए जिससे रोपाई मशीन ठीक चल सके तथा पौधों को मिट्टी का सहारा मिल सके।

निष्कर्ष

भारत के उत्तर–पश्चिमी क्षेत्र हरियाणा, पंजाब एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश में धान–गेहूँ फसल प्रणाली को पूरी तरह से संरक्षण खेती के दायरे में लाने के लिए धान की खेती में मशीन द्वारा यांत्रिक रोपाई करने की आवश्यकता है। धान की यांत्रिक रोपाई को अपनाने से न केवल रोपाई में संलग्न कृषि मजदूरों, खेत को कद्दू करने में उपयोग होने वाले सिंचाई जल, उर्जा खर्च को कम किया जा सकता है बल्कि अधिक उत्पादन भी लिया जा सकता है। यांत्रिक रोपाई को अपनाकर किसान अधिक आर्थिक उत्पादन प्राप्त कर सकता है। आने वाले समय में मजदूरों की समय पर अनुपलब्धता को ध्यान में रखते हुये सिंधु–गंगा के मैदानी इलाकों में जहाँ धान की पारंपरिक रूप से खेती की जाती है वहाँ इसकी अपार संभावनाएं नजर आती है।

समाप्त

20

भास्कर नरजारी[1], जितेंद्र कुमार[1]*, अर्जुन सिंह[2] और सत्येंद्र कुमार[1]
[1]भा.कृ.अनु.स.–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
[2]भा.कृ.अनु.स.–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रिय अनुसंधान केंद्र, लखनऊ (उ.प्र.)
*E-mail: jitendra.cssri@gmail.com

कृषि में प्लास्टिक तकनीक की उपयोगिता

कृषि में प्लास्टिक का प्रयोग लगातार बढ़ता जा रहा है। विशेषकर संरक्षित खेती, टपकदार सिंचाई, मल्चिग, जिसको हम पलवार बोलते है। लेकिन प्लास्टिक एक वरदान भी है और अभिशाप भी है। ये हमारे ऊपर निर्भर करता है कि हमें उसे कैसे इस्तेमाल करते है। प्लास्टिक का प्रबन्धन करना संभव है,जो कृषि की उत्पादकता बढ़ाने के लिए उपयोग हो रही है। प्लास्टिकपलवार का सिचाई जल की उत्पादकता बढ़ाने में प्रयोग हो रहा है और जो प्लास्टिक ड्रिप सिंचाई और संरक्षित खेती में उपयोग की जाती है वो लगभग पाँच साल तक उपयोग की जाती है। मल्चिग से प्रतिकूल परिस्थितियों में भी फसल उत्पादन कर सकते है। जैसे कि सर्दियों के दिनों में पाले के हानिकारक प्रभाव को कम करने के लिये फसल पर मल्चिग पॉलीहाउस का उपयोग कर किसान अधिकतम उत्पादन ले सकते है। मृदा नमी को संरक्षित करने तथा खरपतवार की रोकथाम के लिए प्लास्टिक फिल्म से पौधों के आसपास की मिट्टी को ढक देने तथा मृदा तापमान को संशोधित करने को पलवार (मल्चिंग) कहते हैं। मल्चिग करने मृदा से होने वाला जल का वाष्पीकरण घट जाता है और मिट्टी का तापमान एक समान बना रहता है। मल्चिग का प्रयोग आसान तो है साथ ही इसके कई फायदे भी है। जैसे की जड़ों का विकास, पानी की बचत और जमीन को कठोर होने से बचाया जा सकता है और पलवार के प्रयोग से पौधों के विकास के लिये अनुकूल वातावरण बनता है तथा बीज का जल्दी अंकुरण और उपज बढ़ाने में अहम भूमिका होती है।

भारत में अधिकतर क्षेत्रों में सतही सिंचाई होती है। इसमें नहरों से कच्ची नालियों द्वारा खेत में पानी दिया जाता है व उस पानी को एक किनारे से खेत में छोडा जाता है। सतही सिंचाई प्रणाली में यदि ऊँचे नीचे खेतों को अच्छी तरह से समतल या हल्का सा ढाल दे दिया जाए तो पानी की कम खपत होगी, पूरे खेत में समान गहराई तक पानी लगेगा और उत्पादन भी अधिक प्राप्त होगा। सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली मे फव्वारा और ड्रिप दो नई और उन्नत सिंचाई विधियाँ हैं जिनके प्रयोग से सिंचाई जल की पर्याप्त बचत की जा सकती है। ये विधियाँ मृदा के प्रकार, खेत के ढाल, जल के श्रोत और किसान की योग्यता के अनुसार अधिकतर फसलों के लिये अपनायी जा सकती है। ड्रिप सिंचाई कम दबाव तथा अधिक आवृति वाला ऐसा सिचाई तंत्र है, जिससे जल को पौधों की वास्तविक जल मांग के अनुसार उचित समय पर उनके प्रभावी जड़ क्षेत्र में जल दिया जाता है। इस पद्धति में पानी, प्लास्टिक की नलियों के द्वारा जल श्रोत से पौधों की जड़ो तक विशेश प्रकार की उत्सर्जनक युक्ति (ड्रिपर्स, माइक्रोस्प्रिकंलर, माइक्रो स्प्रेयर) द्वारा नियंत्रित मात्रा में पहुंचायी जाती है। ड्रिप सिंचाई के द्वारा पौधों को आवश्यकता अनुसार जल दिया जा सकता है। इस प्रकार ड्रिप सिंचाई द्वारा जल की विभिन्न प्रकार की पारम्परिक हानियों जैसे गहन रिसाव अप्रवाह तथा मृदा वाष्पीकरण आदि से बचा जा सकता है। फसल की अच्छी पैदावार के लिये उर्वरकों व कीटनाशकों तथा जल में घुलनशील अन्य रसायनों का उपयोग भी उचित एवं मितव्ययी दर से किया जा सकता है। ड्रिप सिंचाई के द्वारा 30–40 प्रतिशत तक उर्वरक की बचत, 60 प्रतिशत तक जल की बचत के साथ उपज में 100 प्रतिशत तक वृद्धि हो सकती है। फसलों की पैदावार बढ़ाने के साथ–साथ गुणवत्ता रसायन और उर्वरकी का दक्ष उपयोग जल के विक्षालन एवं अप्रवाह में कमी, खरपतवारों में कमी और जल की बचत सुनिचश्रित की जाती है।

प्लास्टिकल्चर की अवधारणा एवं प्रयुक्त पॉलिमर

'प्लास्टिकल्चर' शब्द कृषि, बागवानी, जल–प्रबन्धन तथा समस्त संबन्धित क्षेत्रों में प्लास्टिक के अनुप्रयोगों/उपयोगों का प्रतिनिधित्व करता है। इसमें प्लास्टिक उत्पादों जैसेः प्लास्टिक फिल्म (शीट), प्लास्टिक पाइप (ट्यूब), नेट (जाल) के साथ–साथ अन्य विभिन्न प्रकार के उत्पादों का अनुप्रयोग प्लास्टिकल्चर में हो रहा है। प्लास्टिकल्चर का उनुप्रयोग व्यावसायिक रूप मे कृषि व उसके सहयोगी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहें हैं जिसमें नर्सरी बैग, गमले (पॉट), बाल्टी, प्रो–ट्रे, तालाब तथा जलाशय के अस्तर, टपक (ड्रिप) तथा छिड़काव (स्प्रिंकलर) सिंचाई पद्धति, पलवार (मल्चिंग) हरित–गृह

(ग्रीन हाउस), लो–टनल (पॉली टनल), छायादार जाल (शेडनेट), पक्षी रोधी नेट, कीट रोधी नेट, ओला रोधक–नेट, चाहरदीवारी जाल, प्लास्टिक ट्रे, बॉक्स, क्रेट, लीनों बैग आदि शामिल हैं।

प्लास्टिकल्चर अनुप्रयोग अनेक लाभ प्रदान करता है और अप्रत्यक्ष कृषि निवेश का अति महत्वपूर्ण घटक है जिसके द्वारा नमी संरक्षण, पानी की बचत, उर्वरक खपत में कमी, जल और पोशक तत्वों के सुनियोजित उपयोग करने में मदद प्रदान करता है। नियंत्रित पर्यावरण कृषि को आर्थिक रूप से व्यवहारिक बनाने, नेट का उपयोग पादप संरक्षण तथा नवीन पैकेजिंग समाधान के प्रयोग से फलों और सब्जियों के जीवन (शैल्फ लाइफ) को संग्रहण, भंडारण व आवागमन के दौरान उपज के रख–रखाव में मदद मिलती है। यह तकनीक जल की बर्बादी को न्यूनतम करने, भूजल दोहन में कमी लाने, जल अनुप्रयोग दक्षता बढ़ाने तथा बाह्य प्रदूषण की संभावनाओं को कम करने में सहायक है। प्लास्टिकल्चर में प्रमुख रूप से प्रयुक्त सिंथेटिक पॉलिमर में पॉली विनाइल क्लोराइड, पॉलीप्रोपाइलीन, पॉलीएथिलीन तथा नायलॉन सम्मिलित हैं। इनमें से पॉलीप्रोपाइलीन एवं पॉलीएथिलीनका उपयोग पुनर्चक्रित प्लास्टिक उत्पादों के निर्माण में व्यापक रूप से किया जाता है। कृषि क्षेत्र में सामान्यतः पाइप, लो–डेंसिटी पॉलीएथिलीन, लीनियर लो–डेंसिटी पॉलीएथिलीन, हाई–डेंसिटी पॉलीएथिलीन तथा पॉलीप्रोपाइलीन आधारित उत्पादों का प्रयोग किया जाता है।

तालिका 1: प्लास्टि कल्चर अनुप्रयोग में उपयोग किए जाने वाले पॉलिमर

अनुप्रयोग	पॉलीविनाइल क्लोराइड	निम्न घनत्व पॉलीएथिलीन	रेखीय निम्न घनत्व पॉलीएथिलीन	उच्च घनत्व पॉलीएथिलीन	पॉलीप्रोपाइलीन
ड्रिप सिंचाई	मुख्य / उप लाइनें –	–	लेटरल / एमिटिंग पाइप	स्क्रीन फ़िल्टर	ड्रिपर / एमिटर
	कंट्रोल वाल्व	–	माइक्रो ट्यूब	डिस्क फ़िल्टर	फिटिंग्स
स्प्रिंकलर सिंचाई	मुख्य / उप लाइनें	कनेक्टिंग लाइन	–	मुख्य / उप लाइनें	फिटिंग्स
	कंट्रोल वाल्व	–	–	नोज़ल	नोज़ल
तालाब लाइनर	–	–	–	–	तालाब लाइनिंग
मल्चिंग	–	–	यूवी फ़िल्म	–	नॉन–वोवन
भूमिगत जल निकास (सब–सरफेस ड्रेनेज)	कलेक्टर / लेटरल	–	–	कलेक्टर / लेटरल	ड्रेन एनवेलप

जल प्रबंधन में प्रमुख प्लास्टिकल्चर हस्तक्षेप में शामिल हैःक) खेत में पानी पहुंचाने के लिए भूमिगत पाइप लाइन, ख) ड्रिप और स्प्रिंकलर सिंचाई प्रणाली,ग) प्लास्टिक फिल्म के साथ नहरों, तालाबों और जलाशयों की लाइनिंग और घ) उप–सतह जल निकासी प्रणाली। जल उपयोग पर प्लास्टिकल्चर का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है और यह कीमती पानी की पर्याप्त मात्रा को बर्बादी से बचाता है (तालिका 2)।

तालिका 2: जल संरक्षण में प्लास्टिकल्वर का हस्तक्षेप

प्लास्टिक का अनुप्रयोग	विवरण
नहर, तालाबों और फील्ड चैनलों की लाइनिंग	रिसाव हानि को कम करता है। बिना लाइन वाले नहर नेटवर्क में लाया गया 75 प्रतिशत पानी रिसाव और वाष्पीकरण के रूप में रास्ते में नष्ट हो जाता है। जल पाठ्यक्रमों / चैनलों की प्लास्टिक लाइनिंग का उपयोग करके 10–15 प्रतिशत पानी बचाया जा सकता है।
जल परिवहन के लिए प्लास्टिक पाइप	खुले चैनल में पानी की हानि (30–35 प्रतिशत) को प्लास्टिक पाइप का उपयोग करके समाप्त किया जा सकता है और यदि भूमिगत बिछाया जाए, तो इससे 5–10 प्रतिशत भूमि की बचत होगी जिसके परिणामस्वरूप अधिक उत्पादन होगा।

प्लास्टिक का अनुप्रयोग	विवरण
	कृषि पंप सेटों में सक्शन और डिलीवरी में प्लास्टिक पाइप के उपयोग से स्टील पाइप के उपयोग की तुलना में 20–25 प्रतिशत ऊर्जा की बचत होती है।
सिंचाई उपकरण	ड्रिप सिंचाई प्रणाली सिंचाई जल के बेहतर उपयोग में मदद करती है। सामान्य तौर पर, सिंचाई जल का 20 प्रतिशत आम तौर पर जलाशयों और सिंचाई क्षेत्र/क्षेत्र के बीच बर्बाद हो जाता है, जो बचता है उसका 15 प्रतिशत वितरण में नष्ट हो जाता है और उसका भी 25 प्रतिशत खेत में बर्बाद हो जाता है। इस प्रकार, कुल मिलाकर, लगभग 40 प्रतिशत की दक्षता मिलती है। ड्रिप सिंचाई प्रणाली का उपयोग करके बर्बादी को कम किया जा सकता है।
पलवार	मिट्टी को प्लास्टिक फिल्म से ढकने से वाष्पीकरण दर कम होने से 25 प्रतिशत तक पानी की बचत होती है।

कृषि जल प्रबंधन में प्लास्टिकल्चर के प्रमुख हस्तक्षेप

कृषि जल प्रबंधन में प्लास्टिकल्चर के प्रमुख अनुप्रयोग निम्नलिखित हैं:

- खेतों में जल वहन हेतु भूमिगत पाइपलाइन प्रणाली
- ड्रिप एवं स्प्रिंकलर जैसी सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियाँ
- नहरों, तालाबों एवं जलाशयों की प्लास्टिक फिल्म द्वारा लाइनिंग
- जलभराव एवं लवणीयता नियंत्रण हेतु भूमिगत जल निकास प्रणाली
- पॉलीहाउस निर्माण में।

इन हस्तक्षेपों द्वारा जल हानियों में उल्लेखनीय कमी लाई जा सकती है तथा उपलब्ध जल संसाधनों का अधिकतम उपयोग सुनिश्चित किया जा सकता है।

भूमिगत पाइपलाइन वहन प्रणाली

भूमिगत पाइपलाइन वहन प्रणाली खेतों में सिंचाई जल के कुशल परिवहन हेतु एक प्रभावी विकल्प के रूप में विकसित हुई है। इस प्रणाली में जल स्रोत से खेत के विभिन्न भागों तक भूमिगत पाइपों का नेटवर्क स्थापित किया जाता है। स्थलाकृति के अनुसार यह प्रणाली गुरुत्व प्रवाह अथवा पंप द्वारा दाबित प्रवाह के माध्यम से कार्य करती है। सामान्यतः ट्यूबवेल की डिस्चार्ज क्षमता एवं जल उपलब्धता के आधार पर 125, 140, 160 अथवा 180 मिमी. व्यास की हाई–डेंसिटी पॉलीएथिलीन यापॉली विनाइल क्लोराइड पाइपों का उपयोग किया जाता है। प्रणाली के अपनाने से जल वहन एवं वितरण हानियों में कमी, कृषि योग्य भूमि में वृद्धि तथा उत्पादन क्षमता में सुधार संभव होता है।

लाइनिंग सामग्री के रूप में प्लास्टिक फिल्म

प्लास्टिक फिल्म (एग्री–फिल्म) का उपयोग नहरों, तालाबों एवं जलाशयों की लाइनिंग के लिए एक प्रभावी एवं किफायती समाधान प्रदान करता है। यह फिल्म जल को अभेद्य परत प्रदान कर रिसाव हानियों को प्रभावी रूप से रोकती है। पॉली विनाइल क्लोराइड एवं लो–डेंसिटी पॉलीएथिलीन फिल्मों का प्रयोग प्रायोगिक रूप से किया गया है, जिनमें लो–डेंसिटी पॉलीएथिलीन फिल्म को सर्वाधिक उपयुक्त एवं टिकाऊ पाया गया है।

प्लास्टिक फिल्म द्वारा खेत तालाबों की लाइनिंग

जलाशयों एवं खेत तालाबों में होने वाला रिसाव न केवल उपयोगी जल की हानि करता है, बल्कि तटबंध क्षति, जलभराव तथा समीपवर्ती क्षेत्रों में लवणता वृद्धि जैसी समस्याएँ भी उत्पन्न करता है। उपयुक्त प्लास्टिक लाइनिंग द्वारा इन समस्याओं को काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता है। 600 गेज (150 माइक्रॉन) मोटी प्लास्टिक फिल्म को लगभग 45 सेमी मोटी मिट्टी की परत से ढकना तकनीकी एवं आर्थिक दृष्टि से सर्वाधिक उपयुक्त पाया गया है।

भूमिगत जल निकास तकनीक

भूमिगत जल निकास तकनीक जलभराव एवं लवणीय सिंचित भूमियों के सुधार हेतु एक सिद्ध एवं प्रभावी उपाय है। इस प्रणाली में पॉली विनाइल क्लोराइड अथवा हाई–डेंसिटी पॉलीएथिलीन पाइपों का भूमिगत नेटवर्क स्थापित कर अतिरिक्त जल एवं घुले हुए लवणों को खेत से बाहर निकाला जाता है। इस प्रणाली में लैटरल ड्रेन्स, कलेक्टर ड्रेन्स, निरीक्षण कक्ष, सम्प वेल तथा मुख्य नालियाँ सम्मिलित होती हैं। प्लास्टिक पाइप हल्के, टिकाऊ, परिवहन एवं स्थापना में सरल तथा लागत की दृष्टि से किफायती होते हैं, जिससे इस तकनीक को व्यापक रूप से अपनाया जा रहा है (चित्र 1)। वर्तमान में, देश में यूपीवीसी (अन–प्लास्टिकाइज्ड पॉली विनाइल क्लोराइड) सिंगल वॉल कोरुगेटेड (एसडब्ल्यूसी) छिद्रित लचीले पाइप (80–355 मिमी. बाहरी व्यास) का व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। कलेक्टर पाइपों में गुरुत्वाकर्षण प्रवाह के तहत आउटलेट तक पानी पहुंचाने का परिवहन कार्य होता है, इसलिए कलेक्टरों के लिए गैर–छिद्रित यूपीवीसी नालीदार पाइप का उपयोग किया जाता है। अपेक्षित प्रवाह के आधार पर, कलेक्टरों के लिए पाइप का व्यास 10, 160, 200, 250, 294, 315 और 355 मिमी. है। हालाँकि, पूरी तरह से जलभराव की स्थिति में स्थापना के दौरान, जैसा कि हरियाणा और अन्य उत्तर–पश्चिमी राज्यों में होता है।

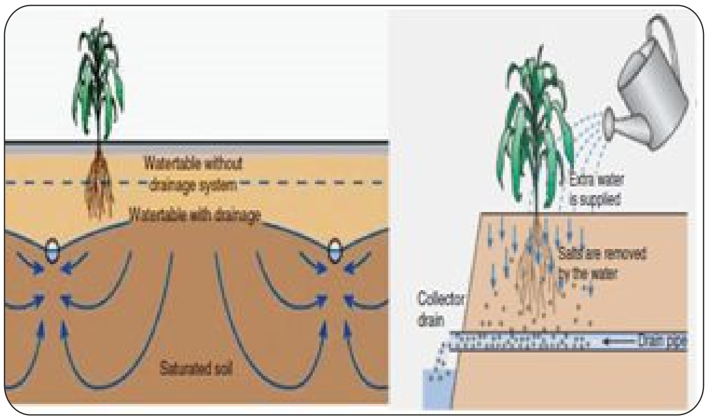

चित्र 1: सिंचित भूमि में एसएसडी प्रणाली।

भूमिगत पाइप लाइन परिवहन प्रणाली

अंडर ग्राउंड पाइप लाइन (यूजीपीएल) नेटवर्क जिसे दबी हुई पाइप लाइन के रूप में भी जाना जाता है, का उपयोग खेतों तक सिंचाई का पानी पहुंचाने के लिए तेजी से किया जा रहा है। इस प्रणाली में जल स्रोत से लेकर पूरे खेत के विभिन्न बिंदुओं तक दबे हुए पाइपों (जमीन के नीचे लगाए गए) का एक नेटवर्क तैयार किया जाता है। क्षेत्र की स्थलाकृति के आधार पर, यूजीपीएल प्रणाली गुरुत्वाकर्षण द्वारा या दबाव के साथ सिंचाई के पानी को एक स्रोत से खेत तक ले जा सकती है। ट्यूबवेल डिस्चार्ज या स्रोत पर पानी की उपलब्धता के आधार पर, सामान्य तौर पर, स्रोत से किसान के खेत तक पानी ले जाने के लिए 125/140/160/180 मिमी व्यास के एचडीपीई/पीवीसी पाइप का उपयोग किया जाता था। यूजीपीएल को अपनाने से जल परिवहन और वितरण हानि में कमी आती है, फसल उत्पादन के लिए अधिक क्षेत्र की उपलब्धता होती है। वे खेत के खंडित और अलग–थलग स्थानों और उन क्षेत्रों में जहां जमीन महंगी है, पानी पहुंचाने के लिए लहरदार स्थलाकृति के लिए आदर्श रूप से उपयुक्त हैं।

टपक/बूँद–बूँद सिंचाई

सिंचाई की इस नवीन पद्धति द्वारा उचित समय पर पौधों की वास्तविक जल मांग के अनुसार उनके प्रभावी जड़ क्षेत्र को सिंचा जाता है। इस पद्धति में पानी, प्लास्टिक की नलियों के द्वारा जल श्रोत से पौधों की जड़ो तक विशेष प्रकार की उत्सर्जनक युक्ति (ड्रिपर्स, माइक्रोस्प्रिकंलर, माइक्रो स्प्रेयर) द्वारा नियंत्रित मात्रा में पहुंचाया जाता है (चित्र 2)।

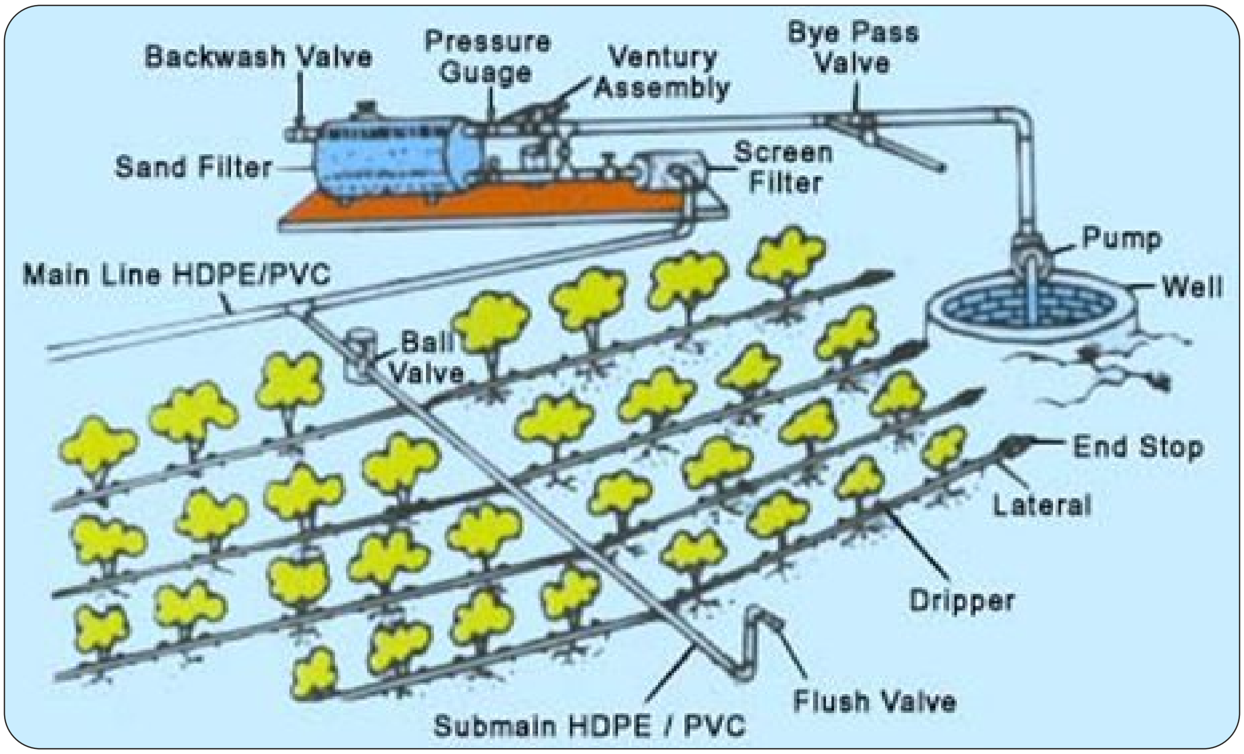

चित्र 2. टपक सिंचाई तंत्र

टपक सिंचाई तंत्र के विशिष्ट गुण

- बूँद–बूँद सिंचाई तंत्र द्वारा जल रिसाव व वाष्पन न होने के कारण परम्परागत सिंचाई विधियों की तुलना में 50 प्रतिशत से भी अधिक जल की बचत की जा सकती है (तालिका 3)।
- बूँद–बूँद सिंचाई में केवल मूल क्षेत्र ही गीला होता है जो कि फसल के वृद्धि के लिए अनुकूल दशा है। मूल क्षेत्र की सिंचाई के साथ–साथ पौधे के नीचे सूक्ष्म जलवायु भी उपयुक्त बन जाती है। बूँद–बूँद तंत्र द्वारा सूक्ष्म जलवायु ठंडी होने के साथ–साथ पाले के कुप्रभावों से भी बचाने में मदद मिलती है।
- ऊँची–नीची और ढलान वाले क्षेत्रों को बिना समतल किए हुए ड्रिप प्रणाली से सिंचित किया जा सकता है, और फलों वाली फसलों को सफलतापूर्वक लगाया जा सकता है। ऐसा करने से जमीन को समतल करने में आने वाले अतिरिक्त खर्च को भी बचाया जा सकता है।
- जल अनुप्रयोग पर उच्च स्तरीय नियन्त्रण ड्रिप सिंचाई द्वारा प्रदत्त मुख्य लाभों में से एक है। पानी की पूर्व सुनिश्चित मात्रा एवं नियत दरों पर यथार्थ एवं स्थानीय उपयोग सुनिश्चित होता है।
- जिन क्षेत्रों में अधेगत और सतही जल लवणीय होता है उन परिस्थितियों में बूँद–बूँद प्रणाली के द्वारा उच्च आवृत्ति की सिंचाई करके मृदा में उच्च जल धरण क्षमता तथा लवणों का जड़ो के निम्न सांद्रण, पौधे की अच्छी वृद्धि के लिए

सहायक है। 5.0 डेसीसाइमन प्रति मीटर विद्युत चालकता वाले जल से फूलगोभी और टमाटर को बूँद–बूँद प्रणाली से सिंचाई करने से 100 प्रतिशत उपज ली जा सकती है जबकि क्यारी विधि से सिंचाई करने से उक्त उपज 50 प्रतिशत से भी कम होती है (तालिका 3)।

- बूँद–बूँद सिंचाई द्वारा सूखे और दानेदार उर्वरकों को विलयन के रूप में सिंचाई जल के साथ प्रयोग किया जा सकता है ।
- बूँद–बूँद सिंचाई तन्त्र के द्वारा कीटनाशक और जीवनाशकों का प्रयोग मृदा जन्य बीमारियों तथा कीड़े–मकोड़ो को समाप्त करने के लिए उपयुक्त है।

सूक्ष्म सिंचाई पद्धति के अन्तर्गत निम्नलिखित फसलें सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है

(1) बागानी फसलें जैसे कि अंगूर, सन्तरा, सेब, अनार, केला, आम और अमरूद,

(2) सब्जियाँ जैसे कि टमाटर, काली मिर्च, खीरा, हरी मटर, फूलगोभी और भिण्डी,

(3) कतार और पास–पास बोई जाने वाली फसलें जैसे कि कपास, गन्ना, मूंगफली औरप्याज,

(4) अन्य जैसे कि बेर, फूल (रजनीगन्धा, गुलाब) और सजावट वाले तथा औशधी सम्बन्धी फसलें इत्यादि।

तलिका 3 : विभिन्न फसलों में सूक्ष्म (बूँद–बूँद) सिंचाई द्वारा पानी देने पर सतही विधि की तुलना में पानी की बचत एवं उपज में वृद्धि

क्रम सं.	फसल	पैदावार में वृद्धि (प्रतिशत)	पानी की बचत (प्रतिशत)
1	टमाटर	25–50	40–60
2.	गन्ना	50–60	30–50
3.	भिण्डी	25–40	20–30
4.	आलू	25–30	40–50
5.	गोभी	30–40	50–60
6.	बैंगन	20–30	40–60
7.	मिर्च	10–40	60–70
8.	लौकी	20–40	40–50
9.	फूलगोभी	60–80	30–40
10.	अनार	20–40	50–60
11.	गोभी	50–60	50–60
12.	सेम	55–60	30–40

पॉलीहाउस

पॉलीहाउस एक घरनुमा संरक्षित संरचना होती है जिसकों पराबैंगनी किरणों से प्रतिरोधी 200 माईक्रोन मोटाई वाली पारदर्शी पालीथीन के द्वारा ढ़का जाता है। यह पौधों के लिए सूक्ष्म वातावरण नियंत्रित करता है। इसमें वातायन की व्यवस्था रहता है और जिसके अन्दर वर्षभर, मौसम–बेमौसम, अगेती सब्जियों एवं फूलों की खेती और नर्सरी का उत्पादन किया जा सकता है। पॉलीहाउस का कार्य सिद्धान्तः– पॉलीहाउस ग्रीनहाउस सिद्धान्त पर कार्य करता है जिसमें सूर्य की किरणें पूरे दिन पारदर्शी पालीथीन से छनकर पॉलीहाउस के अन्दर आती रहती हैं। जिनकों पालीथीन अन्दर से रोकती रहती है जिससे बाहर की अपेक्षा पॉलीहाउस के अन्दर तापक्रम बढ़ता रहता है। यही ग्रीनहाउस का सिद्धान्त है। इसलिए पॉलीहाउस को ग्रीनहाउस भी कहते हैं।पॉलीहाउस बनाने की दिशाः– उत्तर से दक्षिण दिशा में बनाना चाहिए। जिससे दिन भर पौधों को धूप मिलती रहें

और तेज हवा से होने वाले नुकसान से बचा जा सकें। पॉलीहाउस बनाते समय छत एवं दीवार की तरफ कीटरोधी जाली से बना पर्दा लगाकर हवा का आदान प्रदान होने के लिए वेन्टीलेटर होने चाहिए जिससे बढ़े हुए तापक्रम को कम किया जा सकें। पॉलीहाउस संरचना बनाते समय छत का ढलान 30°–40° कोण का बनाना चाहिए जिससे बर्फवारी के बाद छतों पर बर्फ फिसल कर नीचे गिरती रहें। यदि छतों का ढलान कम रखा गया तो छतों पर बर्फ रूक जायेगी जिसके कारण छतों का वजन बढ़ जाएगा और संरचना गिर सकती है। इसलिए 1×1 वर्ग मी. छत के क्षेत्रफल पर 20–25 किग्रा. वजन सहने की क्षमता होनी चाहिए। यदि इन बातों का किसान भाई ध्यान नहीं रखेंगे तो उनको भारी नुकसान उठाना पड़ सकता है। पॉलीहाउस हमेशा उपजाऊ भूमि में एवं जल स्त्रोत के पास बनाना चाहिए तथा इसके आस–पास यातायात का साधन भी होना चाहिए। पॉलीहाउस छत से वर्षा जल संचयन एक स्मार्ट और सतत तकनीक है जो पॉलीहाउस की छत से गिरने वाले वर्षा जल को एकत्रित करके सिंचाई पॉलीहाउस के अंदर नमी नियंत्रण या अन्य कृषि उपयोगों के लिए इस्तेमाल करती है। वर्षा ऋतु के जल को कम लागत वाले पॉलिथीन टैंक मे संचय कर लिया जाए तो न सिर्फ पानी की उपलब्धता सुनिश्चित होगी बल्कि सिंचाई की समस्या को भी काफी हद तक सुलझाया जा सकता है।

चित्र 3: पॉलिथीन टैंक तथा पॉलीहाउस

निष्कर्ष

कृषि में प्लास्टिकल्चर का वैज्ञानिक एवं संतुलित उपयोग जल संरक्षण, जल उत्पादकता वृद्धि तथा किसानों की आय संवर्धन की दिशा में अत्यंत प्रभावी सिद्ध हुआ है। विभिन्न अध्ययनों से यह स्पष्ट है कि प्लास्टिकल्चर हस्तक्षेपों द्वारा पारंपरिक कृषि प्रणालियों की तुलना में 30–40 प्रतिशत तक जल की बचत तथा लगभग 20 प्रतिशत तक फसल उत्पादन में वृद्धि संभव है। यह तकनीक 'प्रति बूँद अधिक फसल' की अवधारणा को साकार करने में सहायक है तथा सतत् कृषि एवं खाद्य सुरक्षा की दिशा में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।जिस प्रकार हमारे माननीय प्रधानमंत्री जी ने स्वच्छ भारत अभियान को एक जन आंदोलन बनाया, उसी प्रकार प्लास्टिक के उचित प्रबंधन के लिए जनभागीदारी अत्यंत आवश्यक है। साथ ही, विद्यालयों के बच्चों को प्लास्टिक के सही उपयोग के बारे में जागरूक किया जाए तो यह एक अत्यंत सराहनीय एवं प्रभावी पहल सिद्ध होगी।

समाप्त

21

अश्वनी कुमार, राज कुमार एवं अवनी
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001

संस्थान के कृषि अनुसंधान एवं अन्य क्रियाकलापों में राजभाषा हिन्दी

राजभाषा हिन्दी को बढावा देने एवं कृषि अनुसंधान में वैज्ञानिकों, कर्मचारियों को प्रोत्साहित करने के लिए प्रत्येक वर्ष हिन्दी में अनेक गतिविधियाँ भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान में आयोजित की जाती है। वर्ष 2024–25 के दौरान आयोजित कुछ विशिष्ट कार्यक्रमों का कृषि किरण के इस अंक में प्रकाशन किया जा रहा है।

हिन्दी पखवाड़े का आयोजन

विगत वर्षों की भांति इस वर्ष भी केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान करनाल में 17 से 30 सितम्बर 2024 के मध्य हिन्दी पखवाडे का आयोजन किया गया। दिनांक 17 सितम्बर 2024 को हिन्दी पखवाडे का शुभारम्भ मुख्य अतिथि श्री नीरज, आयुक्त नगर निगम, करनाल ने दीप प्रज्जवलित करके किया। हिन्दी पखवाड़ा समिति के अध्यक्ष डा. अश्वनी कुमार ने हिन्दी के महत्व को बताते हुए राजभाषा के नियमों व अधिनियमों की विस्तृत जानकारी दी तथा हिन्दी पखवाड़ा के दौरान आयोजित किए जाने वाले कार्यक्रमों व प्रतियोगिताओं का विस्तृत विवरण दिया। संस्थान के निदेशक डा. राजेन्द्र कुमार यादव ने मुख्य अतिथि का पुष्पगुच्छ देकर स्वागत किया और बताया कि स्वतंत्रता के प्राप्ति के पश्चात 14 सितम्बर, 1949 को यह निर्णय लिया गया था कि राज–काज में अंग्रेजी भाषा का प्रयोग 15 वर्ष तक होगा। भारतीय नेता विदेशों में जाकर विश्व मंच पर हिन्दी में भाषण देते हैं। हमें अपने दैनिक कार्य हिंदी में अधिक से अधिक करने चाहिए। हिन्दी पखवाड़ा उद्घाटन समारोह के मुख्य अतिथि श्री नीरज, आयुक्त नगर निगम, करनाल ने कहा कि आजादी के बाद से अब तक सिनेमा, प्रिंट मीडिया, सोशल मीडिया में हिन्दी का प्रभाव बढ़ा है। हमें अपनी भावनाएं हिन्दी को माध्यम बनाकर व्यक्त करनी चाहिए। इस संस्थान में हिन्दी में काफी कार्य हो रहा है। उन्होने कहा की हमें अपने दैनिक कार्यचर्या में हिन्दी को महत्व देना चाहिए और सहज और सरल हिन्दी भाषा में संवाद करना चाहिए। इस अवसर पर कविता पाठ प्रतियोगिता का संचालन डा. अवनी, वैज्ञानिक (कृषि जैव प्रौद्योगिकी) ने किया जिसमें संस्थान के सभी कर्मचारियों ने बढ़–चढ़ कर भाग लिया तथा हिन्दी के महत्व, देशभक्ति तथा सामाजिक सुधार से संबंधित विशयों पर प्रस्तुति दी। हिन्दी पखवाड़े के अंतर्गत 12 प्रतियोगिताएं आयोजित की गई। इन सभी प्रतियोगिताओं में संस्थान के अधिकारियों व कर्मचारियों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया।

हिन्दी पखवाड़े के भाुभारम्भ समारोह के अवसर पर सभा को संबोधित करते मुख्य अतिथि व संस्थान के निदेशक डा. राजेन्द्र कुमार यादव

हिन्दी पखवाडे का समापन समारोह दिनांक 30 सितम्बर 2024 को आयोजित किया गया जिसके मुख्य अतिथि श्रीमति मानसी, प्रधानाचार्य बिनस्टॉक जूनियर विद्यालय, करनाल थी। उन्होंने अपने संबोधन में कहा कि देश की प्रगति एवं एकता के लिये मातृ भाषा में कार्य करना अति आवश्यक है। समस्त देशवासियों को एकता के सूत्र में पिरोने के लिये राजभाषा हिन्दी ही एक सर्वोच्च माध्यम है। इस अवसर पर एक तत्काल भाषण प्रतियोगिता का भी आयोजन किया गया जिसमें विभिन्न प्रतिभागियों ने 'एक राष्ट्र एक चुनाव' विषय पर प्रस्तुतियाँ दी। इस प्रतियोगिता में संस्थान के कर्मचारियों ने बढ़–चढ़ कर भाग लिया। समापन समारोह के दौरान विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजेताओं को प्रमाण–पत्र देकर सम्मानित किया गया। संस्थान के कार्यकारी निदेशक डा. सतीश कुमार सनवाल ने संस्थान के सभी कर्मचारियों को अधिक से अधिक हिन्दी भाषा में कार्य करने के लिये आह्वान किया।

नगर स्तरीय टिप्पणी एवं मसौदा लेखन प्रतियोगिता में प्रतिभागी भाग लेते हुए

हिन्दी पखवाड़े के समापन समारोह के अवसर पर सभा को संबोधित करते मुख्य अतिथि श्रीमति मानसी

सभा को संबोधित करते हुये संस्थान के निदेशक डा. डा. सतीश कुमार सनवाल

तत्काल भाषण प्रतियोगिता का आनंद लेते हुए संस्थान के सदस्य

प्रमाण–पत्र ग्रहण करते हुए प्रतिभागी

संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति की तिमाही बैठकें

संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति की प्रत्येक तिमाही में बैठकें आयोजित की जाती है जिसमें संस्थान में राजभाषा कार्यान्वयन के क्षेत्र में हुई प्रगति का अवलोकन किया जाता है और राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय के वार्षिक कार्यक्रमानुसार व समीक्षा के रूप में प्राप्त सुझावों पर संस्थान में राजभाषा हिन्दी की प्रगति के लिये आवश्यक कदम उठाये जाते हैं।

राजभाषा हिन्दी में किये गए अन्य कार्य

- संस्थान में सभी प्रशासनिक बैठकें हिन्दी में आयोजित की जाती हैं तथा संस्थान की तिमाही रिपोर्ट हिन्दी में भेजी जा रही है।
- इस अवधि में संस्थान की पत्रिका 'कृषि किरण 2023–24' एवं लवणता समाचार प्रकाशित किए गए।
- हिन्दी समाचार पत्रों में संस्थान में सम्पन्न गतिविधियों संबंधी प्रेस विज्ञप्तियाँ हिन्दी में प्रकाशित हुई।
- अधिकारियों / कर्मचारियों की सेवा पुस्तिकाओं में प्रविष्टियाँ हिन्दी में की गई।
- कार्यालय के सभी अनुभागों में फाइलों में अधिकतर टिप्पणियाँ हिन्दी में लिखी गई।
- सभी निविदाएं तथा नीलामी सूचनाएं, विज्ञापन, प्रेस नोट आदि हिन्दी में प्रकाशित किये गये।

सभी बिलों पर भुगतान आदेश हिन्दी में लगाये गये व रोकड़ बही भी हिन्दी में लिखी गई।

समाप्त

ICAR-CSSRI
ICAR-CS

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
Agrisearch with a human touch

बेटी बचाओ
बेटी पढ़ाओ

भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान
करनाल–132 001 (हरियाणा)